उतरन

विद्याभूषण भारद्वाज

उतरन

(कहानी-संग्रह)

उतरन

(कहानी-संग्रह)

डॉ. विद्याभूषण भारद्वाज

नमन प्रकाशन
नई दिल्ली 110002

पहला संस्करण 2013

ISBN : 978-81-8129-439-5

नमन प्रकाशन
4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज,
नई दिल्ली-110002
फोन : 23247003, 23254306

श्री नितिन गर्ग द्वारा नमन प्रकाशन नई दिल्ली-110002 के लिए प्रकाशित
तथा एशियन ऑफसेट प्रेस, दिल्ली-110053 में मुद्रित।

Utran by Dr. Vidyabhushan Bharadwaj

अपनी बात

कथा-रथ की वल्गा थामे, प्रिंट मीडिया के कुछ सारथियों ने आज कहानी को उस अँधेरी गली में घुसा दिया है जिसमें आगे का मार्ग नहीं सूझता। कहानी, कहानी न रहकर कुछ और बन गई है। कहानी से कथानक को धकिया दिया गया है और कल्पना के घटाटोप से, पाठक के सामने ऐसा दृश्य उपस्थित कर दिया गया है कि पाठक उसी में उलझ कर रह जाता है, कथा प्रवाहरहित हो गई है और पाठक मूल वस्तु से हटकर उसके माया जाल में फँसकर रह गया है।

ऐसी कहानी तेरे, मेरे और उसके लिये उत्कृष्ट हो सकती हे, यानि एक प्रतिशत पाठक के लिए। कहानी का प्रमुख तत्व कथानक, आज उस पिटे हुए कमजोर बालक-सा होकर रह गया है जिसे दबंगों ने हड़काकर एक कोने में बिठा दिया है। आज की कहानी का पाठक, कथासूत्र को यदि कसकर न पकड़े रखे तो उसे फिर से पन्ने पलटकर, यत्र-तत्र बिखरे सूत्रों को जोड़-जोड़कर सहेजना पड़ता है, अर्थात् कथा में जो तारतम्य, पूर्वापर संबंध होना चाहिये था, आज की कहानी में उसकी कमी है। लेखक सारा बोझ पाठक के सिर पर लाद देता है, फिर पाठक माथा पच्ची कर उससे कुछ बीन पाता है।

इन दबंगों ने अपनी लठैती के बल पर हिन्दी कविता का तो बेड़ा ही गर्क कर दिया है, उसे कहीं का नहीं छोड़ा, उसके अतिरिक्त सामान्य पाठक उसे गले लगाने को तैयार नहीं। पाठक सिर पटक कर रह जाता है– भाई तूने क्या लिखा है, क्या कहना चाहता है तू, बता तो सही, और लगता है कवि उत्तर देगा, "मुझे पता नहीं, सॉरी!" ग़नीमत है हिन्दी कविता ने यू टर्न ले लिया है, भला हो डॉ. रामदरश मिश्र सरीखे कवियों का जिन्होंने आशा बँधाई है कि हिन्दी कविता फिर से मन-मोहिनी बनेगी, फिर से उसे प्यार की नज़रों से देखा जाने लगेगा। जब इनकी कविता जूतों समेत पाठक के मन-आँगन में प्रवेश कर रही है तो क्यूँ नहीं उसे प्यार दिया जायेगा? इसी प्रकार हिन्दी कहानी भी क्या यू टर्न ले पाएगी?

मैंने यू टर्न देने का प्रयास किया है, अपनी बात सीधे-सादे ढंग से कही है,

कल्पना के घटाटोपी तिलस्म में पाठक को नहीं फँसाया है – 'उतरन' में जहाँ अनुज द्वारा अग्रज को सम्मान, प्यार दिया है, वहीं 'भाभी' में सास-बहू, माँ-बेटे, भैया-भाभी आदि की दैनंदिन मनोवैज्ञानिक समस्याओं सरल सा सर्वग्राह्य समाधान प्रस्तुत किया है, 'कलाई का दाग' में जहाँ जाति धर्म से ऊपर उठकर भाई-बहिन के निश्छल प्यार का चित्रण है, 'बाबू' में धर्म का सत्य बताया गया है, 'पिता-पुत्र का पत्राचार' में जहाँ आधुनिक पुत्र और पिता की मानसिकता का कच्चा-चिट्ठा प्रस्तुत किया गया है, वहीं 'माँ का पत्र' में संस्कारबद्ध बिदुषी माँ की व्यथा-कथा है, 'वेलू' में एक ग्रामीण किसान की कारुणिक कथा है, उसकी विशाल हृदयता, बचपन से वृद्धावस्था तक चलने वाली प्रगाढ़ मैत्री का निर्वाह चित्रित है, 'राम-प्यारी और उसकी बहू' में, एक भारतीय पारंपरिक सास और उसका, खुलकर विरोध करने वाली आधुनिक बहू का रोचक लेखा-जोखा है। 'प्रायश्चित' में एक ग्रामीण किसान के उस प्रतिभा संपन्न कॉलेज-छात्र के मनस्ताप का चित्रण है जिसने अपने ग्रामीण किसान पिता को, अपने सहपाठियों के समक्ष पिता न बताने की गलती की।

इन कहानियों में, भारतीय संस्कृति, हिन्दु धर्म के विवाह आदि संस्कारों का पक्ष-विपक्ष प्रस्तुत किया गया है। मेरा मानना है, हमारे विवाह आदि विभिन्न संस्कार, भारतीय सभ्यता के वे दृढ़ स्तम्भ हैं जिन पर उसका महल टिका हुआ है, वह बात अलग है कि संस्कारों के ये वट-वृक्ष आज बोनसाई रूप धारण कर ड्रॉइंग रूम की शोभा बन रहे हैं, लेकिन उन संस्कारों का प्राण तत्त्व जीवंत हैं। इन कहानियों की सामग्री मेरे इर्द-गिर्द बिखरी पड़ी है, मैंने तो इनकी बोली में इन्हें प्रस्तुत भर किया है। मेरी मान्यता है कि हर व्यक्ति के भीतर अनगिनत कहानियों, उपन्यासों, का भंडार भरा पड़ा है– कैमरा उठाओ, एक क्लिक करो, फोटो तैयार। बाहर झाँकने की आवश्यकता तो तब पड़े, जब भीतर का सब कुछ चुक गया हो।

भाषा– मैंने देखा है कि हिन्दी कथा-साहित्य में भोजपूरी, अवधी, ब्रज, छत्तीसगढ़ी आदि बोलियों का प्रयोग जिस प्रचुरता से हुआ है, उतना ग्रामीण खड़ी बोली का नहीं। खड़ी बोली के शब्दों का खुलकर प्रयोग किया गया है, फलतः कथा प्रकृत रूप में अग्रसर होती है। कथाचित् यह संस्कारों की जकड़न है कि आज के ए/सी अपार्टमेंट की तुलना में गाँव का घर अधिक अच्छा लगता है, सरसों का साग, गेही की सिकी हुई पानी के हाथ की रोटी, गुड़ की डली, मट्ठे के गिलास के ऊपर मैं पिज्जा आदि आधुनिक व्यंजनों को तिरस्कृत कर सकता हूँ– गवाँर की पदवी से विभूषित होने का मुझे कोई भय नहीं। मेरे अग्रज के श्वसुर कहा करते थे– 'जो सुख छज्जू के चौवारे में, वो नहीं बलख के बुखारे में'।

अंत में एक जरूरी रस्म का निर्वाह– धन्यवाद ज्ञापन। किसी के किये को

यूँ थैंक्स की एक फूँक में उड़ा देने का मैं पक्षपाती नहीं, फिर भी उस रस्म का निर्वाह करते हुए, सर्वप्रथम में आभारी हूँ नमन प्रकाशन के स्वत्वाधिकारी श्री नितिन गर्ग का जिन्होंने बिना किसी लाग-लपेट के, मेरी इच्छानुसार, इसे प्रकाशित किया, फिर धन्यवाद देना चाहूँगा सरिता के संपादक का जिन्होंने 'भाभी' कहानी को तीन किश्तों में गृहशोभा में छापकर मुझे यथोचित् पारिश्रमिक का अग्रिम चैक भेजा और पुस्तक में सम्मिलित करने की अनुमति दी, आदरणीय भाई श्री मधुसूदन आनंद को धन्यवाद देना चाहूँगा जिन्होंने इन कहानियों को पढ़कर प्रसन्नता व्यक्त करते हुए मुझे प्रोत्साहित किया। अपने लेखन में आए उन विरोधों का भी शुक्रगुजार हूँ जिन्होंने स्पीड ब्रेकर के समान, मेरी खटारा गाड़ी को स्पीड नहीं पकड़ने दी, साथ ही उन प्रेरक तत्त्वों को भी धन्यवाद देता हूँ जिन्होंने 'जोर लगाकर हइशा' का उद्घोष करते हुए मेरी गाड़ी को धक्का लगाने में कोई कृपणता नहीं दिखाई और 'लास्ट बट नॉट द लीस्ट' हैं सलीम भाई जिन्होंने मेरे उस लिखे को पढ़-पढ़ कर उसकी कंपोज़िंग की जिसे मैं भी कहीं-कहीं नही पढ़ पा रहा था।

अब बॉल पाठक की कोर्ट में है, जो भी निर्णय वह देगा, सिर आँखों पर।

विद्याभूषण भारद्वाज

वसुंधरा, गाज़ियाब
मो : 9871761497

जनहित कार्यालय अपार्टमेंट
273 - सेक्टर 6 वसुंधरा, गाजियाबाद

अनुक्रम

उतरन

राजस्थान विश्वविद्यालय जयपुर से ऑटो पकड़ी और दिल्ली के लिए बस पकड़ने हेतु बस स्टैंड की ओर रवाना हुआ। ऑटोवाले ने पूछा, "साहब कोई और सवारी बिठा लूँ?" "बिठा लो भाई, मेरी जेब से क्या जाता है यदि तुम्हें कुछ लाभ हो जाए तो।" तभी एक सज्जन आए, "बस स्टेशन?" "जी हाँ, बैठिए" ऑटो वाले ने कहा। दस कदम चलते ही दूसरी सवारी और बैठ गई। बस स्टेशन पहुँच कर उसने उन दोनों सवारियों से दस-दस रुपए लिए और मुझसे पच्चीस रुपए।

मैंने कहा, "भई, यह भेदभाव किसलिए?" "साहब आपने तो पूरा रिक्शा किया था, उसके पैंतीस रुपए होते हैं, मैंने तो पच्चीस ही लिए हैं।" "और ये जो दो सवारी?" "आपने ही तो कहा था कि बिठा लो, मेरी जेब से क्या जाता है?" उल्टे आपकी तो दस रुपए की बचत हो गई।" मैं उसकी दस रुपए की, ईमानदारी का कायल हो गया और चुपचाप जाकर बस में बैठ गया।

बस चल पड़ी, पहले तो बस रूट शहर के भीतर से था, रास्ते में हवामहल आदि के दर्शन हो जाते थे जो मुझे राजस्थान की भव्यता की झलक दिखाते थे। इस बार बाहर, बाहर से, न जाने कहाँ-कहाँ से गुजरी और जलमहल, आमेर का किला होती हुई दिल्ली की ओर भागी चली जा रही थी। बस में कर्णप्रिय म्यूजिक बज रहा था लेकिन मेरे मन में तरह-तरह के विचार आ जा रहे थे। कभी सोचता, कितनी सुख शांति रही होगी यहाँ पुराने जमाने में, कितनी ईमानदारी रही होगी जो इतने बड़े, ऊँचे-ऊँचे महल बन-बनकर खड़े हो गए और आज तक उसी प्रकार खड़े हैं और आज स्थिति यह है कि बिल्डिंगें तैयार होते-होते कई बार धड़ाम हो जाती हैं, कई एक लोग दबकर मर जाते हैं। दूसरी ओर सोचता कि प्रजा बड़ी सुखी रही होगी।

अपनी प्रजा को भूखी रखकर राजा, महाराजा लोग, ये महल थोड़े ही न बनवाते होंगे और आज की सरकार के राजे-महाराजे, अपने शौर्य-प्रदर्शन की भूख के परिशमन हेतु अरबों-खरबों रुपए पानी की तरह बहाते हैं, जनता जाए भाड़ में—तरह-तरह के विचारों में डूबते-उतराते, सौंदर्यशास्त्र पर हुए गोष्ठी के भाषणों पर ध्यान खिंच गया।

सोचने लगा, किन फिजूल की बातों में ये सेमिनारें उलझती रहती हैं, कितना-कितना पैसा लुटाती हैं और चर्चा करने बैठ जाते हैं कि सौंदर्य कहाँ अवस्थित है—सौंदर्य वस्तु में है, अथवा व्यक्ति के मन में? अथवा दोनों में? अथवा ...? व्यर्थ की बातें, प्रश्न फिर भी उलझा का उलझा। जब कोई ठोस निष्कर्ष नहीं निकाल पाते तो क्यों पिष्टपेषण कर रुपया और समय बर्बाद करते हैं। एक ने कहा, सौंदर्य व्यक्ति के मन में है, उसे जो सुंदर लगता है, वही सुंदर है, निठारी कांड के पंढेर और कोली किसे अच्छे लगते हैं? लेकिन इनकी माँ, बहनों से पूछो, उन्हें तो ये सुंदर ही लगते हैं, तो सौंदर्य व्यक्ति के मन में है।

किसी ने कहा कि सौंदर्य वस्तु में है, सुंदर तो सुंदर ही रहेगी—कोयल की कूक, मेघ-गर्जन पर मोर की कें-कें, उसका नृत्य, सौंदर्य विशेषज्ञों द्वारा ठप्पित ऐश्वर्या राय का सौंदर्य, किसे अच्छे नहीं लगते? अतः सौंदर्य वस्तु में है। दूसरा झट इसका विरोध कर बैठता है, विरही जन से पूछो कि कोयल की कूक, मोर-नृत्य कैसे लगते हैं, किसी पद्मिनी की सौतन से पूछो कि पद्मिनी सुंदर है या नहीं? पद्मिनी तुरंत चुड़ैल की उपाधि से अलंकृत हो जाएगी। तरह-तरह की बातें मन में उठती रही, पक्ष-विपक्ष में तर्क-वितर्क चलते रहे, दृष्टांत, उदाहरण प्रस्तुत होते रहे और इसी उधेड़-बुन में दिल्ली आ गया। मन ने इस उधेड़बुन की पुष्टि की और कहा, इस उधेड़-बुन से कुछ और लाभ हुआ हो या नहीं पर लंबा रास्ता आराम से कट गया और वह भी बिना टेन्शन।

सूर्योदय हो चुका था, कुछ-कुछ थकान थी, पीतमपुरा अपने फ्लैट पर पहुँचा, कॉलबैल का बटन दबाया, पत्नी ने दरवाजा खोला, "आ गए?" "हाँ।" बिना कुछ आगे बोले वह भीतर चली गई, मेरा माथा ठनका, कुछ गड़बड़ है, न पानी न चाय, कुछ नहीं पूछा, वरना तो आज कई दिनों बाद घर पहुँचा हूँ, इसे मेरे पहुँचते ही पानी का गिलास थमा देना चाहिए था। मैंने कहा, "भई एक गिलास पानी और चाय पिलवा दो,

थक गया हूँ, चाय पीकर थोड़ा सोऊँगा, कहीं से कोई फोन वगैरह?"

"हाँ, तुम्हारे लिए एक खुशखबरी है, तुम्हारी लॉटरी लग गई है।"

"मतलब?"

"अरे, भगवान कहीं से छप्पर फाड़ के कुछ दे दे तो वह लाटरी ही तो लगती है।"

"साफ-साफ क्यों नहीं कहती कि क्या बात है?" इसे सुन वह कमरे में गई और मुझे एक पैकेट थमाते हुए बोली, "यह लो इसके भीतर है तुम्हारा धन, तुम्हारी लाटरी की बड़ी रकम।" "क्या है इसमें?" "खोल कर देख लीजिए, आशू आया था, वह दे गया है।"

मैंने पैकेट खोला, उसमें भाई साहब का कुछ दिनों का पहना हुआ कुर्ता पायजामा था। मैं भाई साहब के टेस्ट से परिचित था। वे कभी चीप कपड़ा नहीं खरीदते थे। उनका अपना गणित है जिसे मैं ठीक तो मानता हूँ पर उस पर उतना अमल नहीं करता। वे मानते हैं—महँगा रोए एक बार, सस्ता रोए बार-बार। वे 40, 50 रुपए मीटर का सस्ता कपड़ा न खरीद कर 70, 75 रुपए मीटर वाला उम्दा कपड़ा खरीदते हैं। वे जानते हैं, मैं भी जानता हूँ, कदाचित् सभी जानते हैं कि सस्ते वाला कपड़ा एक धुलाई में ही खरीददार को मूर्ख सिद्ध कर देता है और महँगा, काफी दिनों तक मन प्रसन्न रखता है। अतः उन्होंने जो कुर्ता पायजामा भेजा था वह उत्तम किस्म का, नया सा ही लगता था।

मैंने पत्नी से कहा, "अरे यह तो भाई साहब का कुर्ता पायजामा है, क्या हुआ जो लाटरी-वाटरी कहे जा रही हो? कौन सी ऐसी बात है जिससे तुम मुँह फुलाए बैठी हो?"

वह उफनती हुई सी बोली, "हाँ-हाँ, हम तो भिखमंगे हैं, माँग-माँग कर पहनते हैं, एक कुर्ता पायजामा बनवाने की हमारी हैसियत नहीं।"

"अरे सुनो तो...मेरी समझ में नहीं आता इसमें उबलने की कौन सी बात है?"

वह भिनभिनाती बोली, "आपको उतरन पहनने में कोई लाज नहीं आती, पर मेरी तो नाक कटती है, क्या थूकेगी दुनिया मेरे मुँह पर कि यह पति के लिए कपड़े भी नहीं बनवा सकती, वैसे प्रोफेसरनी बनी फिरती है...हम किसी से कम हैं क्या, भाभी ने आखिर क्या समझा है हमें? हम भिखमंगे हैं? क्या समझती हैं वे अपने आपको, उनकी हिम्मत कैसे हुई

ये उतरन भेजने की?'' वह बोले जा रही थी, मैंने आवेश में उसे विराम देते हुए कहा, ''अपनी ही कहे जाओगी या मेरी भी कुछ सुनोगी? बिना सोचे-समझे अनाप-शनाप बोले जा रही हो, अरे यह मैंने ही लिखा था भाभी को कि भाई साहब का पहना हुआ एक कुर्ता-पायजामा भेज दो, उन्होंने भेज दिया, बस, इतनी सी बात है।'' सुनकर वह और भड़क उठी, ''क्या? तुमने कहा था? हाय राम, हद्द हो गई तुम्हारी अक्लमंदी की, यह तो और भी खराब बात है, मेरे मुँह पर यूँ कालिख पोतोगे, मुझे उम्मीद नहीं थी। क्या सोचती होंगी वे मेरे विषय में? यही न, कि इस प्रोफेसरनी का दिवाला पिट गया है, अपने पति के लिए एक कुर्ता पायजामा भी नहीं बनवा सकती। यह बताओ कि मुझे समाज में बैठने लायक छोड़ोगे या नहीं?'' उसका चेहरा तमतमा आया।

मैंने कहा, ''मेरी समझ में नहीं आ रहा कि इसमें कौन सी बेइज्जती हो गई?'' इससे पहले मैं आगे कुछ बोलता, वह बोल उठी, ''अरे बेइज्जती तो उनकी होती है जिसकी कोई इज्जत होती है—इज्जत तो आपकी उसी वक्त फुर्र हो गई, जब आप महाशय, कटोरा लिए भाभी के सामने 'भिक्षां देहि' लिबास में पहुँचे।''

मुझे क्रोध आ गया और जोर से बोला, ''शट्अप, यूँ ही बकवास किए जा रही हो।''

''मैं बकवास कर रही हूँ, मैं तो पागल हूँ, बिना पढ़ी-लिखी, मुझमें तमीज़ कहाँ से आई, वह तो बस आप लोगों के हिस्से में आई है।''

''हाँ-हाँ तुममें कोई तमीज़ नहीं, बेहूदा बातें किए जा रही हो, यूँ ही बिना सोचे-समझे भौंके जा रही हो भाभी के विषय में।'' सुनते ही उसका पारा आसमान को छूने लगा, गरजती सी बोली, ''मैं भौंक रही हूँ, कुतिया हूँ न, बिना बात ही प्रलाप कर रही हूँ, तुम्हारे भीतर तो यह भी समझने की शक्ति न रही कि पति जैसा कुछ पहनता है उसका संपूर्ण यश, अपयश पत्नी के ही हिस्से में आता है। यह कोई नहीं सोचता कि पति जिद्दी है, जो कुछ उसके मन में आता है, करता है, पत्नी की यह कभी नहीं सुनता, देखने वाले यही कहेंगे कि कैसी प्रोफेसरनी है, पति को कैसा-कैसा पहनाती है, बुराई, सारी की सारी पत्नी के मत्थे ही मढ़ दी जाती है।'' कहते-कहते उसने अपना वॉल्यूम कम किया और बोली, ''अच्छा एक बात बताओ, बहुत शांतिपूर्वक पूछ रही हूँ, शांति से ही जवाब देना, यह

बताइए कि भाभीजी को यह पता नहीं था कि हमारी आमदनी उनसे कम नहीं है?''

''पता है, उन्हें सब पता है, अंधी नहीं हैं वो।''

''फिर क्या मेरे बारे में वे यह नहीं सोचेंगी कि यह पति को उतरन पहनाती है।''

''अरी इतनी अक्ल कहाँ है उनमें जो यह हिसाब लगा सकें कि तुम्हारा स्टेटस पति के लिए एक कुर्ता पायजामा सिलवाने का है भी या नहीं? वे तो बिचारी अनपढ़ हैं, इतनी बारीकी में वे नहीं जा सकती।''

''सीधी तरह उत्तर दीजिए मेरी बातों का, व्यंग्य न करिए।'' मैंने क्रोध पर काबू रखा और धीरे से कहा, ''क्या आप भाभी को इतनी नासमझ मानती हैं कि वे इतना सा हिसाब न लगा सकें?''

''फिर उन्होंने ये पुराने कपड़े क्यों भेजे? ऐसी रईसजादी बनती हैं तो नए सिलवाकर भेज देती, मेरी बेइज्जती करने के लिए ही तो भेजी है यह उतरन।''

''उतरन, उतरन, बके जा रही हो, खबरदार इसे उतरन कहा तो, मेरे लिए ये उतरन नहीं है।'' मैंने उसकी ओर क्रोध में अँगुली उठाते हुए कहा। ''आ जाने दो बेटे को, वह अभी उठकर आता होगा, देखना, वह भी कैसी खरी-खोटी सुनाता है तुम्हें।''

''हाँ, अब तो वह कमाऊ पूत बन गया है, उसकी खरी-खोटी भी सुननी पड़ेगी, उसकी भी सुन लेंगे।'' मैंने बात समाप्त करने की इच्छा से कहा।

आठ बजने को आ रहे थे, पुत्र अभी शैया त्याग कर आया है, आजकल के लड़कों को इस विषय में कुछ कहना व्यर्थ है, इस पीढ़ी को ब्राह्ममुहूर्त में उठने का महत्त्व समझाना फिजूल है, इनकी दिनचर्या तो फिक्स्ड होती है, रात 12 एक बजे सोना, प्रातः आठ बजे उठना, वह भी इसलिए कि काम पर जाना होता है, वरना पड़े सोते रहेंगे बारह बजे तक। इतने में सुयश पहुँचा, मेरे पैर छुए और बोला, ''आ गए पिताजी, कैसी रही आपकी सेमिनार?''

''ठीक ही रही, घूम-फिर आए, कुछ पुराने मित्रों से मिल आए, कुछ भाषणबाजियाँ हुई, रिजल्ट वही ढाक के तीन पात।'' बीच में ही पत्नी बोल उठी, ''बता रे इन्हें पैकेट के विषय में जो आशू दे गया था।'' वह

बोला, "पहले चाय पिलवा दो माँ, पिताजी आपने चाय पी ली?"

"चाय की घूँट तो अभी नसीब नहीं हुई, तुम्हारी माताश्री की अमृतवाणी पान करने से तो फुर्सत मिले। मेरे घर में कदम रखते ही, शुरू हो गई, तेरी ताई जी के भेजे पैकेट को लेकर।" मैंने धीमे स्वर में कहा। सुयश बोला, "पिताजी मेरी समझ में नहीं आया कि ताईजी ने ऐसा क्यूँ किया? कौन सी कमी देखी उन्होंने, आपके प्रति हमारे व्यवहार में, जो उन्होंने द्रवित होकर, ताऊ जी का पुराना कुर्ता-पायजामा भेज दिया?"

"बेटा मैं कह चुका हूँ तेरी माँ से कि मैंने ही लिखा था कुर्ते पायजामे के लिए।" उसने आँखें फाड़ कर कहा, "आपने लिखा था? हद्द हो गई पिताजी, आपकी सोच की। क्या कहती होंगी वे हम लोगों को, इसमें तो मेरी भी बेइज्जती हो गई।" इस पर मैंने कहा, "अरे तू तो ताई जी के सामने पैदा हुआ है, उन्होंने तेरा गू मूत किया है, तुझे गोद खिलाया है, उनके सामने तेरी इज्जत? इतना बड़ा हो गया है तू? 22 वर्ष की उमर में अच्छा-खासा कमाने लगा है तो बड़ों के सामने तेरी इज्जत भी पैदा हो गई? बेटा रे, तू अगर गवर्नर, राष्ट्रपति भी बन जाएगा तो भी इस जन्म में तो उनसे छोटा ही रहेगा।"

"आप ऐसा क्यों सोचते हैं पिताजी, मेरा मतलब तो यह था कि वे मेरे बारे में यही तो सोचेंगी कि लड़का खुद एक से एक बढ़िया कपड़े पहनता है, कार में घूमता फिरता है और इसे इतनी भी सुध नहीं कि यह देख ले कि इसके पिताजी के पास किस चीज की कमी है, जो मुझसे माँगते फिरते हैं।"

मैंने बड़े शांत भाव से कहा, "बेटा मेरी बात ध्यान से सुन, तुझे पता है मैं भाई साहब को कितना मान देता हूँ और यह मान भी कोई इसलिए नहीं कि वे मेरे बड़े हैं बल्कि इसलिए कि वे मुझे अंतरात्मा से प्यार करते हैं, हर समय मेरा ध्यान रखते हैं, इतना बड़ा हो गया हूँ, पर आज भी वे मुझे बच्चा ही समझते हैं, अब भी जब कभी उनके पास जाता हूँ वे बस स्टैंड तक मुझे छोड़ने आते हैं, बस का टिकट खरीद कर मेरे हाथ पर रख देते हैं--"सँभल के जाना रे, देख कहीं सर्दी-वर्दी न लग जाए, ये ले टोपी पहन ले, चला आया नंगे सिर" और अपने सिर से गर्म टोपी उतारकर मेरे सिर पर पहना देते हैं, उस समय मुझे अनिवर्चनीय सुखानुभूति हुई। बात पुरानी हो गई, पर उस टोपी की ऊष्मा मैं आज तक

महसूस कर रहा हूँ, तभी मुझे माँ की याद आ गई, वह भी बहमियों की भाँति कहती रहती थी, ''बाबूजी बना, नंगे सिर फिरता रहता है, सिर को ठंड लग जाएगी, सर्दी-जुकाम हो जाएगा, अरे मरे, सिर ढक ले।'' भाई साहब, श्रीनगर गए थे, अपने लिए उन्होंने एक गाउन खरीदा, वैसा ही एक मेरे लिए लिया जिसे मैं आज तक इस्तेमाल कर रहा हूँ। रह गई बात पुराने कुर्ते-पायजामे की, तुझे और तेरी माँ को यह तो दिखाई दिया कि पुराने भेज दिये, क्या नए नहीं भेज सकते थे? तो मैं यह समझूँगा कि तुम दोनों के दिमाग का दिवाला पिट गया है जो आज तक यह नहीं समझ सके कि भाई साहब, अपनी जेब में पैसे न होने पर भी, सैंकड़ों नए कुर्ते पायजामे मेरे ऊपर वार कर फेंक सकते हैं। देखो, भाई साहब बाजार गए होंगे, दस-बीस थानों में से अपने लिए अपनी पसंद का कपड़ा खरीदा होगा, दर्जी को विशेष इंस्ट्रक्शंस दी होंगी—कुर्ते की जेबें इस तरह की होनी चाहिए, बटन तीन नहीं, चार लगाना, कॉलर ऐसा रखना, आदि आदि, फिर उन्होंने प्यार से इन्हें पहना होगा, धोबी को कभी-कभी डाँट भी लगाई होगी कि ठीक तरह से धोया कर, कलफ लगाया कर, प्रेस ठीक से किया कर...। कितना अपनत्व जुड़ा होगा, इस कुर्ते पायजामे में, इसकी अनुभूति मैं कर सकता हूँ, तुम लोग नहीं। उन्होंने सदा ही मेरा ध्यान रखा है, इसे पहनूँगा तो ये कपड़े मुझे हर समय भाई साहब की याद दिलाया करेंगे, इन कपड़ों में मैं भाई साहब की गंध महसूस किया करूँगा। मुझे लगा करेगा कि भाई साहब, आज भी मेरी अँगुली पकड़े मुझे घुमाने ले जा रहे हैं। वे बचपन में मुझे, पुरा महादेव के मेले में ले जाया करते थे, मुझे पूरा मेला घुमाया करते थे, तब उनकी आयु कोई अधिक नहीं थी, यही कोई 11, 12 वर्ष के रहे होंगे। मैं उनसे अत्यधिक अटैच्ड रहा हूँ। मुझे अब तक याद है, ऐसा लगता है, अभी कल की ही बात है, मैं कोई 4, 5 वर्ष का रहा हूँगा, वे पास के गाँव रासना में पढ़ा करते थे, वहीं स्कूल में रहा करते थे और प्रत्येक शनिवार की संध्या वे आते थे और सोमवार की प्रातः चले जाया करते थे। इस बीच मैं अकेला रहता था, यूँ ही आवारा घूमता फिरता रहता था, तब वे मुझे बहुत याद आया करते थे। जब वे सोमवार की प्रातः अपने स्कूल जाया करते थे तो मुझे बहुत बुरा लगता था। एक दिन मैं जिद पकड़ गया कि मैं भी आपके साथ चलूँगा, वे मना करते थे, यह तो मैं बहुत बाद में समझा कि मेरा उनके साथ जाना

संभव नहीं था, उनकी अनुपस्थिति में मेरा मन नहीं लगता था, उन्होंने एक छोटी-सी पोटली उठाई जिसमें आटा, दाल, शक्कर, घी वगैरह सब बँधा था, खाना वे स्वयं बनाया करते थे। पोटली सिर पर रखी और स्कूल के लिए चल दिए। मैं भी पीछे-पीछे। इसी प्रकार कहते-सुनते गाँव से बाहर निकल गए। मैं भी पीछे-पीछे चल रहा था, वे क्रोध में मेरे पीछे दौड़ते, मैं वापस दौड़ लेता था, वे फिर आगे बढ़ते थे, मुझे पीछे-पीछे आता देख वे फिर मेरे पीछे भागते थे, मैं फिर वापस दौड़ता था, आखिर उन्हें सहन नहीं हुआ, उन्होंने पोटली सिर से उतार, वहीं बटिया पर रख दी और मेरे पीछे दौड़े और मुझे पकड़ लिया, मेरे गाल पर दो चाँटे रसीद कर दिए, "बोल, जाता है कि नहीं घर?"

मैं रोने लगा, सुबकते हुए मैंने कहा, "भैया मैं भी साथ चलूँगा।" वे घुटनों के बल बैठ गए मुझे सीने से लगाकर बोले, "तू समझता क्यूँ नहीं रे, तू नहीं जा सकता मेरे साथ, मास्टरजी तुझे कमचियों से पीटकर भगा देंगे, जब तू बड़ा हो जाएगा, तब जाया करेगा मेरे स्कूल में, जा, अब घर जा।" मुझे पुचकारा और मैं सुबकता हुआ घर लौट आया था। मैं आज तक नहीं समझ सका कि आखिर क्या है यह सब? मुझे अपने पिताजी से कभी इतना लगाव नहीं रहा, वैसा ही लगाव मैं आज तक महसूस करता हूँ। भाई साहब फिर मेरठ चले गए पढ़ने के लिए, महीने, महीने में आया करते थे, जिस दिन वे घर आते थे, मेरी प्रसन्नता निःसीम होती थी, फिर समझ में आने लगा कि अब उनके साथ रहना सम्भव नहीं। मैंने अपने आपसे समझौता किया। मन में आज भी यही रहता है कि किसी न किसी प्रकार मुझे उनके सामीप्य की अनुभूति होती रहे, इस कुर्ते-पायजामे में मुझे उनके सामीप्य की उसी तृप्ति का अहसास होता रहेगा, इसमें मुझे भाई साहब की गंध आया करेगी जिससे मुझे एक आत्म तुष्टि का सा अनुभव होगा। वें मेरा बड़ा ख्याल करते थे। हम सब मेरठ चले आए थे। मैं दसवीं कक्षा का छात्र था। एक बार मेरी किसी गलती पर सबसे बड़े भैया ने मेरी अच्छी-खासी पिटाई की थी, भाई साहब चुपचाप देखते रहे, सबसे बड़े भैया के सामने किसी की भी बोलने की हिम्मत नहीं थी। मुझे रात के दस बजे भाई साहब वैली बाजार, भगत हलवाई की दुकान पर ले गए, मुझे कुल्हड़ में गर्मा-गर्म दूध पिलाया, रबड़ी खिलाई। जो मेरे इतने अपने हैं, उनके वस्त्रों को तुम लोग उतरन कहे जा

रहे हो। मुझे ऐसा लगता है जैसे यह उनका और मेरा अपमान है।

इस पर सुयश बोला, "पर पिताजी लोग बाग क्या कहेंगे?"

"कोई कुछ नहीं कहेगा, किसे फुर्सत है ये सब जानने की कि मैंने कैसे कपड़े पहने हैं, ये सब तुम्हारे अपने मन की कुंठाएँ हैं, तुम्हारे सबकांशस में कहीं न कहीं यह बात बैठी है कि हम उनसे किसी प्रकार भी कम नहीं, कहीं न कहीं प्रतिस्पर्धा की भावना से ग्रस्त हो तुम लोग। अरे होड़ ही करनी है तो क्या अपने ही मिले हैं होड़ करने के लिए, किसी टाटा, बिरला, अंबानी से करो। मुझे चिढ़ है ऐसे लोगों से जो अपने परिवार के लोगों से ही होड़ लगाना चाहते हैं, अपने परिवार वालों को ही नीचा दिखाना चाहते हैं, अपने सगे-संबंधियों को ही अपने से हीन सिद्ध करना चाहते हैं। हर तरफ यह दिखाई पड़ता है, एक भाई अपने सहोदर की ही उन्नति नहीं देख सकता, बल्कि उससे जल उठता है, इससे अधिक निकृष्टता और क्या हो सकती है? मेरे और तुम माँ बेटे में बस यही एक अंतर है—मैं भाई साहब के भव्य भवन को देखकर, गर्व महसूस करता हूँ, अपने मित्रजनों को गर्व से दिखाना चाहता हूँ ताकि वे यह महसूस करें कि इसका बड़ा भाई कितना संपन्न है, कितना भाग्यशाली है, जबकि इसे देखकर तुम लोगों में यह प्रतिक्रिया होती है कि हम इससे भी बढ़िया बनवाकर दिखाएँगे और मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि यदि तुम इसमें सफल हो गए तो तुम लोग सीना तान कर खड़े हो जाओगे भैया-भाभी के सामने कि देखो आखिर हम आपसे ऊपर हो ही गए। तुम लोग स्वीकार नहीं करोगे, पर है यह ईर्ष्या। अपने ही से ईर्ष्या? इसे मैं घटिया मनोवृत्ति की श्रेणी में रखता हूँ, नफरत है मुझे ऐसे अपनों से। इसी भावना के वशीभूत तुम इन वस्त्रों को उतरन कह रहे हो, इन्हें घृणा की दृष्टि से देख रहे हो। तुम ल्रोगों का क्या है, कल को—भरत को बड़े भैया राम की चरण पादुका रखने के लिए भी तुम भरत को मूर्ख कहने से भी परहेज़ नहीं करोगे। मैं उत्तेजित हो रहा था।

सुयश बोला, "अच्छा पिताजी यह बताइए कि हाइजिनिक दृष्टि से किसी के कपड़े पहनना क्या ठीक है?" मैंने झुँझला कर कहा, "पहली बात तो यह है कि वे किसी में नहीं आते, और अगर किसी में आते हैं तो मैं अक्सर तेरी कमीज पहन लेता हूँ, मुझे तो तू नहीं टोकता कि पिताजी, किसी के वस्त्र पहनना हाइजिनिक दृष्टि से ठीक नहीं, तू और

तेरी माताजी सोच सकते हैं यह सब, मैं इतना ज्ञानी नहीं कि हाइजिनिकता की इतनी गहराई में पैठ सकूँ। मुझे तुझसे कोई शिकायत नहीं, तूने तो विज्ञान ही पढ़ा है, वैसी ही तेरी सोच बन गई है। तुम्हारी तराजू में कहीं भी संवेदना के बाट नहीं होते, शिकायत तो मुझे इन देवी जी से है जो न जाने कितने वर्षों से उच्च कक्षाओं को कबीर, तुलसी, सूर, मीरा को पढ़ा रही हैं, उस मूर्ख जायसी को पढ़ा रही हैं जिसने एक कोढ़ी के साथ बैठकर एक ही पत्तल में खाना खाया था, जिस कोढ़ी के हाथ से कोढ़ टपक रहा था। उस महामूर्ख निराला को पढ़ा रही हैं जिसने अपनी रॉयल्टी के सारे रुपए, लिए तो थे दुकानकारों का उधार चुकाने के लिए और दे दिए उस एक भिखमंगी को जिसने उसे बेटा कह दिया था और उसने यह तक नहीं सोचा था कि अब दुकानदारों को क्या जवाब देगा, उस ताँगे वाले का किराया कहाँ से चुकाएगा जिसके ताँगे पर बैठकर वह रॉयल्टी के रुपए लेकर दारागंज के लिए रवाना हुआ था। ये महिषी, काव्यालोचन, रस, अलंकार, प्रसाद, महादेवी, पंत को पढ़ा रही हैं। उन सबका लबादा वे वहीं उतारकर घर लौट आती हैं और तुरंत एक औरत का गाउन पहन लेती हैं, यह सब कक्षा तक ही सीमित रहता है, सारा वैदुष्य, त्याग, एक रोटी थोपने वाली औरत का रूप धारण कर लेता हैं। खैर...आई एम सॉरी, मुझे यह सब बकवास नहीं करनी चाहिए थी, मैं तुम लोगों पर अपनी मान्यता थोपना नहीं चाहता, साथ ही यह भी नहीं चाहता कि तुम लोग यह कोशिश करो कि मैं अपने हृदय को तुम्हारे अनुसार हाँकू। बस तुम लोगों से यह रिक्वेस्ट है कि आइंदा इस प्रकार के 'उतरन' जैसे बेहूदा संबोधन मुझे मत सुनाना।

●

बेलू

बेलू, अक्सर मेरा पीछा करता है, उसे भुलाना चाहता भी हूँ, पर वह जैसे मेरे दिल-दिमाग पर छाया हुआ है, मेरे मानस-पटल पर उसकी छवि गुदी हुई है, अमिट, निर्मल, तरोताजा।

बात पुरानी है, दादी, नानी के समय की, इंचीटेप से नापूँ तो, 80 वर्ष पूर्व की है। बेलू मेरा प्रायमरी का सहपाठी था। मुंशीजी के रजिस्टर के अतिरिक्त कोई नहीं जानता था कि उसका नाम अलबेल सिंह था, सब उसे बेलू कहा करते थे। मेरे गाँव, डालमपुर से दो किलोमीटर पूर्व में था उसका गाँव अमानुल्लापुर जो मल्लापुर नाम से पुकारा जाता था।

मुझे अपना गाँव रह-रहकर याद आता है—इसलिए बेलू भी मुझे रह-रहकर याद आता है—जहाँ की माटी में खेल कूद मचाई थी, जहाँ की भोली-भाली निश्छल स्त्रियों की ममता, प्यार, चुहलबाजी, हँसी-मजाक में मैं पनपा था, जहाँ की पाठशाला में प्रवेश लेते ही मैंने अपने करियर की सीढ़ी के पहले डंडे पर पाँव रखा था और चढ़ते-चढ़ते यहाँ तक पहुँच गया, मेरे करियर की नींव तो वहीं रखी गई थी, उसी पर तो मेरा सारा महल टिका हुआ है—तो उससे लगाव, गलत तो नहीं। मुझे लगता है जैसे मेरे जीवन के अंतर्लिखित उपन्यास के पन्ने फड़फड़ाते हुए, मुझे उकसा रहे हैं कि मैं इन्हें बाँचू।

तो बेलू मेरा बचपन का प्रायमरी कक्षा का सहपाठी था। हम दोनों में गहरी मित्रता थी। बेलू अपने खेत से मेरे लिए, रोज ही कुछ-न-कुछ लाता रहता था। मैं कहता, "बेलू, क्यूँ लाता है ये सब तू मेरे लिए?" वह उत्तर देता, "साथ-साथ बैठकै खाण मैं मजा आत्ता है ना।" मैं और बेलू, स्कूल की पूरी छुट्टी होने के बाद भी, काफी देर तक, स्कूल के बाहर बैठे, कभी गन्ने चूसते रहते थे, कभी कुछ, कभी कुछ खाते रहते थे।

हमारा स्कूल प्रातः से सायं तक चलता था—दोपहर में, सर्दियों में एक घंटे की, गर्मियों में दो घंटे की छुट्टी होती थी। मुंशीजी और सब बच्चे अपने अपने घर, रोटी खाने चले जाया करते थे। दूर से आने वाले बच्चे, अपने साथ कपड़े के टुकड़े में रोटी बाँध लाया करते थे, रोटी खाकर स्कूल में ही आराम करते थे, आराम क्या करते थे, एक धमा चौकड़ी मचती थी। बेलू अपने साथ, मोटी-मोटी, दो मिस्सी रोटियाँ, गुड़ की डली या शक्कर, अचार की फाँक और प्याज का गंठा लाया करता था—एक रोटी मुझे देता था, एक अपने आप खाता था, प्याज मुझे वह नहीं देता था, कहता था, "तू तो बाम्मण है, प्याज खात्ता ई नईं।" प्याज खाने को मेरा मन भी करता था, पर पिताजी के कठोर अनुशासन के कारण, हमारे घर में कभी प्याज का प्रवेश नहीं हुआ। आधी छुट्टी में मैं अक्सर घर रोटी खाने नहीं जाता था क्योंकि बेलू इतना कुछ ले आता था कि मेरा और बेलू दोनों का पेट भर जाता था। माँ कहती थी "रोट्टी खाण क्यूँ नईं आया रे?" "माँ, बेलू इतनी रोट्टी ले आत्ता है के हम दोन्नों का पेट भर जात्ता है।" माँ सुनकर चौंक पड़ी थी, "बेलू की रोट्टी खाई तूने?" "हाँ माँ।" "अरै वो तो जाट का है, तेरे पिताजी नै जिब पता चलैगा, देखणा तेरी कैसी पिटाई होगी।" मैं डर गया और माँ से कहा, "माँ, पिताजी तै मत कहणा, फेर कदी नईं खाउँगा।"

बरसात के मौसम में, जब आधी छुट्टी होती थी तो मैं और बेलू जामुन खाने खिसक जाया करते थे। मेरे गाँव से, उत्तर की ओर एक दगड़ा पास के गाँव चिंदौड़ी जाता है, इसे गाँव का हाईवे कहा जा सकता है, दगड़े के दोनों ओर जामुन के वृक्ष लगे हुए थे,? पकी हुई जामुन अपने आप ही टपक जाया करती थी, या फिर हम ईंट-रोड़े, मिट्टी के डले, तीरंदाज की भाँति, बाँया बदम आगे बढ़ाकर, बाईं आँख भींचकर, दाएँ हाथ में पकड़े हुए डले को दाईं आँख तक ले जाकर फिर हाथ को पीछे मुड़ा, बाएँ घुटने को आगे को मोड़, पूरी शक्ति से पकी जामुनों पर मारते थे, जामुन नीचे टपक जाती थीं, या निशाना चूक जाने पर, दूसरी कोशिश की जाती थी। जामन खाकर हम, दबे पाँव आकर, स्कूल में, दूसरे बच्चों के साध टाटपट्टी पर लेट जाया करते थे। एक दिन एक बच्चे ने मुंशीजी से हमारी शिकायत कर दी—"मुंशीजी, चंदरू, बेलू दोन्नों जाम्मण खाण गए थे।" मुंशीजी ने पूछा, "क्यों रे, ग.ए थे तम दोन्नों जाम्मण खाण?"

"नईं मुंसी जी, यू झूट बोल्लै, हम दोन्नों तो यईं सोर्‌ये थे।" बेलू ने जवाब दिया।

"अच्छा अपणी अपणी जीब दिखाओ।" मुंशीजी ने आदेश दिया। जीभ जामुन खाने की चोरी खोल देती थी और खूब पिटाई होती थी। तब तक इतना ज्ञान हमें नहीं था, कि किसी चीज का खाया-पीया छिप सकता है, पर जामुन खाने की चोरी नहीं छिप सकती, वह अपनी छाप, जीभ पर छोड़ जाती है। मुंशीजी की एक्टिंग करते बेलू ने कहा था, "क्यूं रे चंदरू, जाम्मण खाण गया था? दिखा अपणी जीभ।" और मैंने अपनी पूरी जीभ बाहर निकालकर 'है' किया था और बेलू मुंशीजी की तरह बोला, "चूहड़े। जूठ बोल्लै।" और मेरी हथेली पर धीरे-से कमची मारी थी। हम दोनों खिलखिलाकर हँस पड़े थे। चूहड़े गाली देना उनका तकिया कलाम था।

जिस दिन बेलू की रोटी खाने पर माँ की डाँट पड़ी थी, उसके अगले दिन मैंने बेलू से कहा था, "बेलू, मैं तेरे घर की कच्ची रोट्‌टी नईं खा सकता, हम बाम्मण हैं ना।" "अरै हाँ, मनै ध्यानई नईं रह्‌या के तम किसी के याँ की बच्ची रोट्‌टी नईं खात्ते, चल जिद्‌दिन पूड़ी, कचोड़ी बणैगी उद्‌दिन खा लियो।" फिर बेलू ने कभी मुझसे रोटी खाने का आग्रह नहीं किया, हाँ, गन्ने, फूट, कचरे, सैंद, आम, अमरूद आदि वह समय-समय पर लाता रहा।

बेलू गोरा-चिट्‌टा, हट्‌टा, कट्‌टा, बड़ा ही खूबसूरत था। वह जब दाएँ होंठ को थोड़ा दबाकर, बाएँ को थोड़ा खोलकर, मुस्कराता था तो उसके गाल पर एक डिंप पड़ जाता था, तब वह बड़ा मनोहर लगता था। वह मुझसे बलिष्ठ था। किसी भी छात्र से झगड़ा हो जाना मामूली बात थी, लेकिन बेलू मेरे साथ एक ढाल की तरह अड़ जाया करता था। एक दिन बेलू ने एक बच्चे की नाक पर इतनी जोर से घूँसा मारा कि उसकी नकसीर फूट गई, स्कूल में एक हंगामा-सा मच गया, उसके सिर पर ठंडा पानी डाला गया, नकसीर बंद हो गई। मुंशीजी ने बेलू की जमकर पिटाई की, मैं बेलू के कारण सारे स्कूल में प्रसिद्ध हो गया, फिर किसी ने मुझसे पंगा नहीं लिया। उस दिन मैंने बेलू से कहा था, "मेरी वजै तै तुझे मार पड़ी बेलू! देखूँ तेरी हथेलियाँ।" मैंने उसकी हथेलियों को सहलाया।

दोपहर की छुट्‌टी के बाद संध्या तक केवल गणित-शिक्षण होता

था। प्रातः काल से दोपहर तक तो मैं अपनी क्लास का मॉनिटर रहा करता था, लेकिन दोपहर बाद गणित में मेरी नानी दादी याद आ जाया करती थी, मुंशीजी की कमचियों से मेरी जमकर पिटाई होती थी। एक दिन किसी सवाल की गलती पर, मुंशीजी की गिनी-चुनी कमचियों की अपेक्षा जरूरत से ज्यादा कमचियाँ तड़ातड़ मेरी हथेलियों पर ऐसी बरसीं कि मेरी हथेलियाँ सूज गईं। बेलू उस दिन बड़ा उदास रहा, उसे देखकर लगता था, मुझे आज भी उसका चेहरा याद है–जैसे कमचियाँ मुझे पड़ रही थीं और पीड़ा बेलू को हो रही थी। बेलू ने मेरी दोनों हथेलियाँ अपने हाथों में ले लीं और कहा था, "दरद होरा है ना?" "हाँ।" "मुंशी जी भोत बुरे हैं, इस ढाळ पीट्या करैं?" कहकर वह रुआँसा हो गया और बहुत देर तक मेरी हथेलियों को सहलाता रहा।

बेलू बहुत मजाकिया था। बात कहने का उसका ढंग निराला होता था। मुझसे एक दिन बोला, "चंदरू, एक बात का तनै पता है?" "कोण सी बात?" "मेरा सुसरा मनै ढूँढता फिर्रा होगा, पर इबलों मैं उन्नै पाया नईं।" कहकर वह हँस पड़ा था। मैं अक्सर उससे पूछा करता था, "बेलू, तेरा सुसरा तनै ढूँढ पाया कि नईं?" "इबलों तो ढूँढ़ नईं पाया।" कहकर उसने अपनी वही मुस्कान बिखेरी थी–दाएँ होंठ को थोड़ा बंद कर, बाएँ को थोड़ा खोला। उन दिनों, गाँवों में प्रायः छोटे-छोटे बच्चों की शादियाँ हो जाया करती थीं, बच्चों में दूल्हा बनने की हसरत पनपने लगती थी।

मेरे स्कूल में, आसपास के गाँवों के लड़के पढ़ने आया करते थे, क्योंकि हर गाँव में स्कूल नहीं होते थे, स्कूल प्रायमरी, चौथी कक्षा तक था। सहशिक्षा की चेतना का विकास नहीं हुआ था, अथवा लड़कियों की शिक्षा की कोई अहमियत नहीं थी, फलतः दूर-दूर तक लड़कियों के स्कूल नहीं दिखाई पड़ते थे।

स्कूल गाँव के पूर्वी छोर पर था। कच्ची दीवारों पर, एक-एक फुट के फासले से शहतीरों पर रखी हुई कड़ियों के बीच के फासले को लकड़ी के पतले-पतले तख्तों से पाटकर, उस पर कच्ची मिट्टी डालकर बनाई हुई स्कूल की छत थी जो बरसात में कहीं-कहीं से टपक जाया करती थी और टपके के डर से बच्चे इधर-उधर खिसकते रहते थे। हॉल नुमा दो बड़े-बड़े कमरों में पूरा स्कूल समाया रहता था, प्रत्येक कमरे में दो कक्षाएँ। दोनों कमरों के बीच की कॉमन दीवार में बिना किवाड़ों वाले दो दरवाजे थे,

बाहर की दीवार में भी दो दरवाजे थे जिनमें आम के बलखाए तख्तों के मरियल से दो दरवाजे थे, जो हल्की-सी हवा से भी बज उठते थे। एक दरवाजे को अंदर से बंद कर, बाहर वाले पर मुंशीजी साँकल चढ़ाकर ताला लगा दिया करते थे, प्रातः मुंशीजी ही उसे खोलते थे, उनका नाम था मुंशी सुगनचंद।

आज की पीढ़ी कदाचित् विश्वास नहीं करेगी कि दो कमरों में पूरा एक प्रायमरी स्कूल, चार कक्षाएँ, एक सौ के करीब बच्चे–हिंदी, उर्दू दोनों भाषाओं के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों का अध्यापन–और इन सबके लिए मात्र एक शिक्षक–वही हेडमास्टर, वही सहायक मास्टर, वही चपरासी–क्लर्क की आवश्यकता इसलिए नहीं पड़ती थी कि फीस आदि का कोई लेन देन नहीं होता था, चपरासी का काम–स्कूल में झाड़ू लगाना, मुंशीजी के लिए पानी आदि लाना, बच्चे करते थे। गोबर से लिपे फर्श पर लंबी टाटपट्टी बिछाकर, छात्र उस पर बैठते थे। बाहर वाले कमरे में एक छोटी-सी मेज और लकड़ी के तख्ते की एक कुर्सी मुंशीजी के लिए बिछी रहती थी, जिस पर बैठने का मौका मुंशीजी को कम ही मिलता था–कभी पहली कक्षा को तख्ती पर लिखने के गुर सिखाते थे, कभी दूसरी कक्षा को पहाड़े याद करने को कहते थे, कभी दूसरे कमरे की कक्षा तीन को पाठ्य पुस्तक पढ़ने को कहते थे, कभी चौथी कक्षा को कुछ याद करने को कहते हुए हाथ में कमची लिए, कमरों में इधर से उधर घूमते रहते थे। संध्या को, पूरी छुट्टी होने पर, बच्चे अपनी तख्ती, कपड़े में लिपटा बस्ता, अपनी बगल में दबाकर, अँगुली में डोरी बँधी दवात या कुल्हिया का बुदका लटकाकर एक उल्लास के साथ लबड़-धबड़ दौड़ पड़ते थे, उनके चेहरे की वह प्रफुल्लता जेल से रिहा हुए कैदी की प्रसन्नता जैसी लगती थी और वे चहकते, बतियाते, उछलते-कूदते चारों दिशाओं में फैल जाते थे। लगता था मुर्गियों कर दड़बा खोल दिया हो और मुर्गे-मुर्गियाँ, चूजे, सब चें चें करते नाच उठे हों, इधर-उधर फड़फड़ा उठे हों।

दोपहर बाद, बच्चे स्कूल के बाहर, गर्मियों में छाँह में और सर्दियों में धूप में आ जाया करते थे। मुंशीजी एक क्लास से कहते, "तुम सब पहाड़े याद करोगे, दूसरी कक्षा को गिनती रटने का काम दिया जाता था, तीसरी को गणित की पुस्तक से सवाल करने को दिए जाते थे और एक

कक्षा को मुंशी जी हल करने के लिए सवाल दिया करते थे। मतलब दोपहर बाद का सारा समय गणित को दिया जाता था—आधे में अब और आधे में सब। सेमीसर्किल बनाकर पहाड़े रटने वाले लड़के खड़े हो जाते थे, बारी-बारी से एक लड़का आता था और वह जोर लगाकर बोलता था, "एक दुनी दूनी"—बाकी लड़के अपनी पूरी शक्ति लगाकर बोलते थे, "एक दुनी दूनी", "दो दुनी चार"—"दो दूनी चार"—उनकी आवाज गाँव में दूर-दूर तक फैल जाती थी, पता लगता था कि स्कूल में बच्चे पढ़ रहे हैं।

मुझे याद है कि गणित के जो सवाल हमें मुंशीजी ने चौथी कक्षा से सिखाए थे, वे बोर्ड की दसवीं कक्षा में भी पढ़ने को मिले। मुझे मुंशी सुगन चंदजी की रह-रहकर याद आती है, उन्हें ही प्रथम गुरु मानता हूँ, उन्हीं के कारण मैं सुंदर सुंदर लिखना सीखा, उन्हें मन ही मन प्रणाम करता हूँ, आज वे होते तो निश्चित ही उन्हें श्रेष्ठ शिक्षक जैसा कोई पुरस्कार मिला होता। बच्चों की पढ़ाई के प्रति तब इतनी चेतना पैदा हो गई थी कि प्रथम दिन स्कूल भेजते समय अभिभावक मुंशी जी से कह दिया करते थे कि इसका मांस चमड़ी थारी, हड्डी म्हारी। अपवाद रूप में भी मैंने कभी नहीं सुना था कि किसी अभिभावक ने मुंशीजी से अपने बालक की पिटाई पर गिला शिकवा किया हो। सभी बच्चों पर मुंशीजी का एक आतंक रहता था। अपने बच्चे के किसी दोष के निवारण हेतु वे मुंशीजी से शिकायत कर दिया करते थे, बच्चा राह पर आ जाता था। मेरे, ततैये मारने के शौक को, मेरी माँ ने मुंशीजी से शिकायत करके छुड़वाया था।

चौथी कक्षा पास कर लेने के बाद, मैं एक साल तक, पास के गाँव चिंदौड़ी में अंग्रेजी पढ़ने के लिए, किसनू मास्टर के यहाँ जाता रहा, उन्हें सब किसनू मास्टर कहा करते थे। अगले वर्ष मैंने मेरठ के ब्राह्मण एंग्लो वैदिक हाई स्कूल में, सातवीं कक्षा में डायरैक्ट एडमिशन ले लिया था। मेरठ बड़े भैया के साथ रहने लगा था, बाकी सारा परिवार—माँ, पिताजी, भाई, भाभी, सब गाँव में ही रहते थे, इसी कारण गाँव से नाता बराबर बना रहा, बेलू से भी नाता बना रहा, मैत्री उत्तरोत्तर बढ़ती गई।

मेरा गाँव डालमपुर, मेरठ के 15 कि. मीटर पश्चिम में है। मेरठ से गाँव जाते समय मुझे बेलू के गाँव के ठीक बीचोबीच होकर निकलना पड़ता था, रास्ते में ही बेलू का घर पड़ता था। मेरठ से गाँव जाते वक्त

मैं बेलू को उसके घर के बाहर, "बेलू, ओ बेलू", कहकर आवाज लगाता था, भीतर से उसकी माँ की आवाज आती, "खेत पै गया है।" मल्लापुर से निकलते ही जो दगड़ा मेरे गाँव की ओर जाता है, ठीक उसके किनारे पर बेलू के खेत थे। बेलू मुझे अक्सर वहीं खड़ा मिलता था। शनिवार या किसी छुट्टी के पहले दिन बेलू अनुमान लगा लिया करता था कि आज चंदरू आएगा। मुझे लगता है बेलू मेरी बाट जोह रहा है। उसे दूर से देखते ही मैं जोर से चिल्लाता, "बेलू! ओ बेलू!" वह उमंग में मेरी ओर दौड़ पड़ता था और मेरी कोली भर लेता था, कुछ देर तक वह कहता कुछ नहीं था, बस मेरी कोली भरे वही मुस्कान फेंकता—दाएँ होंठ को थोड़ा दबाकर, बाएँ को थोड़ा खोलकर।

"कैसा है रे तू बेलू?" "भोत बढ़िया।" मैं पूछता, "बेलू, तू इबी अपणे सुसरे नै पाया के नईं?" ना में गर्दन हिलाता हुआ वह कहता, "पता नईं कहाँ रळ ग्या, मैं चौड़े मै खड़्या हूँ, पर उन्नै दिखाई ई नईं पड़्या।" मैं उसे ढाढस बँधाता, "फिकर ना कर बेलू, तेरा सुसरा तनै ढूँढ़ ई लेगा।" इस पर बेलू कहता, "भई ढुंड्डण का काम तो उसका है बस मेरा काम तो इतना है के मैं कईं दुबक ना जाऊँ, अरै जिब वो मनै ढूँढ़ लेगा तो तनै पता नईं चलैगा?" कहकर वह मुस्कराया। बेलू ने अपने खेत के किनारे एक झोंपड़ी डाल रखी थी जिसमें पानी का घड़ा, एक ढीली-ढाली चारपाई, खुरपा, फावड़ा आदि रखे रहते थे। वह अपने खेत से, मेरे लिए मौसम की जो भी फल सब्जी वगैरह होती थी, तोड़ लाता था—कभी आम, कभी गाजर, मूली, कभी सैंद कचरिया, कभी मटर की फलियाँ और विशेषतः गन्ने। मुझे स्मरण नहीं मैं कभी भी, अपवाद रूप में भी, बेलू के खेत से बिना कुछ खाए पीए अपने गाँव पहुँचा हूँ, आम के सीजन में देसी आम और एक लौटे में दूध तैयार रखता था।

बेलू के खेत के गन्ने काफी मोटे और लंबे होते थे, वह भूमि बड़ी उपजाऊ थी। ईख के खेत में, पास पास के पाँच-सात गन्नों को एक साथ मिलाकर, उन्हें आपसे में गन्ने की पत्तियों से बाँध दिया जाता था—फिर कैसी भी आँधी हो, तूफान हो, ओलावृष्टि हो, वे एक दूसरे का सहारा लेकर—तनकर खड़े रहते थे—मेरे समक्ष "संघे शक्ति कलौयुगे" की सोदाहरण प्रस्तुति हो उठती थी। वह दृश्य देखने में बड़ा मनोहर लगता था जब मेरी दृष्टि लंबे-लंबे गेंहुओं के खेतों के बीच-बीच एकदम सीधी

पंक्ति में लहराती हुई पीली सरसों पर पड़ती थी, तो लगता था मानों धरती मैया ने पीले रंग की कढ़ाई के नमूने वाली हरी रिजाई ओढ़ रखी है। आम्र मंजरियों की गंध से सिक्त कोयल की कूक कानों में रस घोलती थी, अब जब भी स्मरण होता है तो एक हूक-सी उठती है, अब वह कहीं नहीं सुनाई पड़ती।

समय तेजी से गुजरता गया, मैंने हाई स्कूल परीक्षा पास कर ली थी। पढ़ाई की व्यस्तता बढ़ती गई और बेलू से मिलना अपेक्षाकृत कम होता गया। लेकिन गाँव आना-जाना बना रहा, जब भी गाँव जाता था, बेलू से बिना मिले नहीं आता था। मुझे नई साइकिल खरीदवादी गई थी। बेलू मुझे अब पंडितजी कहकर पुकारने लगा था। मैंने उससे कहा, "बेलू, तू मनै पंडज्जी क्यूँ कहण लग्या?" वह बोला, "इब तम बड़े आदमी हो गए हो, बाइसिकल खरीद ली है, देख कितनी सोहणी है, कितने सोहणे कपड़े पहरण लग्ये हो, बिल्कुल बाबूजी से लगो।" सुनकर मुझे अच्छा नहीं लगा। मैंने कहा, "बेलू तू मनै अपणे तै अलग करणा चाहवै?" "ना पंडज्जी ना, तम तो मेरे हिरदे में बैट्ठे हो, तमनै क्युँक्कर अलग कर सकूँ?" उदास से बेलू ने कहा। इस पर मैं बोला था, "देख बेलू तू मेरे तै इस ढाळ बात करैगा, तो मैं तेरे तै नईं बोल्लूँगा।" बेलू चुप। मैंने कहा, "उसी ढाळ बोल, ज्युँक्कर पहलै बोल्या करै था।"

"अच्छा पंडज्जी, उसी ढाळ बोल्या करूँगा।" "फेर पंडज्जी?"

"अच्छा चंदरू सही,...पर चंदरू, किसी भी नाम तै बुलाऊँ, रहैगा तो तू मेरा चंदरू ई, देख तू गवरनर भी वण जाग्गा ना, रहैगा मेरा चंदरू ई।"

"हाँ, यह हुई ना बात।" कहकर मैंने उसे सीने से लगा लिया। बेलू ने आव देखा न ताव, अपनी धोती की फेंट खोली और मेरी साइकिल पर लगी धूल झाड़ने लगा। मैंने कहा, "अरै यू के कर्रा है, धोली मैल्ली हो जाग्गी।"

"इसतै और के मैल्ली होगी? रात दिन न्यूँई धूळ माट्टी मै रहवै, कदी फिकर ई नईं करी धोत्ती मैल्ली होण की, थारी बाइसिकल" ही कह पाया था कि मैंने झट टोक दिया, "फेर थारी?" "अच्छा तेरी सही,...तेरी बाइसिकल पै देख कितनी धूळ जम गई है, इब मनै पूँछ दी तो कितनी चमक गई है।"

मैंने कहा, "यू तो फेर गंदी हो जाग्गी।" "मेरी धोत्ती तो सदाई गंदी रहवै, मनै के फरक पड़े गंदी या सुथरी तै?"

मैंने अपना चिरपरिचित प्रश्न दोहराया, "बेलू! तेरा सुसरा तनै ढूँढ पाया के नईं?" "भला कैसी बात करो पंडञ्जी।" "फेर पंडञ्जी?" "अरे आदत सी पड़गी है छूट जाग्गी...यू बता चंदरू गर मैं अपणे सुसरे नै पा जात्ता तो तनै खबर नई पड़ती? सवतै पहलै तनैई खबर दयूँगा। अच्छा न्यूँ बता दसवीं पास कर ली?" मैंने कहा, "हाँ इबी परसोंई रिजल्ट आया है।"

सुनते ही बेलू खुशी से उछल पड़ा, बोला, "शब्बास, मेरे यार, तनै आज बेलू का दिल खुश कर दिया, बता तेरा मूँ किस दाळ मिट्ठा करू? ...बेलू उस समय गन्ना चूस रहा था, आधा गन्ना वह चूस चुका था उसने अपने दाँतों से छिली हुई गन्ने की पोरी तोड़ी और मेरी ओर बढ़ाते हुए बोला, "ले, मुँह मिट्ठा कर ले, ...अरे ठहर, यू तो जुट्ठी हैं।" और गन्ना मेरी ओर बढ़ाते हुमा बोला, "ले इसनै छील ले और चूस।" मैंने झट बेलू की जूठी पोरी दाँतों तले दबाई और तोड़कर चूसने लगा, "भोत मिट्ठी है।" बेलू खड़ा देखता रहा, कदाचित् वह सोच रहा था, "अरे यू के कर्‌या पंडञ्जी, मेरी जुट्ठी पोरी खा गया, कहीं मैं कोई पाप तो नहीं कर बैट्ठ्या?" पर उसने कहा कुछ नहीं, शायद सोचता हो कि कहीं मैं उसके कहे का बुरा न मान जाऊँ।

थोड़ी देर बेलू चुप खड़ा, मुस्कराता रहा, फिर बोला, "न्यूँ बता, मेरठ कद जाग्गा?" "पता नईं कद जाऊँ?" "क्यूँ ग्यारहवी में दाखला, नईं लेणा?"

"लेणा है, क्यूँ नहीं लेणा?" "हाँ, मैं तो डर ग्या था के तनै पढ़ाई का जुआ तार फैंक्का!" "नईं बेलू, आग्गे पढूँगा।" "हाँ, पढता चला जा, कहीं थम ना जाइयो बीच में, कदी थक कै साँस लेण लगै!" "ना बेलू, खूब पढूँगा।" "हाँ इसी ढाळ 'झंडा ऊँचा रहे हमारा' गात्ता चल और–उप्पर नै चढ़ता चला जा...मनै मोत खुसी हुई, मनै लगै चंदरू मनैई दसमी पास कर ली, मनै पढण का मौक्का मिलता तो मैं भी तेरे साथई पढ़ता,..." कहकर बेलू चुप हो गया।

मैं गाँव पहुँच गया। अगले दिन प्रातः ही पिताजी ने आवाज लगाई, "चंद्र शेखर!" "हाँ पिताजी।" भीतर से ही बोला। "देख बेलू आया

है।" "बेलू?" और मैं उमंग में बाहर आया। मुझे देखते ही बेलू मुस्कराया और बोला, "ले मुँह खोल।" जैसे ही मैंने मुँह खोला, बेलू ने बर्फी का एक टुकड़ा मेरे मुँह में ठूँस दिया—"बधाई, मेरे यार!" "ये ले तेरे पास होण की खुसी मैं।" और मेरे हाथ में एक पोटली थमा दी, उसमें काफी सारी बर्फी थी।

"अरे इतनी सारी?" "मैं कोणसा मोल ल्याया हूँ, घर मैं दूध होवे, उसका मावा बणा लिया और खांड मिलाई, गोळा घिस कै गेर दिया, और बर्फी बणा ली।" जिस कपड़े में बर्फी बँधी थी, वह मैले से कपड़े का टुकड़ा था। बेलू को इसका अहसास था, बोला, "घर मै कोई साफ-सुथरा कपड़ा थाई नईं।" "तो के हुया?" मुझे न जाने क्यूँ कृष्ण सुदामा की कहानी याद आ गई—जबकि न मैं कृष्णा हूँ और न बेलू सुदामा।

एक बार मुझे जांडिस हो गया था। मेरठ से गाँव जाना काफी दिनों बाद हुआ। बेलू, यथावत् अपने खेत पर ही खड़ा मिला, मुझे देखते ही उसके चेहरे की लालिमा, देखते ही देखते, उदासी से पीली-सी हो उठी, "अरे यू के हो गया तनै? सारा चेहरा पेळा पड़ ग्या, के बात है, बड़े दिनों मै आया?" मैं बोला, "पीळिया हो ग्या था, इब ठीक हूँ।" "किंधे तै ठीक है? सिस्से मै अपणी सकल देकखी है?" कहकर वह बहुत उदास हो उठा, उसकी आँखें तरल हो उठीं।

थोड़ी देर बेलू के पास बैठा, गपशप करी और मैं गाँव के लिए चल पड़ा। पीछे से मुझे सुनाई पड़ा, "अपणा ध्यान रखियो...।" तीसरे दिन अपने नियमानुसार मैं सोमवार की प्रातः मेरठ के लिए चल पड़ा। खेत पर खड़ा बेलू मेरी राह देख रहा था, मैंने साइकिल खड़ी कर दी। बेलू ने अपनी जेब से एक तावीज निकाला और मेरे गले में डाल दिया—"यू के है बेलू?" "यू बाबा जी का तबीज है, बलैणी तै ल्याया हूँ।" "बलैणी तै? इतनी दूर तै?" "तो के हुया, तड़की गया था, साँझ नै वापस आ लिया, रस्ते मै पुरा महादेव के दरसन भी कर आया, नदी नाह आया और तबीज ले आया—चल इब तू ठीक हो जाग्गा, पीळिया का यह सरतिया इलाज है। रात नै छत पै गांडे गेर दिया कर, तड़की उठकै चूख लिया कर।" में बेलू के मुख की ओर देखता रह गया। उसके मुख पर जो दीप्ति, जो आत्मविश्वास था, उसकी स्मृति आज भी मुझे एक अनिर्वचनीय सुख से सींच देती है। मैं बोला, "ठीक है, इब मैं तावळी चंगा हो

जाऊँगा...बेलू ने एक जर्जरित से थैले को मेरी साइकिल के हैंडिल पर टाँग दिया। "इसमै के है बेलू?" "कुछ नहीं घी की कनस्तरी है, खूब घी खाणा, तावळी भला चंगा हो जाग्गा और देख इवकै जिब आवेगा तो मनै तेरा मू पेळा सा मुँह नईं दिखाई पड़े?" मैंने विरोध किया, "देख भाई, मैं तेरा दिल नईं तोड़ना चाहता, मैं ये घी नहीं ल्यूँगा।" "क्यूँ?" "तेरे घर वाळे के कहैंगे!" सुनते ही बेलू बोला, "अपणे हिस्से का ल्याया हूँ, फेर कईं तै खरिद्‌दा तो है नईं, घर में ई बण्या है।" मेरे लाख विरोध करने पर भी बेलू नहीं माना और वह कनस्तरी मुझे लानी पड़ी, मुझे लगता है, बेलू के घी से प्राप्त ऊर्जा अभी भी मेरे भीतर विद्यमान है।

मैंने देखा कि बेलू के पैरों में बिवाइयाँ फटी हैं और वह नंगे पैर है। मैंने पूछा, "बेलू, नंगे पाँ? जुत्ती नईं पहरी?"

"विवाइयाँ फट गई हैं, जुत्ती पहरण तै चीस उठें।" अगली बार जब में मेरठ से गाँव गया तो बेलू खेत पर ही मिला। मैंने जेब से मरहम की डिबिया निकाली, उसे बेलू को देते हुए बोला, "ले बेलू! इस मर्रम नै लगा लिया कर, विवाइयाँ ठीक हो जाँग्गी।" "बजार तै खरीद कै ल्याया है?" "हाँ।" "फेर मैं नईं ल्यूँगा।" मैंने कहा, "क्यूँ?" "क्यूँकि तू खरीद कै ल्याया है, के जरूरत थी? बिवाई भी कोई ऐसी बिमारी है जिसके वास्ते पैसे खर्च करे जाएँ, हो जाँग्गी साळी सब ठीक—यू तो आम बात है, ना भई मैं नईं ल्यूँगा।" कहते हुए उसने मुझे मरहम की डिबिया वापस कर दी।

थोड़े प्यार भरे क्रोध से मैंने कहा, "ठीक है, आग्गे तै मैं भी तुस्से कोई चीज नईं ल्यूँगा। तू रोज-रोज कदी कुछ, कदी कुछ लाद देत्ता है मेरे सिर पै, आज तै बंद।" वह बोला, "अरै मैं कौण सा खरीद के देऊँ, सब घर मैंई पैदा होवै, मैं तो प्यार की वजै तै देत्ता हूँ।" "और मैं बिना प्यार के देर्‌या हूँ?" वह बोला, "नईं, तबी तो देर्‌या है, तनै मेरे उप्पर दया आई तो तू खीद ल्याया, इसमैं दया, किरपा दोन्नों मिली हैं।" इस पर मैंने कहा, "तूने कितनी बार मेरे उप्पर दया दिखाई, मुंशीजी कमचियाँ तै जिब मेरी हथेलियाँ लाल पड़ जाया करैंती, उनपै तू अपणी हथेळियाँ फिराया करै था के नईं, उन्हें सहळाए करै था के नईं?" वह बोला, "हाँ सहलात्ता था, उसमैं खालिस प्यरा हुया करै था, किरपा नईं हुया करैती, तू मेरी गरिब्बी पै किरपा दिखा र्‌या है, मनै किरपा नईं चहिए, किरपा मै तरस मिला होत्ता है, जिब मनैई तरस नई आत्ता अपनी गरिब्बी पै तो तू क्यूँ

तरस खावै?'' सुनकर मैं झुंझला पड़ा, ''तो मैं तेरी गरिब्बी का मजाक उड़ार्या हूँ, तनै निच्चा दिखा र्या हूँ, यू ई बात है ना?''

''मनै गलत मत समझ चंदरू, यू मेरा पण (प्रण) है कि कोई मेरी गरिब्बी पै तरस खाकै मनै कुछ दे, तो मैं नईं ल्यूँगा।''

मैं बोला, ''बेलू! तू इतनाई समझया है मनै, क्या मनै पता नईं कि तू धेल्ले की डिबिया खरिद्दण लाक हैं? तेरी लापरवाई है के तू सहर जाकै मर्रम की डिबिया खरीद लात्ता, मैं सहर ते आत्ता रहत्ता हूँ, मैं खरीद ल्याया तो कोण-सी किरपा कर दी तेरे ऊप्प्र...खैर इब ते कोई लेण देण नईं होगा।'' कहकर मैंने डिबिया जेब में रख ली।

उदास सा होते हुए बेलू ने कहा, ''अच्छा ला दे डिबिया।'' कहकर बेलू ने मेरी जेब में हाथ डाला और डिबिया निकाल ली—''बेलू! मनै भोत दुख हुया के तनै समझ्या के मैं तेरी गरिब्बी की मजाक उड़ा रया हूँ, तेरे जितना अमीर तो मैं कदी नईं वण सकता, अमीरी गरिब्बी तो माणस के दिल में होवै।''

''अरै बावळे! कदी ऐसा सोच सकूँ के तू मेरी गरिब्बी का अपमान कर सकै? यू तो मैं सौ सौ कोस तक भी नईं सोच सकता।''

''बस यूई सोचकर ले आया था के बेलू लापरवाह है, बिवाइयाँ तै खून चू र्या है और उन्नै फिकर ई नईं।''

''किसाण इन छोट्टी मोट्टी तकलिफ्फाँ तै घबराण लगै तो कर ली उन्नै खेत्ती—भैया, 'खेत्ती खसम सेत्ती'—इस तरयाँ की चिज्जें तो रोज होत्ती रहवैं, कदी पाँ मैं फाळी लग्गी, कदी हाथ मै खुरपी, कदी कुछ, कदी कुछ...। देख र्या मेरी हथेलियाँ...'' उसने मुझसे अपनी हथेलियाँ दिखाईं और बोला—''कैसी पत्थर हो गई हैं फावड़ा चलात्ते चलात्ते, सारी मैं डील पड़ गी हैं...ये तो किसाण के जेवर हैं, वो किसाण ई नईं जिसके हात्थाँ मै डील न पड़ी हों, पैराँ मै विवाइयाँ ना फटी हों, ना उसके पास फुरसत है, ना इतना पैसा के इन मामुल्ली से चोंचलों की खात्तिर पैसे लुटात्ता फिरै।'' कहकर बेलू चुप हो गया।

मैंने कहा, ''अच्छा इब चलता हूँ, हाँ एक बात और, देख बेलू, इबकै रोहँटे की पीठ तै अपणे लिए जुत्ती खरीद लाइओ।''—''ले आऊँगा।'' बेलू ने कहा। मैंने कहा, ''नईं तो अगली बेर मैं तेरे लिए जुत्ती खरीद लाऊँगा और तनै लेणी पडैंगी।...अरै हाँ, यू तो पूछ्णा भूलई गया

के तू इबलों अपणे सुसरे नै पाया के नईं?'' वह बोला, ''फेर वोई बावळी बात, अरे मैं उन्नै पा जाता तो तनै खबर नईं लगती?'' ''अच्छा तो इब मैं चलूँ।'' कहकर मैंने साइकिल स्टैंड से साइकिल उतारी और बेलू के दार्शनिक विचारों के बारे में सोचने लगा। मैं उसकी, कृपा, दया, प्यार जैसे शब्दों की व्याख्या-सी करने लगा और मन में एक हूक-सी उठी कि इसे अवसर मिलता तो वह किस फिल्मी हीरो से उन्नीस ठहरता, दर्शन का विद्यार्थी होता तो क्या दार्शनिकों में अपनी गिनती न करवा लेता...क्या है यह सब...भाग्य ही तो है।

इतने में बेलू बोला, ''अरे सुण, बात्ताँ बात्ताँ मै भूलई ग्या, थम..'' कहकर वह तेजी से खेत में घुसा और गन्नों की एक छोटी-सी पूली बाँध लाया, ''ले खाल्ली हाथ जागा बेलू के खेत तै?'' और मेरी साइकिल के कैरियर पर बाँध दी। मैंने कहा, ''बेलू! गांड्डे तो गाम मै भी भतेरे हैं।'' ''इतने मिट्ठे और फोक्के गांडे ना मिल सकैं कईं, ये तेरे बेलू के खेत के हैं, जिब तू इन्हाँनै चुस्सैगा तो तनै बेलू याद नईं आवैगा?'' कहकर उसने अपनी वही चिरपरिचित मुस्कान बिखेरी–दाएँ होंठ को थोड़ा दबाकर, बाएँ को थोड़ा खोलकर।

समय सरपट दौड़ा जा रहा था। मैंने पी-एच.डी. कर ली ओर दूर के एक कॉलेज में प्रवक्ता बन गया–मेरी शादी हो गई। मुझे रह-रहकर एक ग्लानि-सी हो रही थी कि बेलू को अपनी शादी में नहीं बुला सका।

इस बीच एक बार गाँव जाना पड़ा–ताऊ जी की तेरामी पर। यह संभव नहीं था कि गाँव जाता और बेलू से न मिलता। बेलू मुझे पहले की भाँति खेत पर ही खड़ा मिला, मानो मेरी प्रतीक्षा में खड़ा है। मैंने दूर से आवाज लगाई, ''बेलू! ओ बेलू!'' वह दौड़कर आया और मेरी कोली भर ली और झट से मुझसे अलग हो गया और बनावटी गुस्से में बोला, ''मैं नईं बोलता तुस्से।'' ''क्यूँ भई, के हुया?'' (मैं बेलू से ग्रामीण बोली में ही बात करता था) ''हुयाई नईं कुछ?–कितने दिनाँ बाद आया, न कोई खैर खबर, न चिट्ठी पतरी, ना कुछ अता-पता–पता नईं मेरे दिमाग में कैसे कैसे सवाल आ रहे थे, मैं कह नहीं सकता, कदी कदी तो मैं ऐसी बात भी सोच जाता था 'के कहीं चंदरू...' 'मर न गया हो' मैंने उसका वाक्य पूरा किया, उसने झट से मेरे मुँह पर हाथ रख दिया, ''ऐसी मुंडी बात न बोल, मेरी जान लिकड़ जागगी। पता है तनै, हर थाँवर (शनिवार)

और त्योंहाराँ की छुट्टियाँ मैं, मैं जाणता था तू नईं आवैगा, पर मेरा मन नईं मानता था, मेरी आँख दगड़े पै लगी रहवै थी कि चंदरू आत्ता होगा, ...चल बड़े दिनाँ मेई सही, आया तो सही, जिब कोई दूर तै तेरे जैसा आत्ता नजर आवै था तो मन में एक खुसी की लहर-सी दौड़ जावै थी, लगता था, चंदरू आ लिया और मैं खड्या हो कै उमंग के साथ उसकी माई (तरफ) देखता रहता था, जिब वह आग्गे नै लिकड़ जावै था वो मन बड़ा उदास हो जाया करै था...चल जिब आग्या है तो सारे दुख दूर हो ग्ये।'' मैंने देखा उसकी आँखें गीली हो गई थीं। मैंने कहा, ''बेलू माफ कर दे, सचमुच गलती हो गई, मैं तनै अपणी सादी मै नईं बुला सक्या!'' सुनकर बेलू चौंक उठा, उसे एक आघात सा लगा, उसे यकीन सा नहीं हुआ कि मेरा चंदरू, मेरे बिना शादी कर सकता है। वह बोला, ''तेरा ब्याह हो ग्या और मनै खबर भी नईं करी?'' मैंने उसे समझाया कि घरवालों को भी नहीं बुला सका था, सब कुछ बड़ी जल्दी में हुआ। वह बोला, ''ठीक है, यू तो मनै यकीन है चंदरू, के तेरी कोई मजबुरीं रही होगी। खैर छोड़ और सुणा।'' उसकी उदासी झट दूर हो गई और मुख पर वही चिरपरिचित मुस्कान खेल गई। मैंने अपना पुराना प्रश्न दोहराय, ''अच्छा बेलू, अपणे बारे मै बता, तेरे सुसरे नै तू कद पाया?...इब तो तू कई बालकाँ का बाप भी बण ग्या होगा?'' बेलू उदास-सा बोला, ''ना भाई, इबलों मैं नईं पाया अपणे सुसरे नै...इब के पाऊँगा? इब तो उसनै ढूँढणा भी छोड़ दिया होग्गा।'' मैं चौंक पड़ा, ''अरे इब लों तेरा ब्याह नईं हुआ?'' ''अरै यू भी कोई चंदरू है? यू बेलू है बेलू, चाहे जो हो जात्ता, तेरा बेलू तेरे बिना घोड़ी पै बैठ सकै था? कदी नईं।''

सुनकर मुझे एक आघात लगा—कब से सपने सँजोता चला आ रहा है बेलू और सपने, सबके सब बिखर गए। परंपरागत रूप से बेलू की शादी की संभावना पर पूर्ण विराम लग गया था, क्योंकि तब अगर किसी लड़के की शादी 20, 25 की आयु तक नहीं हुई तो समझो फिर बड़ी मुश्किल थी।

इसके चार पाँच साल बाद, ताऊ जी की लड़की की शादी पर मैं गाँव गया। बेलू के खेत के पास पहुँचकर मैंने उसी अंदाज में आवाज लगाई, ''बेलू ओ बेलू!'' बेलू पेड़ की छाँह में बैठा था, सूर्य अस्ताचल की ओर अग्रसर हो चला था, सूर्य की सीधी किरणें बेलू की आँखों पर पड़

रही थीं—बेलू ने, अपनी आँखों के ऊपर हथेली की छतरी-सी तानी और मेरी ओर चौंधियाता-सा देखकर बोला, "कोण है भाई? चंदरू है के? अवाज तो उसी की लगै?" मैंने जोर से कहा, "हाँ चंदरू हूँ, पिछाण्या नईं के?" वह भागकर आया और मुझसे लिपट गया और बोला, "के करूँ भाई, नजर कमजोर हो गई, जोड़ाँ मै भी दरद रहण लग्या।" सुनते ही मेरे हृदय पर एक घूँसा-सा पड़ा। मैं बोला, "चस्मा नईं बणवाया? जोड़ों के दरद की कोई दवाई नईं करी?" "ना भाई, इब के करणा है दवाई सवाई कर कै, चस्मा वणवा कै? माँ मर गई है, भैया भाब्बी हैं, वे दो रोट्टी दे देवैं तो खाल्यूँ, अपणा कहण वाला कोई नईं, भैया भाब्बी भी मतलब के हैं, रोज कहवैं बेलू, अपणे हिस्से की जमीन पै दसखत कर दे, पर मैं नईं करता।" मैं बोला, "क्यूँ नईं कर देत्ता दसखत बेलू? तेरे बाद उनके बाल-बच्चे ई तो मालिक होंगे।" "ना भाई, यू गलती ना करूँ, तवीलों भैया भाब्बी रोट्टी दे र्‌ये हैं जिब लों दसखत नईं करता, जिद्दिन दसखत कर दयूँगा, उद्दिनई मनै दूध की मक्खी की ढाळ घर तै बाहर काढ़ फैंक्कैगे।"

मन बड़ा दुखी हो उठा बेलू की हालत देखकर। इसके काफी दिनों बाद बेलू से बस एक बार और मिल पाया था। मैंने गाड़ी खरीद ली थी, एक बेटा भी हो गया था, तब बेटा दसवीं कक्षा में आ गया था। मैं गाँव जा रहा था। बेलू खेत पर ही मिला। मेरी आवाज सुनकर बेलू भागा आया, वह लँगड़ाकर भाग रहा था, एक जगह ठोकर लगने से गिरते-गिरते बचा, आते ही मुझसे लिपट गया, वह रो पड़ने को तैयार था। लगता था वह बहुत कुछ कहना चाह रहा था, पर शब्द थे कि उसके मुँह से फूट नहीं रहे थे। मैंने बेटे को इशारा किया, "बेटा ये हैं तेरे बेलू चाचा, तू अक्सर कहता था कि बेलू चाचा से मिलूँगा, ले इन्हें प्रणाम कर।" बेटा बेलू के चरणस्पर्श को आगे बढ़ा तो बेलू एकदम पीछे हटता हुआ बोला, "अरै के कर्रा है बेट्टे? क्यूँ मनै पाप मै डुबोवै?" "यू के कहर्‌या है बेलू! बेट्टे तै पाँ क्यूँ नईं छुवात्ता?" "अरै बाम्मण तै पाँ छुवाऊँ? राम, राम, मनै जित्ते जी नरक मैं जाणा है के?" मैं बोला, "अच्छा बेलू, न्यू बता के तनै इबी कहया था इसनै 'अरै बेट्टै! कह्या था के नईं?" "हाँ कह्या था।" "तू इन्नै अपणे बेट्टे जैसा मान्नै के नईं?" इस पर बेलू बोला, "बेट्टे जैसा, सगे बेट्टे तै भी ज्यादा, इसपै तो मैं सब कुछ कुरबान कर सकूँ।"

"फेर बता, बेट्टे तै पाँ छुवाण में के हरज है? तू मनै अपणे तै अलग समझै तो बात दूसरी है।" "चंदरू यू तो तनैई पता है कि मैं तनै अपणै तै अलग मान्नू के नईं।" "तभी तो कहर्या हूँ बेट्टे तै पाँ छुवाले, बुढाप्पै मै यू तेरी, मेरी दोनवाँ की सेवा करैगा।" "सच बेट्टे! मेरी सेवा कर्या करैगा?" "हाँ चाचाजी! आपकी भी सेवा करूँगा, पिताजी की भी सेवा करूँगा, बड़ा होकर।" और बेलू ने बेटे को सीने से चिपका लिया, "जुग जुग जीए मेरा लाल, मेरे काळजे का टुकड़ा, भगवान करे तू भोत बड़ा आदमी बणै, अपणे बाप्पू तै भी बड़ा।" बेलू की आँखों से टप टप आँसू बह चले। मैं चुपचाप खड़ा देखता रहा, उसे चुप नहीं कराया, मुझे लगा जैसे बहुत दिनों से रुका हुआ भीतर का कोई बाँध टूट पड़ा है, सोचा, बह जाने दो भीतर जमी इस बर्फ को और विगलित हो जाने दो इस वेदना-पुंज को। वह बेटे से अलग हो गया, बेटे ने पैर छुए और उसने आशीर्वाद की झड़ी लगा दी।

थोड़ी देर में हम तीनों अपनी प्रकृत अवस्था में लौट आए। बेटा बोला, "चाचाजी, ये खेत आपके हैं?" "हाँ बेट्टे! तेरे ई हैं, तने सोहणे लगे?" "बहुत सुंदर, देखो ना कैसे गेहूँ के हरे हरे खेत, पीली पीली सरसों, मटर की फलियों वाली बेलें, चने के छोटे-छोटे पौधे—सब कितने सुंदर लग रहे हैं।" इस पर बेलू बोला, "सुंदर तो लगै हैं बेट्टे! पर इनमैं तेरे चाच्चा का खून पसिन्ना मिल्या है, वो किसी नै नईं दीखता, इन्नै तो बेलू ई समझ सकै।" कहकर बेलू चुप हो गया। थोड़ी देर बाद मौन भंग करते हुए बेलू बोला, "ला बेट्टे! तेरीनजर तार दयूँ! कितना सोहणा है मेरा बेट्टा। बिल्कुल अपणे बाप पै गया है, चंदरू! जिब तू छोट्टा-सा था, तनै दसवीं पास कर ली थी, तू बिल्कुल ऐसाई लग्या करै था। मनै खूब याद है, तेरा वो चेहरा मै भुल्या नईं हूँ, वैसाई सोहणा यू है, मेरा बेट्टा।"

इस पर मैं बोला, "पर बेलू, तेरे तै सुंदर नईं, तू आज भी कितना गोरा है!" बेलू बोला, "किसाण किंघे तै गोरा हो सकै, रात दिन धूप, बारिस, गारा माट्टी मै रहवे, ना कदी पायाँ मै जुत्ती ना सिर पै टोप्पी, कदी ढंग का खाण पीण नई मिलै, किंधे तै गोरा हो जाग्गा?"...

वातावरण को बोझिल बनता देख मैंने कहा, "बेलू! इब मै चलूँगा, फेर मिलूँगा, ताबळी आऊँगा।" कहकर मैं गाड़ी की तरफ चला। मैं बोला, "आ बेलू गाड़ी में बैठ गाम चल, मैं तनै छोड्डण आ जाऊँगा।"

बेलू मेरे बराबर वाली सीट पर, गाड़ी में बैठ गया। मैं ड्राइव करने लगा, जब मैं अपने गाँव के निकट पहुँचा तो बेलू बोला, "बस चंदरू, मनै उतार दे, मनै भोत खुसी हुई, मेरा चंदरू कितना बड़ा आदमी बण ग्या है ऐसा लगै जैसे बेलूई बड़ा आदमी बण ग्या है इस गाड्डी मै बैठ कै।" "अरै बेलू यू कार तेरी ई तो है, तू चाहे तो रख ले इन्नै।" इस पर बेलू हँस दिया, "क्यूँ मजाक करै चंदरू।" इससे पहले कि वह कुछ कहता मैंने कहा, "राम कसम बेलू, इसनै तू रख ले, मजाक समझ रहया है?" वह बोला, "मजाक नहीं, मैं जाणू के इस कार नै देण मै तनै थाड़ी सी भी हिचक नईं होगी, पर बावळे यू तो बता, यू मेरे किस काम की है? मेरे तै तो अपणी बैल गाड्डी ई नईं संभळती...चल उतार दे मनै, गाड्डी रोक ले।" मैं बोला, "चल मैं छोड़ आत्ता हूँ। इतनी दूर पाँया जावैगा?" "यू बी कोई दूरी है, बचपन मै रोजई तो आया जाया करूँ था इस गाम मै, फेर यू कोई लंबा रस्ता है, 15, 20 कोस तो हम बातों बातों मै काट दें। कहकर बेलू गाड़ी से उतर गया। बेटे ने बेलू के पैर छुए तो बेलू बोला, "सुण बेट्टे! इब तो मैं तनै कुछ दे नईं सक्या, अगली बेरी जिब तू आवैगा तो तनै दयूँगा, अपणी माँ नै बी साथ लाइओ, उसका बी तो कर्जा है मेरे सिर पै।" "अच्छा चाचाजी, नमस्ते।" बेटे ने हाथ जोड़े।

5, 6 साल बीत गए, चाहकर भी, मेरा गाँव जाना नहीं हुआ। अचानक ही तिलहंडे (दुलहंडी के अगले दिन पड़ने वाला त्यौहार) पर मैंने गाँव जाने को प्रोग्राम बनाया। बेलू से मिलने का भी मन में चाव था। पत्नी और पुत्र को लेकर मैं अपने गाँव की ओर चल पड़ा। बेलू के खेत के पास जाकर मैंने गाड़ी रोक दी, मुझे यकीन था कि बेलू खेत पर ही मिलेगा। मैंने बेटे से कहा, "बेटा, देख लेना, बेलू चाचा कितना खुश होगा तुझे देखकर कि तू इंजीनियरिंग के इम्तिहान में फर्स्ट आया है और इजीनियर बन गया है, फिर मैंने पत्नी से कहा, "देखो गाँव में सिर ढके रहना, भूलकर भी सिर से साड़ी का पल्लू न उतर जाए और बेलू को प्रणाम करना।

गाड़ी से उतरकर मैंने उसी अंदाज में आवाज लगाई, "बेलू ओ बेलू!" कोई उत्तर न पाकर मैंने और जोर से आवाज दी। फिर कोई उत्तर नहीं, मेरा माथा ठनका, बेलू कहीं बीमार तो नहीं? कहीं...छीः छीः कैसी बात सोचता है, बेलू मुझसे मिले बिना चला जाए, असंभव,...मैं तरह-तरह

के विचारों खोया हुआ था कि इतने में, 16, 17 वर्ष का एक लड़का आया। मैंने पूछा, "बेलू है के?" वह बोला, "बेलू? वह तो मर ग्या।" मेरे दिल पर एक हथौड़ा-सा लगा और मेरी आँखें फटी-की-फटी रह गईं। जैसे मुझे यकीन-सा नहीं हो रहा हो, मैंने उससे पूछा, "के हो ग्या था उसै?" वह बोला, "हुया नई, उसके भैया भाब्बी दोनवॉ नै मिलकै सोत्ते हुए बेलू की गर्दन गंडास्से तै काट दी।" मेरे मुख से एक चीख निकल पड़ी, अपनी संपूर्ण शक्ति का प्रयोग करते हुए मैंने स्वयं को मूर्छित होने से बचा लिया और मैं धम्म से ज़मीन पर गिर पड़ा। थोड़ी देर रुककर मैंने उस लड़के से फिर पूछा, "उसके सगे भाई नै उसकी गर्दन काट दी?" "हाँ,...तम कोण हो?" उसने पूछा। मैंने रुँधे गले से कहा, "मैं चंदरू हूँ।" इस पर बोला, "हाँ यूई नाम लिया करै था बेलू—खेत्ताँ की मेंड पै चलते-चलते, दगड़े मैं आत्ते जात्ते, पेड़ के तळै बैट्ठे बैट्ठे बड़बड़ाया करै था, चंदरू आवैगा, बेट्टे नै लावैगा, बस सारी जमीन उसके नाम लिख दयूँगा, उसतै कहूँगा, ले बेट्टे, उद्दिन तो मैं तनै कुछ दे नईं सक्या था, ले सँभाळ अपनी धरती, इसकी सेवा करियो, अपणे हिस्से का मकान, बळद, भैंस सब उसके नाम कर दयूँगा, मनै इब सेवा की भी तो जरूरत है, बस वही मेरी सेवा करैगा...। बस इसी ढाळ बड़बड़ात्ता रहवै था, कदी कदी कहया करै था, मनै वार हो गई, खेत पै चलूँ, कहीं चंदरू मेरी बाट न देख र्या हो।" थोड़ी देर रुककर उस लड़के ने आगे कहा, "बेलू के दोन्नों घुटन्याँ मै भोत दरद रह्या, करै था, लाट्ठी के सहारे थोड़ा भोत चल दिया करैता, उठते बैठते उसके मूँ तै लिकड़या करै था—अरै मर ग्या ...हाय राम ठाले मनै, उसकी धोत्ती कुरता फटे रहवैं थे। गाम के बड़े बुड्ढे कह्या करैंते, बेलू, एक कुर्ता बणवाले, धोत्ती खरीद ले", बेलू कहया करै था इब के करणा है धोती कुर्ते का, एक धोत्ती कुरता नवाँ है, जिब मेरी बारात लिकड़ैगी, लोग्गाँ के कंधे पर चढके जाउँगा, उद्दिन पहरूँगा, उद्दिन ढाई मण लकडियाँ की भी जरूरत मेरे हवन में पड़ैगी, वो भी मनै कट्ठी करके कोट्ठे में गेर रखी हैं—किसी पै बोझ नईं गेरूँगा।" यूँई कुछ-न-कुछ बोलता रहवै था। उसके भैया भाब्बी बड़े जल्लाद थे। उन्हाँनै उसकी सादी भी नईं होण दी, रिस्ते तो उसके भोत आए—किसी तै कह देत्ते थे, इसनै मिरगी के दौरे पड़ैं, किसी तै कह देवें थे इसका दिमाग फिर्रा है, किसी तै कह देवै थे बो तो हीजड़ा है, वे कहया

करैं थे, बेलू रोट्टी खाणी है तो जमीन नाम कर दे", बेलू जवाब दिया करै था, जमीन तो जिसकी है, उसैई दयूँगा, किसी और नै हाथ भी नहीं लगाण दयूँगा, कोई पड़ोस्सी उसनै रोट्टी देवै था तो वह साफ मना कर देवै था—मनै दया, किरपा नईं चहिए किसी की, जिद्दिन उप्पर तै बुलावा आवैगा उद्दिन चल्या जाऊँगा, उसतै पहलै तो जाण तै रहया, बिन बुलाए नईं जाऊँगा उसके यहाँ भी...उसके भैया भाब्बी नै उसै भुक्खा प्यासा रख रख कै, तड़पा तड़पा कै मारया, इब पड़े सड़तो रहये हैं जेल मैं,...जिद्दिन उसका कतल हुआ उद्दिन कह रह्या था, 'काल तड़की सहर जाऊँगा, बेट्टे के नाम जमीन लिख आऊँगा, इव मेरा के भरोस्सा? पता नईं कद बुलावा आ जाए, काल जरूर जाऊँगा।" कहकर वह चुप हो गया।

इतना सुनते ही मेरी आँखों के सामने धरती घूम गई, बेलू के खेत, वह बड़ा-सा पेड़ जिसके नीचे बेलू की झोपड़ी थी—सब तेजी से घूमने लगा, मुँह से शब्द निकलने बंद हो गए, रोना चाहकर भी रुलाई नहीं आ रही थी, मुझे लगा धरती ही नहीं सारा आकाश तेजी से घूम रहा है, जैसे मैं किसी भयंकर भँवर में फँस गया हूँ, बाहर निकलने के लिए हाथ-पैर मार रहा हूँ, जैसे मेरा सिर किसी ने बर्फ की सिल्लियों में दबा दिया हो, सारा शरीर जमकर मानों बर्फ बन गया हो, हाथ पैर ठंडे हो गए—मैं स्वयं को सँभाल नहीं सका और वही जमीन पर बैठा-बैठा एक ओर को लुढ़क गया—पत्नी और बेटा दोनों घबरा गए, उन्होंने मेरे हाथ पैर मले, कुछ गर्मी-सी आई मैं उठ बैठा और घुटनों में सिर देकर बच्चों की भाँति चिल्ला उठा, "बेलू ऊ ऊ ऊ! मेरी हिड़की बँध गई, वह लड़का मुझे देख रहा है, इतनी-भी चेतना मुझे न थी, लगभग आधे घंटे बाद मैं प्रकृत सी अवस्था में आया—लेकिन मैंने स्वयं को एक घुप्प अँधेरे में कैद-सा अनुभव किया।

अंधकार घिरने लगा था, मैं उठा, गाड़ी की तरफ चला, और गाड़ी वापस मेरठ की ओर मोड़ ली। बेटे ने पूछा, "अपने गाँव नहीं चलना पिताजी?"

"नहीं"—मैंने उत्तर दिया।

•

प्रायश्चित

"रामो! दरवज्जा खोल।" क्रोध में मोहरसिंह ने दरवाजा खटखटाया।

"........."

"अरी सुण्या नई के, दरवज्जा खोल।" उसने और जोर से साँकल खड़काई। उसकी पत्नी रामकली भागी चली आई और दरवाजा खोल दिया। वह गरजा, "इतनी वार लगा दी दरवज्जा खोल्लण मै, कहीं मर गी थी के?"

"आत्ते आत्तेई तो आत्ती, भगी चली आई...फेर कोई आफत आई थी के? माड़ी सी देर खड्या नईं रै सकै था?" रामो कुछ क्रोधित-सी बोली।

"तेरे बाप का नोक्कर हूँ ना, तेरे छोरे का भी और तेरा भी, नोक्कर समझै मनै, महाराणी की इंतजार में खड्या रहत्ता।" बड़बड़ाता हुआ मोहरसिंह भीतर चला गया। रामो मन-मन में फुसफुसाई, "आज के हो गया इसनै, अच्छा खास्सा तड़केई छोरे नै घी देण गया था। आत्तेई न्यूँ बरस पड्या मेरे उप्पर...जरूर कोई बात है, यू इस ढाळ तो कदी नईं बोल्या।"

रामकली, मोहरसिंह की पत्नी, बड़ी समझदार थी। वह दूसरे कोठे में गई जहाँ अनाज, गुड़, शक्कर, घी आदि सामग्री रखी रहती थी। उसने एक लोटे में दो मुट्ठी खाँड और घड़े का पानी डाला, उसे चम्मच से चलाते-चलाते वह मोहरसिंह के पास पहुँची, लोटे में से एक गिलास शर्बत भरा और उसे मोहरसिंह की ओर बढ़ाते हुए बोली, "ले नंदन के बाप्पू, सरबत पी ले, गर्मी मै चलकै आया है, पिस लगी होगी...ले उठ, सरबत पी ले।" वह कुछ नहीं बोला, चुपचाप यूँ ही लेटा रहा,..."उठ ना, सरबत पी ले...खड्या हो जा ना, देख दिन ढळण नै आग्या, दूर तै चलकै आया

है, पिस तो लगी होगी, ले उठ, सरबत पी ले, काळजे मै सेळक पड़ जाग्गी।'' कहकर रामो ने उसे कंधा पकड़कर ऊपर को उठाया। वह उठा और शर्बत का गिलास हाथ में पकड़ लिया...वह हाथ में गिलास थामे बैठा रहा, अपलक नेत्रों से न जाने क्या-क्या सोचता रहा।

''के सोच र्‌या है, पी ले ना सरबत!'' कहकर रामो ने उसके कंधे पर धीरे से हाथ रखा। मोहरसिंह ने शर्बत की एक घूँट भरी और गिलास रामो की ओर बढ़ाते हुए बोला, ''और नईं पिया जात्ता, भोत पी लिया सरबत, काळजे में सेळक पड़ ग्यी।''

''के हुया? इतनी गरमी मै चलकै आया है और पिस ना लगै, ऐसा क्युँक्कर हो सकै?'' कहकर रामो ने, उसके गिलास पकड़े हाथ को उसके मुँह की ओर धकेला, वह पूरा गिलास पी गया।

रामो ने खाली गिलास पकड़ा और लोटे का बचा हुआ शर्बत, उसमें डालकर उसे देती हुई बोली, ''के बात है, घी दे आया लाल्ला नै? वह ठीक तो है?''

''............''

रामो बोली, ''फेर चुप बैठ ग्या, पहलै गिलास खतम कर, फेर बात करूँगी...चल पी जा।'' वह दूसरा गिलास भी पी गया। रामो बोली, ''और ल्याऊँ?'' ''ना बस, और नईं पिया जावैगा।'' कहकर वह चरपाई पर लेट गया। रामो ने पंखा उठाया और उसे पंखा झलते हुए बोली, ''इस ढाळ गुम-सुम क्यूँ पड़्या है, के बात है, बेट्टे के पास तै आया है, कुछ हुया के?'' मोहर सिंह चुप।

थोड़ी देर में रामकली, पंखा झलते-झलते उठी और उसका थैला उठाकर खूँटी पर टाँगने लगी। रामो ने देखा कि थैले में कुछ है, वह बोली, ''मेरे लिए सहर तै कुछ खरीद कै ल्याया है के? के है इसमै?'' उसने थैले से, कपड़े में लिपटी पोटली निकाली और खोलकर देखी, उसमें वे रोटियाँ, गुड़ की डली, आम का अचार, प्याज का गंठा लिपटा था जो उसने सुबह-सुबह उसके साथ बाँध दी थी और कहा था, ले नंदन के बाप्पू, कहीं बाग बगिच्चे मै बैठकै कळेवा कर लियो। ''आज कळेवा नहीं कर्‌या? तड़की तै भुक्खा है?'' कहकर रामो उदास हो गई, मन-मन में बोली, 'बात कुछ जरूर है...ऐसा पहलै कदी नईं हुया के यू सहर तै छोरे के पास तै आया हो और उसके किस्से न सुणाए हों।'

रामो थोड़ी देर बाद बोली, ''माड़ी सी देर लोट जा और अराम कर ले।'' और उसे पंखा झलने लगी। कमरे में अँधेरा था, मोहरसिंह रामो की ओर से करवट बदलकर लेट गया। रामो ने उसकी पीठ पर हाथ रखा तो उसे लगा जैसे वह सुबक रहा हो, रामो पर बिजली सी गिर पड़ी, वह बुरी तरह चौंक उठी और किसी अनिष्ट की आशंका से एकदम काँप उठी और बिफरती-सी बोली, ''के हुया? क्यूं सुबक रह्या है? नंदन ठीक तो है? उसनै कुछ हो ग्या के?...के बात है, तनै नंदन की सौं? बता के बात है?'' ...वह फिर भी नहीं बोला।

रामो के दिल पर हथौड़ा-सा पड़ा और एक झटके से उसे सीधा लिटाते हुए, बदहवास-सी वह उसे झँझोड़ने लगी, ''नंदन की सौं खवाकै भी नई बोल्या? बोलता क्यूँ नई, बता के बात है?'' चीखती-सी, वह उसका कुर्ता पकड़कर जोर-जोर से ऊपर-नीचे खींचती रही, ''बोल, ना तो मैं तेरी सौं, दिवाल मैं टक्कर मार कै अपणा सिर फोड़ ल्यूँगी।''

रामो जानती थी कि मोहरसिंह से जो काम कराना हो, उसे नंदन की सौगंध खिला दो, वह कर बैठता था। नंदन की सौगंध के आगे तो वह अपना सबकुछ कुर्बान कर सकता था। नंदन उसकी इकलौती संतान था और मोहरसिंह के हृदय में उसके लिए उस पिता जैसा स्थान था जिसका जिक्र महाभारत में आया था, जब यक्ष ने युधिष्ठिर से पूछा था कि बता 'आकाश से बड़ा कौन है?' और युधिष्ठिर ने उत्तर दिया था कि 'आकाश से भी महान् है पिता का हृदय।'

नंदन का पूरा नाम था सुखनंदन, रामो उसे कभी सुखी कहकर बुलाती थी कभी नंदन, लेकिन वह पूरे गाँव में नंदन नाम से पुकारा जाता था। रामकली ने देखा कि मोहरसिंह की हिड़की बँध गई है, वह और अधिक व्याकुल हो उठी। थोड़ी देर बाद वह शांत स्वर में बोली, ''नंदन के बाप्पू'', इतना ही कह पाई थी कि मोहरसिंह क्रोध में उबल पड़ा, ''मत कह मनै नंदन का बाप्पू, मर ग्या उसका बाप।'' कहकर वह चारपाई पर उठकर बैठ गया।

''बात तो बता, मनै क्यूँ परेसान कर र्‌या है, तू बतात्ता क्यूँ नईं, मेरी जान लिकड़ी जा रई है।''

''पर मेरी तो सारी जान लिकड़ गी, नंदन इब मेरा कोई नईं लगता, तेरा पूत होगा वो, मैं नईं मान्ता उन्नै अपणा बेट्टा...मनै कहवै, यू मेरा

नोक्कर है।''

''पूरी बात बता'', कहकर वह उसके पास चारपाई पर बैठ गई और उसकी कमर पर हाथ फिराने लगी, दूसरे हाथ से पंखा झलती रही।

मोहरसिंह बोला, ''मैं दुपैर होत्ते होत्ते उसके कोलिज पहुँच ग्या था। रस्ते मै मनै भूक लगी, पर मनै रोट्टी नईं खाई, सोच्चा था के बेट्टे के साथ बैठकै अराम तै खाउंगा।''

''फेर के हुया?'' रामो ने पूछा।

''मैं उसके होस्टिल मै पोंहचा, एक छोरे तै पूछया ''सुख नंदन है के?'' वह बोल्या, ''सुख नंदन तो कोई नहीं, हाँ, नंदन साहब तो हैं।''

''हाँ हाँ, नंदन ई कह्या करैं उसनै।''

''वे शायद कहीं गए हैं। आप चलो, उनके कमरे मैं बैट्ठो।'' कहकर उसनै बुझ्या, ''आप उनके गाम के हैं?'' ''हाँ बेट्टा।'' उस छोरे नै मेरी माईं देख्या, मनै लग्या के वो मेरे कपड़ूँया नै देख र्या है, उनके सामी मेरी धोत्ती कुरता ऐसे लग रह्ये थे ज्युँक्कर डूँडी के आग्गै मोहनी (डूंडी, उसकी काले रंग की भैंस का नाम था और मोहनी उसकी सफेद गाय का) उस छोरे नै मेरी जुत्ती और कपड़ूँया नै देख कै कुछ नाक-सी चढ़ाई। वह मनै नंदन के कमरे मै ले ग्या। उसनै दरवाज्जे का परदा उठाया तो देख्या के भित्तर एक लौंडा बैट्ठा हुया है, वह उसतै बोल्या, ''औ रणवीर! सर के गाम तै कोई आया है।''

''कौण है?''

''पता नहीं।'' कहकर उसनै मेरी माईं देख्या और बोल्या, ''कमरे मै बैज्जाओ, मैं नंदन साहब नै ढूँढ कै लात्ता हूँ।'' मैं कमरे के भित्तर घुस्या और उसकी खाट पै बैठ्ठण लग्या।'' वह तड़ाक तै बोल्या, ''यहाँ नई, सर की चद्दर मैल्ली हो जाग्गी, इस कुर्सी पै बैज्जाओ।'' उसने हाथ तै अपणे बराब्बर वाली कुर्सी की तरफ इसारा किया। मनै बुरा लग्या। इतने मैई नंदन आ ग्या। आत्तेई उस छोरे तै अंगरेज्जी मै पता नई के बोल्या, वह उठकै चला ग्या।

उसके कमरे तै लिकड़तेई गुस्से मै बोल्या, ''यहाँ आण की कौण आफत आई थी?'' न राम राम, न स्याम स्याम, मेरे उप्पर बरस पड़्या, बोल्या, ''तनै कितनी बार कहया है बाप्पू के मेरे कोलिज मत अइयो, क्यूँ आया है?'' मनै गुस्सा तो भोत आया, पर मै पी ग्या गुस्से नै, फेर मैं

बोल्या, ''बेट्टा, तेरी माँ नईं मान्नी, मैं तो टाळ रह्या था, पर उसनै जिद करकै मनैं भेज दिया, तेरे लिए घी ल्याया हूँ।'' इतने मैई नंदन नै कह्या, ''अच्छा, इब तू जा, मनै पढण जाणा है, साँझ तै पहलै नईं आ सकूँगा।'' मैं हक्का-बक्का-सा रह ग्या। मनै लग्या के वो मनै झटपट वहाँ तै भगाणा चाह रह्या था। मनै अपणा थैल्ला ठाया और कमरे तै बाहर लिकड़, जिन्ने की माईं चल्या, उसका कमरा दुमंजले पै है। पिच्छे तै दो बालकाँ की अवाज सुनाई पड़ी, उनमै एक छोरा वोई था जो उसके कमरे मै बैट्ठ्या उसकी बाट देख रह्या था और नंदन ने उसे अंगरेज्जी मै बाहर जाण कू कह्या था। वह किसीतै कह र्‌या था, के नंदन साहब के गाम तै, उनका नोक्कर घी ले कै आया है।'' सुणतेई मनै चक्कर सा आग्या सुख नंदन की माँ, मैं गिर पड़ण नै हो ग्या, जी मै तो आया के इबी उसके कमरे में चलूँ और सारे बालकाँ की सामी काढ़-कै पाँ तै जुत्ती, नंदन के द्‌यूँ तड़ातड़, मारते मारते उसका भुस भर द्‌यूँ, पर फेर न जाणे क्यूँ, मैं चुपचाप चल्या आया। रस्ते मै भूक प्यास लगी थी, पर मैं बिना रुके भुक्का प्यासा चलताई रह्या। उसनै न्यूँ बी नईं सोच्या के बाप्पू इतनी दूर तै गर्मी मै पाँया चल कै आया है, उसनै भूक प्यास लगी होगी।'' कहकर मोहरसिंह चुप हो गया और दोनों घुटनों के बीच मुँह छिपाकर बैठ गया। रामो उसकी पीठ सहलाती रही।

थोड़ी देर बाद रामो बोली, ''कर्‌या तो सुखी नै भोत बुरा, पर छोड़, है तो तेरा बेट्टा...अरे उसका गूमूत बरदास कर सकै, उसकी इतनी-सी बात नईं सह सकता, चल माफ कर दे छोरे नै।''

''ना रामो ना, मैं उसै माफ नईं कर सकता...सारी जिंदगी माफ नईं करूँगा, चाहे जो हो जाए।'' मोहरसिंह ने उत्तेजित स्वर में कहा।

''तू तो कह्या करै था, मैं बेट्टे पै जान छिड़क सकूँ, इतनी सी बात बरदास नईं हुई उसकी?''

''जान तो एक नईं, सौ वार सकूँ उसके उप्पर रामो, बस न्यूँई समझ ले के मनै छोरे पै अपणी जान कुर्बान कर दी, समझ लिया, मर ग्या उसका बाप। जिब सुण्या के उन्नै, मनै बाप कहण मै भी सरम लगै तो मैं तो उसी छन मर ग्या था, कह आया था उन्नै मन ई मन, 'ले बेट्टा मर ग्या तेरा बाप, समझ ले कर दी तनै उसकी तेराम्मी।''

रामो उसे समझाती हुई बोली, ''अच्छा न्यूँ बता, सुखी नै कोई

तकलीफ हो जावै, भगवान ना करै, वह बिमार हो जा तो तनै तकलीफ नईं होवैगी?''

''तकलीफ का के है, इंसान हूँ, तकलीफ तो मनै चिड़िया के बच्चे के मरण पै भी होवै, तकलीफ तो मनै किसी अनजाण माणस के मरण पै भी होवै, तकलीफ का के है, वा तो आदमी के जनम लेत्तेई उसके साथ पैदा हो जावै, वो तो रोत्ताई पैदा होवे, रोत्ताई मर जा...सोच्चा था, के नंदन बड़ा होकै म्हारी बुढ़ाप्पे मै सेवा करैगा, पर सब खतम, मैं तो पांडवाँ की ढाळ जुए मैं सब कुछ हार ग्या, सारी जमीन बेच दी उसके पढाण मैं, दो एक खेत बचे हैं उनतेई पेट भरण लाक नाज पैदा कर ल्यूँ, इब मनै अपणी गलती मैसूस होरी है, जिब उसका दसमी का इम्त्यान खतम हुया था और हैड मास्टर मुरलीधर मेरे पास आया और बोल्या, ''मोहरे, तेरा सुखनंदन, देखणा एक दिन भोत बड़ा इंसान बणैगा, इम्त्यान मै देखणा वो अव्वल आवैगा, उसकी आग्गे की पढाई मै कोई कोरकसर ना उठा रखियो, चाहे तनै कुछ भी करणा पड़े।'' मनै कई थी, ''मास्टर जी, मैं के कर सकूँ, भैंस की कटिया तळै, कटिया की भैंस तळै, कर कर कै तो मैं गाड्डी यांल्लो खींच कैल्याया हूँ, इब आग्गे मेरे बस का नईं।'' इसपै मुरलीधर बोल्या, ''मोहरे, इसनै पढाल्ये, तेरे सारे पाप धुळ जांग्गे।''

''इब सोच्चूँ रामो, के यू पाप धुले हैं मेरे, मेरे तो पाप उजग्गर हो ग्ये। मुरलीधर कहवै था, 'तेरी सेवा करैगा।' यू सेवा करी है मेरी? बालकाँ के सामी मनै नोक्कर कह कै, उसनै तो मेरी सारी जिंदगी की तनखाह दे दी।'' इस पर रामो बोली, ''यू बता सुखी के बाप्पू, हम दोनों बेट्टे के नोक्कर नईं तो कोण हैं?'' ''हम तो नोक्कर तै भी बढ़कै हैं, बंधाऊ मजदूर....नोक्कर तो आठ दस घंट्या मै अपणे घर चल्या जा, हमनै तो रात दिन उसके गूमूत कर्‌ये, दिन देख्या न रात, बंदरिया की ढाळ उन्नै काळजे तै चिपकाए फिरै, जिब वह छोट्टा साइं था, बिमार पड्या, कहाँ कहाँ नईं गए उन्नै लेके, किस किसकी मन्नत नईं मांग्गी, स्याणे दिवाणे, मुल्ला पंडत, मंदर, मस्जिद, पीर कोई नईं छोड्या, सबके आग्गे पल्ला फला कै भीख माँगते फिरे इसकी जिंदगी की, कदी पाँयाँ मै जुत्ती, सिर पै टोप्पी नसीब नईं हुई, पेट भर रोट्टी कदी नईं खाई, पर इसनै राजा की ढाळ पोळा पोस्सा...इब जाकै सुणाउंगा मास्टर मुरलीधर नै, के तनै इसी सपोळिए के लिए मेरी जमीन बिकवाई थी, के इसनै दूध

प्याऊँ और काल नै यू नाग बणकै मनैई डसै,...कहवै था, 'मोहरे, तेरा बेट्टा भोत बड़ा इंसान बणैगा, तेरी सेवा करैगा, ऐसा आदमी बड़ा बण्या कदी, जो अपने बाप का बेट्टा कहळाण मैं भी सरम करै? लानत है ऐसे बेट्टे पै।''

''इब सबर भी करैगा के नईं, अरे गलती हो गई छोरे तै, तेरा अंस है वह, माफ कर दे उन्नै।''

''रामो! चाहे जो कर वाले, पर माफी की बात ना करियो, मै उन्नें कदी माफ नहीं करूँगा।''

''मैं तेरे पाँ पड़ती हूँ सुखी के बाप्पू। भूल जा इस बात नै, गलती तै लिकड़ गई होगी उसकी जबान तै।''

''देख रामो! ज्यादा जिद करैगी तो मैं घर छोड़ कै चल्या जाऊँगा और फेर कदी अपणा मूँ नईं दिखाऊँगा और सुण, अपणे नंदन साब तै भी कह दियो के मनै कदी मूँ ना दिखावै, वरना भोत बुरा होगा।''

''क्यूँ, उसका घर नईं है यू?'' रामो ने कहा।

''ठीक है, उस काई है सब कुछ, मैं कोण छात्ती पै धर कै ले जाउँगा, दो बीघे खूड बचे हैं, बाक्की तो सब बेच ई दिया उसणै एक चोक्खा माणस वणाण मैं, ये भी बेच ले तू, मैं कहीं हरदुवार, बिंदरावन चल्या जाउँगा, वहाँ गरिब्बा के लिए रोटियाँ की कमी नईं है, बैठ जाया करूँगा भिखारियाँ की लैन में, दो रोट्टी जरूर मिल जाया करैंगी।''

''तो तू भीख माँग्गण लगैगा?'' रामो कड़ककर बोली।

''पेट की आग बुझाण वास्ते सब कुछ करणा पड़ै, चोरी चकारी तो कहीं कर नईं सकता, वेलूदारी करण जोग रह्या नईं।'' मोहर सिंह ने कातर स्वर में कहा।

''तो छोरे ने माफ नईं करैगा?''

''बिल्कुल नईं, अरी मैं कोई सजा थोडेई दे र्‌या हूँ उन्नै, उसका तो रस्ताई साफ कर र्‌या हूँ जिसतै वो खुले आम कह सके के मोहरा मेरे यहाँ कमेरा था, बुड्ढा हो ग्या, काम काज उसके बस की नईं रह्या, इसलिए मनै, उसनै नोकरी तै लिकाड़ दिया।'' कहकर मोहरसिंह फफक उठा। थोड़ी देर बाद वह चारपाई से उठा और घर से बाहर निकल गया।

रामो किंकर्तव्यविमूढ़—क्या करे, क्या न करे? वह जानती थी कि उसका पति जितना कोमल है, उतना ही कठोर भी है—न पति छोड़ते बने,

न बेटा। रात भर वह करवटें बदलती रही, कभी सोचती कि उसका पति ठीक कह रहा है कि ऐसा नालायक बेटा माँ बाप की कभी सेवा नहीं कर सकता, कभी सोचती, बालक ही तो है अभी, आजाएगी सब समझ, वह सोचती कि फिलहाल उसे क्या करना चाहिए—पति का साथ दे या बेटे का? परंपरागत संस्कारों से जकड़ी हुई रामो ने कठोर निर्णय ले लिया कि अनशन कर देगी।

रामो ने पूरे दिन कुछ नहीं खाया-पीया, दूसरे दिन भी वह भूखी प्यासी रही। दो दिनों में रामो इतनी दुर्बल हो गई कि उससे उठा नहीं गया, और अगले दिन उसके यहाँ चूल्हा ही नहीं जला। मोहरसिंह उसके पास आया और बोला, "के बात है रामो, आज रोट्टी नईं बणाई?" "उठ्याई नईं ग्या, सरीर मै जान ई नईं रही।"

"लगै है रामो, काल तनै रोट्टी नईं खाई...बता तनै रोट्टी खाई थी के नईं?"

रामो गुम-सुम पड़ी रही, कुछ नहीं बोली। मोहरसिंह ने कहा, "बता रामो, रोट्टी खाई थी के नईं, तनै मेरी सौं, बता रोट्टी खाई थी?" मोहरसिंह पूछ-पूछकर हार गया, पर रामो ने कोई उत्तर नहीं दिया, वह झल्ला उठा और क्रोध में बोला, "रामो, आखरी बार बूझ रह्या हूँ, बता, तनै रोट्टी खाई के नईं वरना मैं गंगा जिकसूँ रात नै सल्फास की गोळी खा कै सो जाऊँगा।" कहकर वह रामो की चारपाई के सिरहाने बैठ गया।

रामो सिहर उठी, उसका पति कितना जिद्दी है, वह जानती थी, वह यह भी जानती थी कि वह जो कुछ ठान लेता है उसे कर भी डालता है। वह उठकर बैठ गई और बोली, "जिब तनै मेरे सामी एक सवाल खड़्या कर दिया के बेट्टे नै छाँटले, या मनै, दोनवाँ मै तै एक के साथ रहणा होगा तनै तो मनै खाणा-पीणा छोड़ दिया, दो दिनाँ तै रोट्टी नईं खाई, तू बता सुखी के बाप्पू मैं के करूँ...तनै छोड्डू या बेट्टे नै?" ओढ़नी से आँखें पूछते हुए रामो ने कहा।

"अरी बेट्टे नै क्यूँ छोड्डै? मैं कितने दिनाँ का मेमान हूँ, काल मर्‌या परसों तीसरा दिन।"

"हाँ, मैं तो अमर पट्टा लिखवा के लाई हूँ, सबनै मार कै मरूँगी?" सुबकती हुई रामो ने ओढ़नी से नाक छिनकी।

"खैर यू तो परमातमा नै पता है के किसकी कितनी जिंदगी है, पर

तनै छोरे काई साथ देणा चहिए, तनै, उसनै पैदा कर्या है, नो महिन्ने पेट मै रख्या है, खसम का के है, मर जाग्गा तो दूसरा मिल जाग्गा, पर पेट का जाया तो नहीं मिल सकता।'' सुनते ही रामो की छाती पर हथौड़ा-सा लगा, वह कड़ककर बोली, ''हाँ तनै मारकै मैं दूसरा खसम करूँगी...ठीक है सारी जिंदगी तेरा हुकम बजात्ती रही इब बुढाप्पे मै यू कलंक लगवाऊँगी मात्थे पै के रामो नै खसम छोड़ दिया...''ठीक है, जा छोड़ दिया मनै, अपने पेट के जाए नै, तू अपणी जिद पूरी कर ले, कह द्यूँगी सुखी नै के गाम मै कदी अपणा मूँ न दिखइयो, मर ग्ये हम दोन्नों तेरे वास्ते, उसनै कसम धरम दिला द्यूँगी कि तनै गंगाजिकसूँ गर तनै हम दोन्नों नै अपणा मूँ दिखाया तो।'' फफकती रामो उठ खड़ी हुई, उसके चेहरे पर अचानक ऐसी दृढ़ता आई जैसे वह पूर्ण स्वस्थ हो। वह स्थिर-सी होकर बोली, ''ठहर सुखी के बाप्पू, इबी रोट्टी बणात्ती हूँ, तनै भूक लगी होगी, मनै भी लगी है।'' वह उठी, झटपट चूल्हा जलाया, मिस्से आटे में नमक डाला और मोटी-मोटी रोटियाँ सेक लीं, गुड़, मट्ठे और प्याज के साथ दोनों ने एक साथ बैठकर रोटी खाई।

× × ×

सुखनंदन एक प्रतिभाशाली युवक था—छह फुटा, गौरवर्ण, बॉडी-बिल्डर जैसी कद-काठी और हर चीज में अव्वल—परीक्षा में सदा प्रथम, खेल-कूद प्रतियोगिता में सबसे आगे, भाषण प्रतियोगिताओं में पदक-विजेता। बी. ए. अंतिम वर्ष में वह छात्र-संघ का अध्यक्ष भी, एक प्रकार से सर्व सम्मति से बन गया था। हॉस्टल में उसका रहन-सहन ऐसा था मानो किसी बड़े ज़मींदार, पैसे वाले खानदान का हो।

किसी के हाथों रामो ने उसे चिट्ठी भिजवाई—सुखनंदन! अगर तुझमें माड़ी-सी भी सरम है तो गाम मै मत आणा, हम दोन्नों तेरे मा-बाप थे, जिब तू छोट्टा-सा था, हमनै पाल-पोस कै बड़ा कर दिया, इब हम तेरे नोक्कर नईं, हमनै तेरी नोकरी तै इस्तीफा दे दिया, मर गए हम दोन्नों तेरे वास्ते। यू घर, बैल, भैंस, दो बीघे खूड तेरे हैं, जिब तनै पैस्याँ की जरूरत हो तो हमनै खबर भिजवा दियो, हम इनानै बेच-बेच कै तनै पैसा भिजवात्ते रहैंगे, यू सब चिज्जें, यू थोड़ी-सी जमीन, घर दाद्दा लाई हैं, इसलिए इनका मालिक इब तू ई है, जिद्दिन ये सब बिक जाँग्गे उद्दिन हम हरदुवार चले जाँगे, वहाँ भिखारियाँ नै रोट्टी की कमी नईं।''

पढ़ते ही नंदन पर बिजली-सी गिरी, चिट्ठी पढ़कर वह सन्न रह गया। खड़ा-का-खड़ा, अपनी चारपाई पर गिर पड़ा, उसकी आँखें फटी-की-फटी रह गईं, निश्चेष्ट। वह सोचने लगा, "अचानक यह क्या हो गया, उस दिन बाप्पू आया था, लगता है, बाप्पू नै पता लग गया कि मैंने उसे नौकर कहा। उसे रह-रहकर अपनी मूर्खता पर क्रोध आ रहा था। ऐसा लगता था जैसे वह एकदम संज्ञाशून्य हो गया हो। वह खड़ा हुआ, पैर लड़खड़ा गए, आँखों के आगे अंधकार छा गया, वह उठा, थोड़ी ही देर में वह पसीना-पसीना हो गया। उसने पंखा फुल स्पीड पर कर दिया, पर पसीना सूखने के बजाए बढ़ता ही जा रहा था, सारी बनियान कमीज पसीने से तर हो गई, उसे लगा जैसे सारा कमरा तेजी से घूम रहा है। उसने कमीज बनियान दोनों उतार दिए और नंगे बदन कुर्सी पर बैठा रहा, उसे लगा जैसे वह नदी की तीव्रधारा में डूबता उतराता बहा चला जा रहा हो।

सूर्यास्त हुए काफी समय बीत चुका था, सारे हॉस्टल की बत्तियाँ जल उठी थीं, उसके कमरे में अंधकार था, उसके नेत्रों से टपटप आँसू टपक रहे थे—लगता था जैसे उसके भीतर क्षोभ, ग्लानि और वितृष्णा का जमा हुआ एक पिंड, पिंघल-पिंघल कर बाहर झर रहा है। पाषाण मूर्ति-सा वह उठा, कमरे की बत्ती जलाई और हाथ मुँह धोया। डिनर का समय हो चुका था, वह मेस में गया। भोजन की थाली उसके सामने आई, पर एक दो कौर खाकर ही उठ खड़ा हुआ। मेस मैनेजर ने कहा, "क्यूँ सर, आज खाना ठीक नहीं बना?" "नहीं, ठीक है।" "फिर क्या तबियत खराब है?" "नहीं ठीक हूँ, बस खाने को मन नहीं।" कहकर वह कमरे में पहुँच गया और बत्ती बुझाकर चारपाई पर लेट गया, रात के दस बजने जा रहे थे।

नंदन रात भर करवटों पर करवटें बदलता रहा, उसे नींद नहीं आई। उठकर उसने पंखा तेज कर दिया मुँह धोया फिर लेट गया। लेटे-लेटे उसने मन ही मन एक संकल्प किया और एक पत्र लिखा।

माँ,

राम राम

तेरा संदेश मिला था, तेरा हुकम सुना, मैं तनै यकीन दिलाता हूँ माँ के इब मैं तम दोन्नों नै मुँह नईं दिखाऊँगा, कहीं चल्या जाऊँगा। तू मनै माफ कर दे। मनै पता है माँ, तू मनै माफ कर देगी, कदी सजा नईं देगी, मैं भी तनै, तेरी सौं, यकीन दिलात्ता हूँ के मैं ऐसा कोई काम नईं करूँगा

जिसतै तनै दुख हो, जीण नै मन तो नईं करता, भोत बड़ा पाप कर बैठ्या हूँ, पर के करूँ, हो गई गलती, बाप्पू तै तो मैं माफ़्फी नईं माँगूगा, मनै पता है वह माफ नईं करैगा, पर तू तो कर दे, तू भी ना करैगी तो मनै जीण का कोई अधिकार नईं, लेकिन मैं अपणे आप नै कोई तकलीफ नहीं दूँगा और मनै कुछ हो गया तो तू तो जित्ते जी मर जाग्गी। तम मेरे लिए मरे नईं हो, मेरे भित्तर बैट्ठे हो, फेर किस तरयाँ मैं मान लूँ के मेरे मा-बाप मर ग्ये हैं। बस तू खुस रहणा, मैं तनै यकीन दिलात्ता हूँ तेरी कसम खाकै के मैं भोत खुस रहूँगा। मनै पता है माँ का दरद कैसा होवै, सारी जिंदगी तै देखता आ र्या हूँ। मैं चिट्ठी गेरता रहूँगा और थारी खैर-खबर लेत्ता रहूँगा, मनै माफ कर दे माँ। तेरा नल्लाक बेटा सुखी।

प्रातः उठते ही पत्र पोस्ट कर दिया। वह अपने प्रकृत रूप में आ गया, जैसे कुछ हुआ ही नहीं। नहा, धोकर वह कॉलेज जाने को तैयार हो गया। कॉलेज का घंटा बजा, और वह बी.ए. अंतिम वर्ष की कक्षा के पहले पीरियड में पहुँचा, जो हिंदी विषय का था। कक्षा में अध्यापक पहुँचे और लेक्चर शुरू किया—

"कल कहाँ थे हम?" गुरुजी ने पूछा।

"राम बन गमन" प्रसंग चल रहा था, गुरुजी।" नंदन ने कहा।

हाँ, ठीक है, अब आगे बढ़ते हैं—कहकर उन्होंने, भूमिका स्वरूप—राम के विशेष गुणों का बखान शुरू कर दिया। वे धारा प्रवाह बोलते जा रहे थे और नंदन के नेत्रों से आँसू टपक रहे थे। इसी प्रसंग में गुरुजी ने कहा, "देखो छात्रों, मेरी एक बात सदा याद रखना—भले ही मंदिर मत जाओ, मस्जिद मत जाओ, गुरुद्वारा, चर्च मत जाओ, बस एक बार, केवल एक बार प्रातः उठते ही यह स्मरण कर लिया करो कि जब से तुम्हें स्मरण है, तब से लेकर आज तक, तुम्हारे माँ बाप ने तुम्हारे लिए किस-किस हाल में रहकर क्या-क्या किया है, बस उसे स्मरण कर लिया करो, तुम्हारी पूजा-अर्चना सब इसी में पूर्ण हो जाया करेगी। यदि तुमने नियम से इसका पालन किया तो समझ लो तुम्हें वह पुण्य मिलेगा जो तुम्हें सीता-राम, राधाकृष्ण, पार्वती शंकर की पूजा से मिल सकता है। मैं यह नहीं कहता कि तुम माँ-बाप को कुछ दो, कुछ भी मत दो, बस अपने प्रति किए गए उनके कर्मों का स्मरण ही भगवत्पूजा है।"

बी.ए. की परीक्षा समाप्त हुई। परीक्षा देते ही नंदन दिल्ली चला

गया और शाहदरा में एक कमरा किराए पर लेकर रहने लगा। घर से उसका संपर्क मात्र इतना रह गया कि वह माँ के नाम, अपनी सही सलामती की सूचना का पत्र डालता रहता था, हर पत्र में माँ को आश्वस्त करता रहता था कि मैं ठीक हूँ, फिकर मत करना। किसी को उसने अपना अता-पता नहीं दिया। चूँकि घर से किसी प्रकार की आर्थिक सहायता लेनी उसने बंद कर दी थी अतः उसने शाहदरा में ट्यूशन करने शुरू कर दिए थे। दिन में ट्यूशन करता था और रात्रि में स्ट्रीट लाइट में बैठकर पढ़ता था। ट्यूशन उतने ही करता था जिसमें उसका खान-पीन और उन पुस्तकों का खर्च चल सके जो उसकी आई.ए.एस. परीक्षा की तैयारी में आवश्यक थी। उसने हाड़ तोड़ परिश्रम किया, दिन देखा न रात, और आई.ए.एस. की मैरिट लिस्ट में पाँचवाँ स्थान प्राप्त किया। वह उत्तर प्रदेश काडर का था, ईमानदारी और कर्तव्य निष्ठा के कारण वह तेजी से आगे बढ़ता रहा और कमिश्नर के पद पर उसका प्रोमोशन हो गया।

देखते ही देखते छह सात साल का समय फुर्र से उड़ गया, हाँ नंदन की माँ को ये छह-सात साल, छह-सात युगों लंबे जरूर महसूस हुए। पुत्र की अनुपस्थिति में माँ का समय इतना ही लंबा महसूस होता है, इसका अनुभव केवल माँ ही कर सकती है।

जिस कॉलेज से उसने बी.ए. किया था, उस कॉलेज का वार्षिकोत्सव था। कमिश्नर के अधीन पाँच जिले थे, उनमें एक जिला वह भी था जिसका वह निवासी था। उस कॉलेज का प्रेसीडेंट डी.एम. हुआ करता था। डी.एम. ने अपने कमिश्नर एस. नंदन से आग्रह किया कि वे कॉलेज के वार्षिकोत्सव में मुख्य अतिथि बनना स्वीकार करें। कमिश्नर एस. नंदन ने सहर्ष स्वीकृति दे दी।

तभी एक दिन थाने का सिपाही मोहरसिंह के यहाँ पहुँचा, उसने मोहरसिंह से कहा कि थानेदार साहब का हुक्म है कि आप अपनी घरवाली को लेकर इसी शनिवार को थाने पहुँचो, उन्हें आप लोगों से कुछ बातें करनी हैं, शायद वृद्धावस्था की पेंशन के बारे में बातें करें। सिपाही थानेदार का संदेश देकर चला गया।

रामो बोली, "चलो, थाँवर नै थाणेदार तै मिल लें सायद म्हारी दोनवाँ की पिलसण बँध जाए।"

"तू नहीं जाणती बावळी, जितनी पिलसण बँधैगी उसतै फालतू ये

पुलिस वाळे, पटवारी, ग्राम परधान मिल कै खा जाँग्गे, म्हारे पल्ले के पड़ैगा?'' मोहरसिंह ने कहा। इस पर रामो बोली, ''अरै कुछ तो मिलैगा, एक दो महिन्ना ई तो पिलसण हजम कर सकैं सारी जिंदगी थोड़ेई खात्ते रहैंगे?...फेर थाणेदार का हुक्म भी तो है, चलणा तो पड़ैगा।

''मिलना मिलाणा तो कुछ है नईं, तेरी जिद्द है, चले चलैंगे, पर देख लेणा रामो, छदाम भी पल्ले नईं पड़ैगा।''

शनिवार की प्रातः रामो ने झटपट चूल्हा जलाया, मिस्से आटे में नमक डाला और मोटी-मोटी रोटियाँ सेक लीं और गुड़ की डली, अचार के साथ एक कपड़े में लपेट ली। दोपहर होते-होते दोनों थाने पहुंचे। थानेदार उन्हें देखकर, अदब से खड़ा हो गया और एक सिपाही से बोला, ''अरे कुर्सी ला, चौधरी साहब आए हैं।''

वे दोनों कुर्सियों पर बैठ गए। थोड़ी देर बाद चाय-नाश्ता आ गया। मोहरसिंह मन मन में सोच रहा था, ''मोहरे, पता नहीं कोण-सा जाळ बिछा रह्या है यू थाणेदार?'' थोड़ी देर बाद एक सिपाही उनसे आकर बोला, ''चलो चौधरी साहब, रोट्टी खा लो।''

''हवलदार जी, रोट्टी तो हम ल्याएँ हैं, बस एक बंटा-पाणी मंगवा दो।''

''नहीं, नहीं, थानेदार साहब ने कह्या है के मेरे साथ ही रोट्टी खावैंगे, बुला ल्या दोन्नों नै।'' मोहरसिंह रामो से फुसफुसाकर बोला, ''रामो, मनै लगै, बली के बकरे की ढ़ाळ म्हारी सेवा हो रही है, कुछ गड़बड़ जरूर है, मनै पहलेई कह्या था, पर तू नईं मान्नी, ये पुलिस वाळे तो अपणे बाप के भी सगे नईं होत्ते, मैं तू तो किस खेत की मूळी?'' दोनों थानेदार के क्वार्टर पर पहुँचे, वहाँ उनकी अच्छी तरह खातिरदारी की गई।

खाना खा चुकने के बाद थानेदार बोला, ''चौधरी साहब, खाने-पीने में कोई कसर तो नईं रह गई?''

''थानेदार साहब, पिलसण बंधण तै पहले यू खातिरदारी भी करी जावै?'' मोहरसिंह ने कहा।

थाणेदार ने हाँ में गर्दन हिलाई और बोला, ''चौ. साहब! थोड़ा आराम कर लो, दिन ढले चलैंगे, वहाँ कलक्टर साहब के यहाँ जाना है, वहाँ आपकी पेंशन का एलान होगा।''

मोहरसिंह का सिर चकरा रहा था। उसे यकीन ही नहीं आ रहा था

कि थानेदार एक भोले भाले किसान की इतनी खातिरदारी कर सकै। वह भीतर ही भीतर भयभीत हो उठा और रामो के साथ, सिपाही के पीछे-पीछे चल दिया, जैसे कोई कठपुतली हो। जैसे-जैसे थानेदार का हुक्म होता रहा वे दोनों आँखें मूंदकर उसका पालन करते रहे। बराबर वाले कमरे में दो चारपाइयाँ बिछी थीं, उन पर दरी और सफेद चादर बिछी थी। वे दोनों चारपाई पर लेट गए, दीवार के सहारे बैठा एक सिपाही हाथ से छत का पंखा खींचने लगा। उन्होंने करीब दो घंटे आराम किया। दोनों को लगा जैसे उन्हें स्वर्ग की सैर कराई जा रही है।

थानेदार आया और बोला, "चौ. साहब चलो, उठो साँझ हो गई है, अब शहर चलेंगे। मोहरसिंह बोला, "पर रात मै हम रुकैंगे कहाँ, अपणा तो कोई ठौर-ठिकाणा नहीं थाणेदार साहब?"

"कलक्टर साहब नै सब इंतजाम कर रखे हैं, आप फिकर ना करो।" थानेदार बोला।

"और म्हारे जिनावराँ का के होगा, उन्हाँनै दाणा पाणी?"

"वो हमने ग्राम प्रधान से कह दिया है कि इनके जानवरों की ठीक से देखभाल करें, वह सब इंतजाम कर देगा, थारे घर की भी चोकसी करैगा, फिकर मत करो।"

डी.एम. के आदेशानुसार, थानेदार दोनों को जीप में बिठाकर ठीक समय पर कॉलेज पहुँच गया। कॉलेज के लॉन में बहुत बड़ा पंडाल सजा था। पंडाल में नौचंदी की-सी रोशनी हो रही थी। पंडाल के पिछले हिस्से में बहुत बड़ी स्टेज बनी हुई थी, ऊँचे-ऊँचे रेशमी पर्दे लटक रहे थे। स्टेज के सामने पहले दो पंक्तियों में सोफे बिछे थे, जिन पर रिजर्व्ड की चिटें लगी हुई थीं, उसके बाद तीन पंक्तियों में बेंत की कुर्सियाँ बिछी हुई थीं, वे भी रिजर्व्ड कैटेगरी की थी, फिर उन कुर्सियों के पीछे, सैंकड़ों की संख्या में, छात्रों के बैठने वाली लकड़ी की सीट वाली कुर्सियाँ बिछी थीं, स्टेज से लेकर पंडाल के गेट तक, बीच में चार-पाँच फुट चौड़ा खाली रास्ता था जिस पर लाल रंग के मखमली कालीन बिछे हुए थे, पंडाल-द्वार फूलों से सजाया हुआ था। थानेदार उन दोनों को लेकर पंडाल के भीतर घुसा और पंडाल गेट से स्टेज तक के चार-पाँच फुट खाली रास्ते के दोनों ओर बिछी कुर्सियों के किनारे उन दोनों को बिठाकर थानेदार कहीं चला गया। मोहरसिंह ने पहचान लिया कि नंदन इसी कॉलेज में पढ़ता था। उसके

मस्तिष्क के तार छनछना उठे।

कॉलेज देखते ही मोहरसिंह भावुक हो उठा, वह धीरे से, रामो से बोला, "रामो, यू ई कोलिज है जहाँ तेरे नंदन साहब, पढ़्या करैं थे। इसी कोलिज में उसके बाप्पू की चिता जळी थी, यहीं उसका किरया करम, तेरामी, बरसी सब कुछ, इसी कोलिज मै हुया था। आज इस कोलिज नै देख कै मेरे घाव फेर हरे हो गए, मनै लगै रामो, मेरा परेत भटकता-भटकता मेरे सामी आ खड़्या हुया है, पंडत लोग कह्या करै के जिब लों 'गया जी' नई होत्ता वो आदमी परेत बण कै युईं भटकता रहवै, बस परमातमा तै मैं तो युई माँग्गूँ के भगवान तू मेरा 'गयाजी' भी इसी कोलिज मै कर दे, मेरे परेत की मुकती कर दे परमातमा!" कहकर मोहरसिंह गुमसुम हो गया। रामो बोली, "ऐसे सोहणे कोलिज मै पढ़्या करै था मेरा सुखी?" इतना सुनते ही मोहरसिंह बोला, "हाँ युई वो जगै है जिसमें एक बाप के अरमान्नाँ की होळी जळी थी, युई कोलिज है जहाँ एक बेट्टे ने सिख्या था के गंदे मैल्ले-कुचैल्ले कपड़े पहण लेण तै बाप, बाप नई रहत्ता, वह पढ़े लिखे बेटे का मजूर हो जावै, युई कोलिज है जहाँ मैं बेट्टा समझ कै एक सपोळिए नै दूध पिलार्या था, युई कोलिज है..." कहते ही उसका कंठ अवरुद्ध हो गया, वह फुसफुसाकर रामो से अपनी व्यथा बखान करता रहा, स्टेज पर छात्रों के कार्यक्रम चल रहे थे, जिन्हें सभी दर्शक मंत्रमुग्ध हो देख रहे थे—पर मोहर सिंह और रामो, अपने नंदन में खोए हुए थे!

मोहरसिंह बुदबुदाया, "बड़ी मुश्किल तै उस नल्लाक की याद दफन करी थी, यूँ याद तो उसकी हर वखत आवै थी पर मैं अपणे दिमाग नै, इंघै, उंघै घुमाकै दिल ने तसल्ली दे लिया करूँ था और भाड़ी सी बार मै सांती मिल जाया करै थी, पर आज जिब तै इस कोलिज मै पाँ धरया है, मेरा दिल काब्बू मै नई।" कहकर मोहरसिंह की आँखें छलछला आईं। रामो बोली, "तू तो मरद है ना, क्युँक्कर भी अपणे मन नै समझा सकै पर मैं तो माँ हूँ, माँ की पीड़ मरद कै जाण सकै, मैं तेरे तै कहत्ती ई तो नई, पर रात दिन उठते बैठते, सोत्ते जागते, जिब मनै सुखी याद आवै तो मैई जाणूँ मेरे काळजे पै कैसी आरी सी चलै, तेरी डरियाँ, मैं तो रो भी नहीं सकती के मनै रोत्ती देख, न जाणे तू के कर बैट्ठे।" कहकर रामो सुबक उठी। दोनों नीचा मुँह किए बैठ-बैठ सुबकने लगे, उनके नेत्रों से टपाटप आँसू बहने लगे। मोहरसिंह बड़बड़ा उठा, "कित्ता कमजोर हूँ मैं, मैं

सोच्चा करता था के मैं मर ग्या नंदन की तरफ तै, फेर क्यूँ आँस्सु बहा रहया है, क्यूँ मेरे काळजे मै एक हूक-सी उठ रई है, मेरी समझ में नईं आत्ता के ऐसे नल्लाक पूत के लिए रोणा कोई मर्दानगी है?'' उसने स्वयं को नंदन की स्मृति से इस प्रकार तोड़कर अलग कर लिया जैसे एक ही झटके में बकरा हलाल कर दिया जाता है।

वह धीरे से बोला, ''चुप हो जा रामो, कोई देख लेग्गा तो के कहैगा?'' वह फुसफुसाया, ''अरी देख तो रामो, घोर कळजुग आ ग्या है, छोरियाँ कैसी अधनंगी हो कै नाच रई हैं।'' रामो ने भी अपने मनको जबरदस्ती स्टेज की और धकेला और बेटे को भूलने की कोशिश करते हुए अपने मन को समझाया, ''तनै दिखाई ई तो नईं देवै नंदन, पर है तो वो भला चंगा, हफ्ते वार तो उसकी चिट्ठी, आत्ती रहवै, और के चहियै तनै रामो, बेट्टा सही सलामत है, यू ई काफी है।''

स्टेज का पर्दा गिरा, सारा पंडाल खचाखच भरा था। अनाउंसमेंट हुआ, ''अब प्राचार्य महोदय अपना संदेश देंगे। पर्दा उठा, प्राचार्य महोदय, डायस पर आए और दर्शकों से बोले, ''अब मुख्य अतिथि कमिश्नर एस. नंदन साहब, आने ही वाले हैं, वे आपको संबोधित करेंगे...वो देखिए वे गेट में प्रवेश करने ही वाले हैं, कृपया आप सब लोग शांत होकर बैठिए।'' कहकर प्राचार्य महोदय, कमिश्नर साहब को रिसीव करने के लिए तेजी से गेट की ओर बढ़े, कमिश्नर के गले में फूलों की एक भारी-सी माला डाली और उनसे हाथ मिलाकर, स्टेज की ओर चलने का इशारा किया। कमिश्नर स्टेज पर बिछी कुर्सियों में से बीच वाली कुर्सी पर बैठ गए।

रामो ने मिचमिचाती आँखों से कमिश्नर को देखा, ''अरै सुण नंदन के बाप्पू, यू तो म्हारे नंदन जैसा लगै, वैसी ही कद काट्ठी, वैसा ही गोरा चिट्टा, दूध जैसा रंग, वैसाई गबरू जबान।'' रामो उसे आँख फाड़कर देखती रही। दोनों की दूर-दृष्टि कमजोर हो गई थी, चश्मा बनवा नहीं सके थे, अतः उन्हें कुछ साफ नहीं दिखाई दे रहा था। मोहरसिंह बोला, ''अरी होगा कोई, तेरा नंदन भी हो तो मनै के फरक पड़ै? फेर तेरा नंदन? ऐसा कमीणा छोरा, कदी इतना उँच्चा उठ सकै। कोई और होगा, एक सकल के कितने ई आदमी होवैं।'' फुसफुसाकर मोहरसिंह चुप हो गया।

इतने में ही प्राचार्य ने घोषणा की, ''देखिए, कमिश्नर साहब हमारे

बीच पधार चुके हैं, मैं उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे आप सबको संबोधित करें।

कमिश्नर उठे और डाइस पर आकर खड़े हो गए, दर्शकों को केवल उनका थोड़ा-सा चेहरा दिखाई दे रहा था—सारा शरीर डाइस के पीछे था। बिजली की तेज रोशनी में आँखें चौंधिया रही थी। कमिश्नर ने बोलना शुरू किया—"प्रिय छात्रों, बुजुर्गों, भाइयों और बहनों! मेरा सौभाग्य है कि आज मुझे इस कॉलेज के वार्षिक समारोह का मुख्य अतिथि बनाया गया है। मैं आप सबसे, विशेषतः छात्र वर्ग से बातें करने आया हूँ, उपदेश झाड़ने नहीं।" रामो फुसफुसाई, "अरे इसकी तो बोल्ली भी म्हारे नंदन की-सी है...क्या सच्चोई वह इतना बड़ा आदमी बण ग्या है?...पर इतना बड़ा क्युँककर बण सकै?"

"चुप बैज्जा, सुन तो सई के के कैर्‌या है।"

सबसे पहले मैं गुरु शिष्य संबंधों पर बात करूँगा। मैं मानता हूँ, ये विद्यालय, महाविद्यालय, विश्वविद्यालय, ऐसे शिक्षण क्षेत्र हैं बल्कि यूँ कहिए कि ये प्रयोगशालाएँ ही नहीं, वर्कशाप्स हैं जहाँ छोटे-से-छोटे बच्चों से लेकर बड़े-से-बड़े नवयुवकों की डेंटिंग-पेंटिंग होती है। गुरु अपने शिष्यों को कुछ सजा देता है तो उसके पीछे एक ही मकसद होता है कि वह अपने छात्र के दोषों को, ठोक-ठोककर उसी प्रकार निकालता है जिस प्रकार एक डेंटर, डेंट के नीचे हाथ फिरा, धीरे-धीरे, ऊपर से खट-खट चोट मारकर, उसे निकालता है। डेंट कहीं अधिक गहरा हो तो उसे सख्त चोट भी लगानी पड़ती है—जैसा डेंट वैसी चोट—क्योंकि वह हर हालत में उस डेंट को निकालना चाहता है, फिर उस पर पेंटिंग कर, उसे नया रूप देता है। मानता हूँ कि कुछ डेंटर अधिक कठोरता से चोट मार देते हैं, वह गलत है, उससे अक्सर वह डेंटिड जगह टूट जाती है, फिर उसे अपनी लगाई गहरी चोट का खमियाजा भी उठाना पड़ सकता है। मतलब यह है कि गुरु हर कीमत पर यह चाहता है कि मेरा शिष्य बुद्धिमान, ज्ञानवान, सफल जीवन-यापन करने वाला एक महान् व्यक्ति बने। मेरी मान्यता है कि गुरु शिष्य का रिश्ता, सबसे पवित्र और महान् होता है, इसकी पुष्टि में मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि केवल यह रिश्ता, एक बात में तो कम-से-कम सब रिश्तों से ऊपर है कि गुरु को शिष्य की उन्नति से कभी भी ईर्ष्या नहीं होती। एक भाई, अपने सगे माँ जाए भाई से ईर्ष्या कर

सकता है बल्कि करता है, बहन भी ईर्ष्या कर सकती है, और यहाँ तक कि ऐसे भी उदाहरण हैं कि एक पिता अपने पुत्र से ईर्ष्या कर बैठता है, पर गुरु, शिष्य से कभी भी ईर्ष्या नहीं करता—जब उसे पता चलता है कि उसका अमुक शिष्य प्रथम आया है, अमुक अफसर बन गया है, अमुक किसी बड़ी कंपनी का एम.डी. बन गया है तो उसकी निश्छल प्रसन्नता की सीमा नहीं रहती, वह खिल उठता है और यदि उसे किसी पुरातन छात्र के बेकार होने की सूचना मिलती है तो उसे कष्ट भी होता है।''

''गुरु शिष्य के रिश्ते के विषय में आज मैं अधिक कुछ न कहते हुए छात्र वर्ग से मेरी अपील है कि गुरु द्वारा दी गई किसी सजा पर विपरीत प्रतिक्रिया न जताए, यही समझें कि गुरु एक डाक्टर है जो अपने मरीज को स्वस्थ करना चाहता है, इसीलिए वह उसे इंजेक्शन लगाता है, कभी-कभी उसे चीरा भी लगाना पड़ता है, इसलिए उसे थोड़ी बहुत पीड़ा को सहन करने का स्वभाव बना लेना चाहिए। गुरु अपने शिष्य को पुत्रवत् मानता है, सजा वह अपने पुत्र को भी देता है, अतः गुरु द्वारा दिए गए दंड को अन्यथा न समझ, अपनी कमी की ओर ध्यान देना चाहिए। और गुरुजनों से मेरा निवेदन है कि डेंटिड मूर्ति का डेंट निकालते वक्त वे इतनी सावधानी अवश्य बरतें कि खोट निकालने हेतु लगाई गई उसकी चोट इतनी सख्त न हो कि मूर्ति खंडित हो जाए।''

''अब मैं माता-पिता के साथ संतान के संबंधों में कुछ कहना चाहता हूँ। मुझे अपने गुरुजी के, एक दिन कहे गए शब्द आज भी अक्षरशः याद हैं। वे राम बन गमन के प्रसंग पर लेक्चर दे रहे थे। बोलते-बोलते वे पूजा, अर्चना, नमाज आदि पर पहुँच गए और उन्होंने एक विस्तृत व्याख्यान दिया जिसके अंतिम शब्द मैं, ज्यूँ के त्यूँ आपके समक्ष रख रहा हूँ—''देखो छात्रो, मेरी एक बात सदा याद रखना—भले ही मंदिर मत जाओ, मस्जिद मत जाओ, गुरुद्वारा, चर्च मत जाओ, बस एक बार, केवल एक बार, प्रातः उठते ही यह स्मरण कर लिया करो कि जबसे तुम्हें स्मरण है तब से लेकर आज तक तुम्हारे माँ-बाप ने तुम्हारे लिए किस-किस हाल में क्या-क्या किया है—बस उसे स्मरण कर लिया करो, तुम्हारी पूजा, अर्चना सब इसी में पूर्ण हो जाया करेगी, यदि तुमने नियम से इसका पालन किया तो समझ लो तुम्हें वह पुण्य मिलेगा जो तुम्हें सीताराम, राधाकृष्ण, पार्वतीशंकर की पूजा से मिल सकता है। मैं यह

नही कहता कि तुम माँ-बाप को कुछ दो, कुछ भी मत दो, बस अपने प्रति किए गए उनके कर्मों का स्मरण ही तुम्हारी भगवत्पूजा है।''

''तुम सभी बेटे हो, तुम यदि आत्मा से भगवान की पूजा करनी चाहते हो तो करो, जरूर करो, पर प्रातः उठते ही सबसे पहले माँ-बाप का स्मरण कर लिया करो। परमपिता ने हम सभी को जन्म दिया है, पहले पिता को प्रणाम करो, फिर परमात्मा को, बस इससे अधिक मैं कुछ कहना नहीं चाहता।''

''और अंत में मैं आप लोगों को, एक सच्ची कहानी का, आँखों देखा हाल सुनाता हूँ।'' एक कॉलेज में गाँव का एक लड़का पढ़ता था, उसका पिता एक छोटा-सा किसान था। पिता ने अपना सब कुछ दाव पर लगाकर, उसे पाला-पोसा और अपनी जमीन तक बेच-बेचकर उसे पढ़ाता रहा, और वह होस्टल में ऐसे रहा करता था जैसे कोई बड़े जमींदार घराने का हो। एक दिन उसका पिता अपने फटे-पुराने कपड़े पहनकर, उसे घी देने के लिए उसके होस्टल पहुँचा तो उसे अपने पिता को देखकर बड़ी लज्जा आई और अपने साथी के सामने उसने अंग्रेजी में कहा, ''ही इज माई सर्वेंट।'' इस बात का पता उसके पिता को लगा, तो उसने बेटे से नाता तोड़ दिया और उसे कभी भी क्षमा न करने का संकल्प कर लिया, पुत्र को आदेश दे दिया कि उसे कभी अपनी शक्ल न दिखाए।''

''आज मैं आपको उस नालायक बेटे और उसके माँ-बाप के दर्शन कराता हूँ।'' कहकर कमिश्नर ने एक इशारा किया कि मोहरसिंह और रामो को स्टेज पर ले आएँ। दोनों समझ चुके थे कि यह उनका बेटा सुखनंदन ही है। उनके हृदयों में एक ऐसा झंझावत चल रहा था जिसे न तो तूफान की संज्ञा दे सकते थे, न भयंकर ओलावृष्टि की, न ही बिजली की कड़क की और ना ही किसी गरीब की अचानक ही लाखों करोड़ों की लाटरी के खुलने की सूचना की खुशी की—उठकर वे एक अजीब-सी चाल से स्टेज की ओर बढ़े, चाल में न दंभ था, न अकड़, न क्षोभ न ऊहा-पोह, बस एक सिहरन, एक पुलकन थी जैसे कोई निर्धन मधुर स्वप्न देख रहा हो और मन ही मन प्रार्थना कर रहा हो कि हे प्रभु, इसे एक स्वप्न ही रहने दे, एक ऐसा अनंत स्वप्न जिससे कभी मेरी आँखें न खुलें।

वे दोनों स्टेज पर पहुँच गए। मोहर सिंह एक मैली-सी धोती, कुरता, टूटी हुई-सी जूतियाँ पहने था और रामो भारी-सा लहँगा, सिर पर ओढनी,

हाथों में दो-दो चूड़ियाँ, नाक में लौंग और पैरों में बिछुए पहने हुए थी। दोनों नीची नजरें किए मूर्तिवत् खड़े रहे। पंडाल में बैठे सभी व्यक्ति एकदम मौन, निस्तब्ध बैठे थे, सभी उत्सुक होकर उस दृश्य को देखे जा रहे थे। कमिश्नर थोड़ा आगे बढ़ा और बिना माइक अपनी दाईं तर्जनी को ऊपर उठाते हुए बोलना शुरू किया, "मित्रो, यही वह कॉलेज है जिसके हॉस्टेल की ऊपर की मंजिल पर कमरा नं. 11 में वह नालायक लड़का रहता था। यह कोई सात वर्ष पहले की बात है और वह दुष्ट लड़का सुखी था, सुखनंदन (अपने सीने पर घूँसा मारते हुए) मैं, जो आज आपके सामने खड़ा है और वह बाप यह था चौ. मोहरसिंह जिसके तन पर आज भी चिथड़े लिपटे हैं, जिसकी आँखों की रोशनी ना के बराबर रह गई है, जिसके पैरों में बिवाइयाँ फटी हुई हैं, जिसे कभी दो जून भर पेट रोटी भी नसीब नहीं हुई, रोटी मिलती कहाँ से, अपना सब कुछ बेच बाचकर तो मेरे ऊपर फूँकते रहे, सूखकर काँटा हो गए हैं, अपना सारा खून जो मुझे पिला चुके थे।" नंदन का कंठ भर आया..."और यह है मेरी माँ, माँ तो किसी भी स्त्री को कहा जा सकता है पर जननी, जन्म देने वाली तो एक ही होती है, माँ का अर्थ तो स्त्री ही समझ सकती है, पुरुष नहीं, जिसके हृदय में पुत्र के लिए कभी दुर्भावना नहीं होती, बेटा कितना भी नालायक हो, माँ उसके लिए बस माँ है, जन्मदात्री, एक माँ जो बेटे द्वारा कत्ल कर दिए जाने पर भी यही कहेगी, "सुखी रह बेटा, तेरा कल्याण हो, तू फूले-फले, बेटे द्वारा दंडित होने पर भी वह उसे पुत्रवान् होने का आशीर्वाद देती है...मुझ जैसे दुष्ट पापी बेटे ने इन देवी-देवता का अपमान किया।" कहते-कहते कमिश्नर की आँखों डबडबा आई और उसका गला भर आया। कुछ देर वह मौन खड़ा रहा, प्रकृतस्थ होकर वह बोला, "छात्रों मैं आप सभी से एक अपील करता हूँ, आप लोगों से एक चीज माँगता हूँ जिसे देने में तुम्हें कोई संकोच, कोई पोशानी नहीं होनी चाहिए, बोलो करते हो हाँ?" सभी छात्र एक साथ बोले, "सर, हम देंगे, जो भी आप हमसे माँगेंगे, हम देंगे।"

"तो सब खड़े हो जाओ, (सभी छात्र खड़े हो गए) पंडाल में एक शून्य एक मौन छा गया, पिंड्रॉप साइलैंस—ऐसा दृश्य किसी उत्सव के पंडाल में, न देखा था, न सुना था, पंडाल में अद्भुत शांति छा गई। आप सभी अपने-अपने माता-पिता का स्मरण करें और जैसे-जैसे मैं बोलूँ आप सब उसे दोहराएँगे—"माँ पिताजी, आप दोनों की सौगंध खाकर (छात्रों ने दोहराया) मैं (अपना-अपना नाम लीजिए) परम पिता परमात्मा और माँ

सरस्वती को साक्षी मानकर (छात्रों ने दोहराया) यह संकल्प लेता हूँ कि मैं, अपने प्रति किए गए आप लोगों के कर्मों का, प्रातः उठते ही सबसे पहले स्मरण किया करूँगा, और कभी आपके हृदय को वेदना देने का कारण नहीं बनूँगा (सभी छात्रों ने संकल्प लिया)।

"अब आप लोग बैठ जाइए, मुझे विश्वास है आप लोग अपने मन, आत्मा से अपने द्वारा की गई इस प्रतिज्ञा को, भीष्म प्रतिज्ञा के समान, दृढ़ बनाकर, रखेंगे।" कहकर कमिश्नर मौन हो गया। थोड़ी देर बाद वह माँ की ओर मुँह कर, हाथ जोड़कर बोला, "माँ मनै माफ कर दे।" और माँ के पैरों में गिर पड़ा। रामो ने उसे उठाया और कलेजे से चिपका लिया, आँखों से आँसू टपकाती हुई बोली, "बेट्टे, मैं तेरे तै क्युँकर नराज हो सकूँ? चल अपणे बाप्पू तै माफी माँग ले।"

इस पर कमिश्नर नंदन बोला, "माँ, बाप्पू तै माफी नईं माँग्गूँगा, कदी भी नईं।"

"बेट्टे! वो तेरा बाप है।" "बाप था माँ, मनै तो उसे जित्ते जी मार दिया, इब बाप कहाँ रह गया, माफ्फी माँगण जोग कहाँ रह्या मैं?"

"ना! बेट्टे गलती हो गई थी तेरे तै, कोई बात नईं, चल माफ्फी माँग ले बाप्पू तै के बाप्पू मनै माफ कर दे, मेरे तै गलती हो गई थी।"

"गलती? तू इसे गलती कहवै, यू तो अपराध था, अपराध तै भी बड़ा, यू तो पाप था पाप—अपराध की तो सजा होवै, ज्यादा-से-ज्यादा उमर कैद या फाँस्सी, पर पाप की सजा तो यहाँ नहीं होत्ती, वो तो उप्पर जा कै मिलैगी मनै। तू चाहती है के माफी माँग कै उस पाप के गट्ठर का बोझ उतार फेंक्कू अपणे कंध्या तै, अपणे मन, आत्मा तै...ना माँ यू दूसरा पाप मैं ना कर सकूँ। इसी पाप की सजा भोगूँगा सारी जिंदगी, मैं माफी नहीं माँग्गूगा। इस जनम मै तो यू ई सजा है मेरी कि सारी जिंदगी बाप के प्यार नै तरसता रहूँ।" कहकर नंदन के नेत्रों से गंगा-जमना बह चली।

मोहरसिंह नंदन की ओर बढ़ा और उसने नंदन को कंधे पकड़कर उठाया और सीने से लगा लिया—"नंदन तनै क्युँक्कर सजा दयूँ बेट्टे। सजा तो उद्दिन तै मैं अपणे आप नैई देत्ता आर्या हूँ। तनै इबी पता नईं चलैगा के बाप का दिल कैसा होवै, जिद्दिन बाप बण जाग्गा, उद्दिन पता चलैगा।" और मोहरसिंह ने नंदन को अपने सीने से और जोर से चिपका लिया।

●

भाभी

आज सुबह-सुबह ही भाभी का फोन आया कि जरूरी बात करनी है, आजाओ, और फोन काट दिया। मैंने चाय का प्याला मेज पर रख दिया और अखबार एक ओर रखकर सोचने लगा कि कोई बात जरूर है, जो भाभी ने एक बात कहकर ही फोन काट दिया, लगता है भाभी परेशान है...सोचते-सोचते मैं अपनी युवावस्था में पहुँच गया जब मैं बी.एस-सी. का छात्र था।

"अरे चाय बर्फ हो गई है, क्या सोच रहे हैं?" बेला ने आवाज लगाई, मेरी तंद्रा भंग हो गई, मैं जैसे सोते से जाग उठा और बोला, "अरे ध्यान ही नहीं रहा।" मैंने चाय का प्याला उठाया, वाकई ठंडी हो गई थी। मैंने कहा, "पी लूँगा, कोई खास ठंडी नहीं हुई है।"

"ऐसे कैसे पी लोगे? मैं अभी दूसरी चाय बना लाती हूँ।" बेला ने मेरे हाथ से चाय का प्याला पकड़ा और 'न जाने बैठे-बैठे क्या सोचते रहते हैं', बड़बड़ाती-सी चली गई। मैंने अखबार उठाया और हेड लाइन पढ़ी ही थी कि बेला चाय लेकर आ गई। "लो, चाय पी लो पहले, वरना फिर ठंडी हो जाएगी।" कहकर वह खड़ी हो गई। मैंने कहा, "पी लेता हूँ भई, अब तुम खड़ी क्यों हो, जाओ अपने काम निपटा लो।"

"नहीं, पहले चाय पीओ, मैं ऐसे ही खड़ी रहूँगी।"

"मैं कोई बच्चा हूँ?"

"बच्चे से भी ज्यादा, कुछ भी ध्यान नहीं रहता, न जाने क्या-क्या सोचते रहते हैं...कहाँ खोए रहते हैं? बताइए क्या बात है?" कहकर बेला मेरे बराबर वाली कुर्सी पर बैठ गई।

मैंने चाय का घूँट भरा और बोला, "देखो बेला, कुछ समस्याएँ, व्यक्ति की पारिवारिक होकर भी कभी-कभी निजी बन जाती हैं, बस

समझ लो कि मेरी निजी समस्या है, इसे मुझे ही हल करना है।''

''अब तुम्हारी कोई समस्या निजी समस्या नहीं हो सकती, कहीं-न-कहीं वह मुझसे जुड़ी होगी। अतः मिल-जुलकर ही हमें उसे सुलझाना है...अच्छा बताओ क्या बात है?''

मैंने चाय का खाली प्याला मेज पर रख दिया और बोला, ''सुबह ही भाभी का फोन आया था कि कुछ बात करनी है, आ जाओ, कहकर फोन काट दिया। काफी दिनों से मैं महसूस करता आ रहा हूँ कि भाभी परेशान हैं। लगता है बेटे बहुओं के साथ कुछ खटपट है, जब से भैया गए हैं, वे अकेली हो गई हैं, अपने मन की बात अब किससे करें?''

''क्यूँ, बेटे बहुएँ उनकी अपनी नहीं है, मंजरी उनकी अपनी नहीं है? क्यूँ नहीं बाँट सकती वे अपनी परेशानियों को अपने बच्चों के साथ?'' बेला ने कहा।

''अरे मंजरी तो अब दूसरे घर की हो गई, रह गए सौमित्र और राघव—वे दोनों अपने व्यापार और गृहस्थी में मशगूल हैं, तीनों बच्चों में कोई ऐसा नहीं जिससे वे अपने मन की बात कह सकें।''

''तो आप हैं उनकी समस्या के समाधान कर्ता?'' बेला ने कहा।

''मैं, मैं, हाँ मैं हो सकता हूँ, मुझे वे अपना मानती है, सौमित्र और राघव के साथ वे मुझे अपना तीसरा बेटा मानती हैं। वे बेटों से अक्सर कहा करती थी, ''नालायकों, तुम बुढ़ापे में हमारे सुख-दुख में काम नहीं आओगे। गौरव मेरा तीसरा बेटा है, उसके होते मुझे तुम्हारी चिंता नहीं।'' कहकर मैं चुप हो गया। बेला बोली, ''ठीक है, आप अगर कुछ का सकते हैं तो जरूर करिए, पर आप कुछ कर नहीं सकते, मैं समझती हूँ उन्हें कोई आर्थिक परेशानी तो होनी नहीं चाहिए। भैया काफी रुपया, इतनी बड़ी कोठी, जायदाद छोड़कर गए हैं कि हमारे पास तो उनसे आधा भी नहीं। वही पारंपरिक सास बहू, या बेटों की समस्या होगी, मुझे तो इसके अलावा कुछ नजर नहीं आता।''

''लगता तो मुझे भी ऐसा ही है, भाभी बड़े घर की हैं, उन्होंने सदा हुकुम चलाया है, भैया और अपने बच्चों पर ही नहीं, मुझ पर भी। अब जमाना बदल गया है, उनकी हुकुम उदूली हो रही होगी, जो उन्हें बर्दाश्त नहीं हो रही होगी—बस मुझे यही परेशानी है।'' कहकर मैंने बेला की ओर देखा।

"ऐसा करो तुम आज ही चले जाओ और भाभी से मिल लो, फिर देखेंगे कि क्या बात है और उसे किस प्रकार सुलझाया जा सकता है।" कहकर बेला चली गई।

कॉलेज के दिनों की मेरी स्मृतियाँ, मेरे नेत्रों के सामने सद्यः स्नाता सी, रह-रहकर घूमने लगी।

"भाभी! ओ भाभी!...सुनती हो..."

"आज तुम बहुत सुंदर लग रही हो...यही ना?" कहकर भाभी ने मेरा वाक्य पूरा किया?

"नहीं भाभी, सच्ची-मुच्ची, आज तुम बहुत सुंदर लग रही हो।"

"तो?" "तो कुछ नहीं, बस लग रही हो, मन करता है तुम्हारी कोली भर लूँ और तुम्हारी पप्पी ले लूँ! भाभी प्लीज, एक पप्पी।"

"जरूर", कहकर वे आगे बढ़ी और "ले पप्पी!" कहकर मेरी कमर पर एक प्यारा-सा धौल जमा दिया, "कैसी लगी?" इस पर मैंने कहा, "बहुत मीठी।" और वे चली गई।

"ठीक है, लेकर ही रहूँगा पप्पी।" मैंने उन्हें पीछे से सुनाया। उनसे पैसे झटकने का मेरा यह अपना अंदाज था। एक दिन मैंने उनसे कहा, "भाभी आज तो गजब ढहा रही हो, बड़ी सुंदर लग रही हो।"

"बिना किसी बात के ही मैं सुंदर लग रही हूँ?"

"हाँ भाभी बिना किसी बात के।"

"थैंक्स।"

मैं बोला, "भाभी! बस थैंक्स, और कुछ नहीं?"

"और क्या...बोलो, लग रही हूँ सुंदर? बिना बात तो मैं सुंदर लगती नहीं, मैंने तो पूछा था, बता क्या बात है, क्यूँ लग रही हूँ मैं आज सुंदर? तू ने नहीं बताया तो क्या मैं थैंक्स भी नहीं देती?" कहकर वे मुस्काई और बोली, "अच्छा बता, आज कितने रुपए चाहिएँ?"

"चलो आप जिद कर रही हैं तो बस एक नोट।"

भाभी ने झट पाँच रुपए का नोट मेरी ओर बढ़ाया। मैंने कहा, "मैं बेयरा हूँ क्या? पाँच रुपए तो आजकल बेयरे को टिप भी नहीं देते, मेरी औकात पाँच रुपए?"

"अरे तो बोल ना कितने की औकात है तेरी, 10, 20, 50 कितनी?"

"पचास से आगे गिनती नहीं आती क्या?"

भाभी ने 100 रुपए का नोट मेरी ओर बढ़ाया, मेरे मुँह पर हल्की-सी चपत लगाई और मुस्कराकर चली गई।

भैया यह सब देख रहे थे। उन्होंने भाभी से कहा, "देखो सुमित्रा, तुम गौरव कौ बिगाड़ रही हो, उससे यह भी नहीं पूछती कि किसलिए चाहिए तुझे रुपए?"

"अरे बच्चा है, अपने सौमित्र और राघव भी तो ऐसे ही जिद करते हैं, गौरव को रुपए दे देती हूँ तो क्या हुआ?"

"इस तरह रुपए देकर तुम सौमित्र और राघव को भी बिगाड़ोगी तो मैं बर्दाश्त नहीं करूँगा। मानता हूँ तुम गौरव को बेटे जैसा मानती हो, मेरे लिए भी वह कम नहीं, पर इस तरह बच्चे बिगड़ जाते हैं।"

उस दिन भाभी का मूड खराब रहा। वे तरह-तरह के विचारों में डूबी रही। भैया से बोली, "मेरी अजीब मुश्किल है। गौरव पर सख्ती बरतती हूँ तो मेरे दिल को न जाने कैसा-कैसा लगता है, एक अजीब-सी उथल-पुथल मच उठती है दिल में, ढील छोड़ती हूँ तो तुम्हें अच्छा नहीं लगता। सोच नहीं पाती हूँ कि मुझे क्या-क्या करना चाहिए।" उस दिन भाभी बड़ी उदास-उदास-सी रही।

भाभी, जब बैठी हुई होती थी तो मैं अक्सर पीछे से जाता और उनके गले में दोनों हाथ डालकर उनकी पीठ पर झूल जाया करता था। वे कह उठती थी, "हठ रे, मेरी जान निकालेगा क्या?" मैं कहता, "क्या भैया से भी भारी हूँ? तो क्या उन्हें अपनी पीठ पर बिठाती हूँ?"

"पीठ पर नहीं, सिर पर तो बिठाती हो।"

वे बोली, "अरे सिर पर तो मैंने तुझे चढ़ा रखा है। तेरे भैया यही शिकायत करते हैं कि मैंने तुझे सिर पर चढ़ाया हुआ है, उसे बिगाड़कर छोड़ेगी।"

एक दिन मुझे क्या सूझा कि मैं एक फिल्मी सीन की नकल करता हुआ बोला, "ऐ भाभी, इधर आओ।" "आ गई।" "बैठ जाओ", "बैठ गई", "खड़ी हो जाओ", "खड़ी हो गई"...

"आगे क्या बोलूँ भाभी, याद नहीं रहा?" मैं बोला। वे बोली "अब बोल क्या खाएगी?" मैंने कहा, "अब बोलो क्या खाओगी?" उन्होंने खिलखिलाकर कहा, "जलेबी!" इस पर मैंने कहा, कल लाकर खिलाऊँगा

जलेबी...भाभी तुम तो बड़ी वफादार निकली, उतनी उट्ठक-बैठक तो तुम भैया के लिए भी नहीं करती।"

"पर तेरा हुकुम तो मानती हूँ।" "मेरा क्यूँ?"

"क्योंकि तू मेरा आत्मज नहीं आत्म-ग्रह्य बेटा जो है—मन आत्मा से स्वीकृत रिश्ते ज्यादा मधुर और स्थायी होते हैं।"

"उन्होंने कभी मेरी मजाक का बुरा नहीं माना, जब तक तुम नहीं आई थी बेला, भाभी के साथ जिंदगी हँसी-मजाक में कटती थी।" इतने में ही बेला बोली, "फिर रोते-झींकते कटने लगी जिंदगी मेरे साथ, यही कहना चाहते हो?"

मैंने कहा, "ऐसा तो मैं नहीं सोचता, लेकिन इतना सुखी, इतना निर्द्वंद्व जीवन मैंने फिर कभी नहीं देखा, न किसी की फिकर न फाका। माँ तो बचपन में ही मर गई थी और जब भैया की शादी हुई तो मैं ज्यादा छोटा नहीं था, टेंथ में पढ़ता था। माँ मुझे बहुत याद आती थी। लेकिन भाभी के प्यार ने माँ की याद भुला दी। मेरे हर सुख-दुख की साथी बनी भाभी, यहाँ तक कि मेरा कच्छा-बनियान भी वही धोती थी, मैं कभी-कभी कहता था 'भाभी, ये सब क्यूँ करती हो मेरे लिए?' "सौमित्र का तो टट्टी पेशाब धोती हूँ, तेरे ये काम तो मुझे नहीं करने पड़ते, और अगर तुझे जन्म दिया होता तो क्या तेरे ये काम नहीं करने पड़ते? तू मेरा बेटा नहीं है?" "हाँ, हूँ तो।" "फिर क्यूँ ऐसा वैसा सोचता है? मेरी तो बस एक ही तमन्ना है कि तू पढ़-लिखकर एक अच्छा इंसान बने, कुल का नाम रोशन करे।"

"क्या सौमित्र के बारे में ऐसा नहीं सोचती?" मैंने कहा।

"अरे बावले! यह भी कोई कहने की बात है, कौन माँ है जो बेटे की उन्नति नहीं चाहती?" "फिर मेरे लिए इतनी चिंतित क्यूँ रहती हैं?"

इस पर भाभी बोली, "सौमित्र बिगड़ गया तो मुझे कोई कुछ कहने वाला नहीं है, तू बिगड़ गया तो मैं किस-किसको जवाब देती फिरूँगी? मैं स्वयं अपने आपको क्षमा नहीं कर सकूँगी।"

बेला एक दम चौंक पड़ी, "अरे मेरा दूध?" कहकर रसोई की ओर भागी, देखा कि आधा दूध उबलकर बाहर गिर गया था। मैं जोर से चिल्लाया, "अरे क्या हुआ?" "होना क्या था, सारा दूध उबल गया तुम्हारे भाभी-पुराण के चक्कर में।"

थोड़ी देर में वह फिर आकर मेरे पास बैठ गई, बोली, "गौरव, तुम आज ही चले जाओ, पता नहीं भाभी किस मुसीबत में है?"

मैंने कहा, "हाँ बेला, यदि मैंने उनकी आज्ञा नहीं मानी तो मैं स्वयं को क्षमा नहीं कर पाऊँगा।"

"इतने बड़े भक्त हो भाभी के?"

"हाँ बेला! मेरे लिए वे भाभी ही नहीं, मेरी माँ है, उनका मुझ पर बड़ा भारी कर्ज है, बस यूँ समझले, भाभी न होती तो मैं आज वह न होता, जो हूँ, एक आवारा होता, और फिर तुम जैसी मुझे कहाँ से मिलती—इतनी सुंदर, इतनी कुशल..." "हाँ, हाँ, बटरिंग छोड़ो, सदा ही तो भाभी, भाभी गाते रहते हो।"

"अरे मैं बेला, बेला भी रटता हूँ, पर तुम्हारे सामने नहीं।" कहकर मैं मुस्कराया।

"मेरे सामने क्यूँ नहीं?"

"अभी तुम बटरिंग कह रही थी ना, तुम्हें लगेगा कि में बटरिंग कर रहा हूँ।"

"बड़े बुद्धू हो, नारी-मनोविज्ञान की ए.बी.सी. भी नहीं जानते।"

"दूसरों के सामने बेला ही बेला रहता है मेरी जवान पर, मेरे सारे फ्रेंडसर्किल से पूछ तो।" कहकर मैं चुप हो गया और सोचने लगा कि हो सकता है वहाँ भाभी का मन न लग रहा हो, टेलीफोन पर रह-रहकर भाभी का असंतोष झलकता रहता है, बेटे बहुओं से वे प्रसन्न नहीं, ऐसे में मेरे लिए क्या करणीय है—क्या भाभी को यहाँ ले आऊँ? यहाँ ले आया तो क्या बेला निभा पाएगी उन्हें? बेला को निभाना चाहिए, उन्होंने मुझे इतना प्यार दिया है, मुझ जैसे आवारा को एक सफल आदमी की मूर्ति में गढ़ दिया है, भाभी तो जैसे एक कुशल संगतराश हैं, पत्थर को तराश-तराशकर एक अत्याकर्षक मूर्ति में ढालने की कला-प्रवीणा हैं वे.. .वह घटना रह-रहकर, मेरी आँखों के सामने नितांत प्रांजल रूप में घूमती रहती है जब मैं बी.एस-सी. फाइनल में आ गया था। बुद्धि मेरी प्रखर थी, परीक्षा में सदा फर्स्ट आता था, पर कुछ साथियों की सोहबत में पड़कर मैं सिगरेट पीने लगा था। पैसों की कमी कभी भाभी ने होने न दी—एक दिन...

"भाभी!...ओ भाभी!"

"क्या बात है?"

"जल्दी से एक सौ का नोट निकालो, जल्दी करो, नहीं तो भैया आ जाएँगे।"

"डरता है भैया से?"

"हाँ, उनसे डर लगता है।" "और मुझसे नहीं?" कहकर वे मुस्कराई।

"अरे तुमसे क्या डरना? भाभी माँ से भी कोई डरता है?" कहकर मैंने उनकी कोली भर ली और उनका एक चुंबन ले लिया। वे मुस्कराकर क्रोध दिखाती बोली, "हट बेशर्म, धींग का धींग हो गया, बचपन नहीं गया अब तक।"

"मेरा बचपन चला गया तो तब तक तुम बूढ़ी न हो जाओगी, फिर कौन बेटा माँ को चूमता है, अच्छा है, यूँ ही बच्चा बना रहूँ।" फिर उन्होंने मुझे सीने से लगा लिया और मेरे सिर पर हाथ फेरती हुई बोली, "चल हट, ले 100 रुपए का नोट।" कहकर मेरे हाथ पर सौ रुपए का नोट रख दिया।"

एक दिन भाभी ने आवाज लगाई, "गौरव! मशीन लगा रही हूँ, कुछ कपड़े हों तो दे दो। मैंने अपनी कमीज पेंट बनियान उन्हें दे दिए। जब वे कपड़े मशीन में डालती थीं तो पेंट कमीजों की जेबें देख लिया करती थीं। उन्होंने मेरी कमीज की जेब में हाथ डाला, बड़बड़ाई, "यह भी नहीं होता उससे कि अपनी जेब देख लिया करे, देख ये क्या है?' जेब में सिगरेट का पैकेट था, उसे देखकर वे वहीं कटी पतंग की तरह लहराती हुई-सी जमीन पर गिर पड़ीं और माथा पकड़कर बैठ गईं..."गौरव और सिगरेट"—वे चिल्लाईं, "गौरव!" "हाँ, भाभी?" "ये क्या है?", मुझे पैकेट दिखाते हुए वे लगभग चीखी।

"ये, ये..." और मैं चुप। "बोलता क्यों नहीं, क्या है ये?" कहकर मेरे मुँह पर एक जोर का तमाचा मारा...और फिर जैसे पछाड़ खाकर गिर पड़ी हों और फफक-फफककर रो पड़ी। काफी देर बाद वे चुप हुई, अपने आँसू पोंछते हुए प्रकृतस्थ हुई और कुछ सोचती-सी मुझसे बोली, "गौरव! सॉरी, आई एम रीयली वेरी सॉरी, मैंने तुम्हें थप्पड़ मारा...अब कभी नहीं मारूँगी! मारने का मेरा हक खत्म हुआ। थोड़ी देर मौन रहकर वे बोली, "अपने भैया से मत कहना, मैं तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ।" उन्होंने हाथ

जोड़ते हुए मेरी ओर कातर दृष्टि से देखा।

मैं काष्ठ मूर्ति बना खड़ा रहा, बहुत कुछ बोलना चाहता था, पर मुँह से शब्द नहीं फूटे अपनी सफाई में, मैं कुछ कह भी नहीं सकता था, क्योंकि वह सब झूठ होता, मैंने सिगरेट पीनी शुरू कर दी थी। बस इतना ही कह पाया था, "सॉरी भाभी माँ!" "खबरदार मुझे माँ कहा तो", आँखें फाड़, मेरी और अँगुली उठाते हुए वे सिंहनी-सी गरजी। मैं चुपचाप मुँह नीचा किए खड़ा रहा। वे बड़बड़ा उठी, "माँ कहता है मुझे...तेरी पहली माँ को तो परमात्मा ने मार दिया था, दूसरी का तूने गला घोंट दिया, जीते जी मार दिया मुझे। वे तो मुक्त हो गई थी पर मैं तो मरकर भी जिंदा हूँ, एक प्रेतनी बन गई हूँ, अब भटकते-भटकते ही मर जाऊँगी किसी दिन।" वे मौन हो गई, थोड़ी देर बाद बोली, "मेरी आपसे रिक्वेस्ट है, मुझे फिर कभी, भूलकर भी माँ न कहना, बस अब मेरा तुम्हारा दिखावे का एक सामाजिक संबंध रह गया है, देवर भाभी का।"

भाभी ने मुझसे बोलचाल बंद कर दी, दिन में दो बार ही वे मुझे आवाज लगाती थी, "गौरव नाश्ता तैयार है, गौरव खाना तैयार है, गौरव कपड़े हों तो दे दो।" भाभी मेरे कमरे में आती और मेरी मेज पर सौ रुपए का नोट रखते हुए कहती, "और जरूरत हो तो बोल देना।" एक दिन मैंने कहा, "जब आप मुझसे कोई संबंध ही रखना नहीं चाहती तो रुपए क्यों देती हैं?"

"इसलिए कि एक ऐब के साथ, तुम दूसरे ऐब के शिकार न हो जाओ, चोरी न करने लगो। सिगरेट की तलब बुझाने के लिए तुम्हें पैसों की जरूरत पड़ेगी, पैसे न मिलने पर तुम चोरी करने लगोगे, और मैं नहीं चाहती कि तुम चोर भी बन जाओ।"

"आपकी बला से, मैं चोर बनूँ या डाकू!"

इस पर वे बोली, "सिर्फ इंसानियत के नाते, मैं नहीं चाहती कि कोई भी नव युवक किसी ऐब का शिकार होकर अपनी प्रतिभा को कुंठित करे, तुम मेरे लिए एक इंसान से अधिक कुछ नहीं।" कहकर वे चली गई।

मैं काफी परेशान रहा, और सिगरेट न पीने का संकल्प कर लिया। एक दिन मुझसे रहा नहीं गया, मैं देख रहा था कि भाभी का स्वास्थ्य गिरता जा रहा था, वे पीली पड़ती जा रही थी, हर समय उदास रहती

थी, जैसे उनके भीतर एक झंझावात चल रहा हो। भैया ने भी कई बार कहा था सुमित्रा, क्या तबियत खराब है? वे हँसकर टाल जाया करती थी, उनकी बनावटी हँसी से मैं दहल उठता था। एक दिन वे कमरे में आई, मेज पर सौ का नोट रखते हुए बोली, "और चाहिए तो बोल देना।" जैसे ही वे बाहर जाने को हुई, मैंने उनका हाथ पकड़ा और कहा, "भाभी!" उन्होंने झटके से हाथ खींच लिया, बोली, "मत कहो मुझे भाभी, उसे मरे तो काफी दिन हो गए।"

"माफ नहीं करोगी।"

"माफी?...माफ तो अपनो को किया जाता है, गैरों को कैसी माफी? रोजाना इतने जुर्म होते हैं, क्या सभी को माफी देने का ठेका मैंने ले रखा है, मैं कोई जज हूँ जो अपराधी की अपील को सुनकर उसे माफ कर दूँ।"

"क्या सौमित्र के साथ भी ऐसा ही बर्ताव करती?"

"अरे उसे तो एक ही शब्द कहती, 'गेट आउट ऑफ द हाउस'।"

"फिर मुझे क्यों नहीं कहा?"

"तुम मेरे पेट के जाए जो नहीं।"

"करैक्ट!...यही मैं सुनना चाहता था, मैं तुम्हारा दिखावे का बेटा था, आत्म-ग्रह्य, आत्मज नहीं...मतलब सगे और पराए में अंतर बना ही रहता है। मैं पराया हूँ, मैंने भूल की जो आपको अपना समझा, ठीक है, अब मेरा आपका वास्तव में कोई रिश्ता नहीं, अब के बाद आप मेरी सूरत नहीं देखेंगी...बस गुड बाय!" कहकर मैं किताब के पन्ने, पलट-पलटकर, पढ़ने का बहाना करने लगा। मैं आत्म-ग्लानि के भँवर में फँसा था, अपराध तो मुझसे हुआ था, इतना बड़ा विश्वासघात? मेरे नेत्रों से आँसू टपकने लगे, मैंने निर्णय किया कि मैं घर छोड़कर चला जाऊँगा, जब माँ बाप ही नहीं रहे तो भैया भाभी पर कैसा अधिकार?

अगले दिन भैया ऑफिस चले गए तो मैंने अपनी पुस्तकें कुछ कपड़े अटैची में रखे और घर छोड़कर निकल जाने को तैयार हुआ। कदाचित् भाभी ने देख लिया था कि मैं अटैची लगा रहा हूँ। वे कमरे में आई, "ये क्या हो रहा है? कहीं जाने की तैयारी है?"

"हाँ, आपका घर छोड़कर जा रहा हूँ।"

"घर आपका भी है, मेरा ही नहीं, इसके आधे के मालिक हैं आप,

आप घर छोड़कर क्यूँ जाएँगे, घर छोड़कर तो मुझे जाना चाहिए, क्योंकि असली कसूरवार तो मैं हूँ, आपके भैया के लाख मना करने पर भी मैंने आपको, ऐबी बना दिया है आपके पतन की दोशी मैं ही हूँ, सुनिए महाशय, आप कहीं नहीं जाएँगे, जाना ही होगा तो मैं जाऊँगी।'' कहकर उन्होंने अटैची से मेरे कपड़े निकालकर हैंगर में डाल अलमारी में लटका दिए और पुस्तकें मेज पर लगा दीं।

''किस अधिकार से आप मुझे रोक रही हैं?'' मैंने कहा।

''अधिकार की बात मत कीजिए, मैं नहीं जानती कि अधिकार किसे कहते हैं, बस आप कहीं नहीं जाएँगे, कह दिया सो कह दिया, कोई मेरी बात तो टाले, मुझे बर्दाश्त नहीं।''

''सौमित्र, राघव की हुक्मउदीली तो आप बरदाश्त कर लेंगी।'' सुनते ही उन्होंने मेरे मुँह पर तड़ातड़ चाँटे बरसाने शुरू कर दिए, बदहवासों की तरह, सौमित्र...राघव, सौमित्र राघव, चीखती जाती थी, और मेरे मुँह पर थप्पड़ पर थप्पड़ मारे चली जा रही थी, मैं हाथ पीछे बाँधे मूर्तिवत् खड़ा खड़ा उनके थप्पड़ खाता रहा और मैंने उनकी कोली भर ली और उनके मुँह को दोनों हथेलियों के बीच लेकर, उनसे आँखें मिलाते हुए कहा, ''माँ मुझे माफ कर दे, मैंने तो कभी की सिगरेट पीनी छोड़ दी है, देखो ये रहे सारे रुपए।'' और मैंने अपने बैड के नीचे रखे सौ-सौ के नोटों की ओर इशारा किया, मैं फफक-फफककर रो पड़ा, वे सुबक रही थी.. और उन्होंने मुझे कसकर अपनी छाती से चिपका लिया, कुछ देर वे यूँ ही खड़ी रही, फिर प्रकृतस्थ होकर साड़ी के पल्लू से अपने आँसू पोंछते हुए मुझसे बोली, ''ठीक है, मैं एक बार फिर विश्वास कर लेती हूँ।'' कहकर वे जाने लगी। मैंने बाएँ हाथ से उनका हाथ पकड़कर उन्हें रोका और अपना दायाँ हाथ उनके सिर पर रखकर बोला, ''तुम्हारी सौगंध भाभी माँ, अब कोई गलती नहीं करूँगा।'' ''ठीक है, ठीक है'' कहकर वे चली गई थी।''

और यह उसी का फल है बेला कि मैं आज इस रूप में तुम्हारे सामने हूँ। बेला बोली, ''खैर छोड़िए, अब बड़े हुए तो क्या हुए, हैं तो आप एक्स ऐबी!'' और मुस्कराते हुए जाते-जाते कह गई, ''आप आज ही चले जाइए भाभी से मिलने।''

''तुम भी चलो।'' ''नहीं, शायद वे तुमसे कोई प्रायवेट बात करना

चाहती हों, मेरी उपस्थिति शायद उन्हें अच्छी न लगे। आप अकेले ही जाइए।''

''ठीक है, मैं अकेला ही जाता हूँ, ड्राइवर को आज छुट्टी दे दो।''

उस पर बेला बोली, ''उसे भी साथ ले जाते तो क्या बुराई थी, कोई साथ में हो तो अच्छा है।''

''अरी, ये रहा आगरा, दो ढाई घंटे का ही तो सफर है।''

थोड़ी देर बाद तैयार होकर मैं आगरा के लिए निकल पड़ा और तीन बजे के आसपास आगरा पहुँच गया। कोठी के गेट में घुसते ही देखा कि भाभी सामने ही लॉन में कुर्सी डाले बैठी हैं। मुझे देखते ही वे खिल उठीं, ''आ गए गौरव!'' ''हाँ भाभी'' कहते हुए मैंने उन्हें प्रणाम किया।

''अकेले ही आए हो, बेला को भी ले आते।''

मैंने कहा, ''उसे कुछ जरूरी काम था, बस मैं जल्दी में चला आया कि ऐसी क्या बात है जो आपने बुलाया है और कारण भी नहीं बताया, सब ठीक तो है?''

''हाँ यहाँ सब ठीक-ठाक हैं, कोई खास बात नहीं।''

''बात तो कुछ जरूर है भाभी, वरना आप इतनी जल्दी फोन छोड़ने वाली कहाँ थीं? बताइए क्या बात है?'' ''अरे दम तो ले, चाय पानी पी, फिर बैठकर आराम से बातें करेंगे।'' कहकर भाभी ने नौकर को आवाज लगाई, ''अरे रामू!'' रामू भागता हुआ आया और बोला, ''जी बीबी जी?'' ''जा दो चाय ले आ।'' और रामू ने दो गिलास पानी, चाय की ट्रे लाकर रख दी।

''ले पहले पानी पी ले, फिर चाय पीना।'' मैंने गिलास उठाया और पानी पीकर चाय का प्याला उठा लिया।

चाय पीते पीते मैंने पूछा, ''कैसी हो भाभी?''

''यूँ तो सब ठीक-ठाक है गौरव, पर यहाँ, अब मन नहीं लगता, मुझे अपने साथ दिल्ली ले चल।'' ''इसमें क्या मुझे किसी की परमीशन लेनी होगी, जब चाहे चलिए।'' मैंने कहा।

''हाँ परमीशन लेनी होगी, बेला की।'' वे बोली।

''कैसी बात करती हो भाभी, आपको साथ ले चलने के लिए बेला की परमीशन? बेला कौन होती है, परमीशन देने वाली? नहीं भाभी, नहीं, अपने इस बेटे पर तुम्हें कितना अधिकार है, यह भी मुझे ही बताना

पड़ेगा? पर बात तो बताओ....क्या बात है? सौमित्र, राघव, दोनों बहुएँ क्या नाराज चल रहे हैं? क्या बात है, किसी ने कुछ कहा है आपसे?''

''मुझे कुछ कहने की हिम्मत कौन करेगा? नहीं ऐसी कोई बात नहीं, बस मन नहीं लगता, यहाँ अब मेरा दम-सा घुटता है।'' कहकर वे कुछ उदास-सी हो गई।

''भाभी, साफ-साफ बताओ ना? कुछ बात तो जरूर है।''

''समझो तो बहुत कुछ है, न समझो, तो कुछ भी नहीं। बस यूँ समझ ले, बहू बेटों के रंग ढंग मुझे अच्छे नहीं लगते, मुझे लगता है ये बहुएँ, तुम्हारे भैया की इज्जत खाक में मिलाने पर तुली हुई हैं, इनकी चाल-ढाल, इनका रंग-ढंग, इनका लाइफ स्टाइल मुझे बिल्कुल पसंद नहीं।''

मुझे इसके अतिरिक्त कोई अन्य कारण नहीं दिखाई दे रहा था, भाभी की परेशानी का। मैं पहले ही जानता था, हो-न-हो वही सास-बहू का, माँ बेटे का, पारंपरिक तनाव है। थोड़ी देर बाद भाभी फिर बोली, ''गौरव! अब सहन नहीं होती मुझसे बहुओं की यह चाल-ढाल...सौमित्र, राघव तो जोरू के पक्के गुलाम बन गए हैं, दब्बू कहीं के, उनके ही रंग में रंग गए हैं, जन्म से जवानी तक चढ़ा हुआ माँ का रंग इतना कच्चा पड़ गया कि बहुओं के आते ही उतर गया, मुझे लगता है अब इन पर चढ़े न दूजो रंग। अरे ऐसे होते हैं पुरुष कि पत्नी सर पर चढ़कर नाचें और वे हीजड़ों की तरह हथेलियाँ पटकाकर ताक धिना-धिन, करते रहें? अरे हम भी तो थे, इनसे बड़े ही खानदान की थी, पढ़ी-लिखी भी इनसे कम नहीं हूँ, इनसे हर बात में आगे हूँ, चलो और कुछ न सही, इनकी सास तो हूँ, यह सब कुछ मेरा ही तो है, फिर भी...?'' कहकर भाभी चुप हो गई।

मैंने कहा, ''भाभी! मैं समझ तो रहा हूँ, पर यह भी जानता हूँ भाभी, मेरे कहे को उपदेश मत समझना, यह भी मत समझना कि मैं तुम्हें बोझ समझकर टालना चाहता हूँ, मैं मानता हूँ भाभी कि तुम प्रसन्न नहीं हो, परेशान हो, पर क्या तुम सुख खोजने का अपना एंगिल नहीं बदल सकतीं?''

''मतलब?''

''मतलब यह कि भाभी, सुख तो हमारे चारों ओर बिखरा पड़ा है,

उसे बीनने और सँजोकर रखने का ढंग बदल दो तो तुम्हारी झोली में सुख ही सुख होंगे, यानि कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम्हें अपने चारों ओर बिखरे हुए छोटे-छोटे कण एंलार्ज्ड होकर बड़े-बड़े दिखाई देते हैं और सुख-कण उनके बीच ही दबकर रह जाते हों? स्पष्ट कहूँ, कहीं ऐसा तो नहीं कि तुम्हारी रुचि, बेटे बहुओं के दोष ढूँढ़ने तक ही, सीमित हो गई हो, अच्छाई देखने की इच्छा ही नहीं हो?''

''अरे तू तो मुझे उपदेश ही देने बैठ गया।'' इतना ही कह पाई थी कि मैं बोल उठा, ''देखो भाभी, मुझे तुमसे यह आशा कदापि नहीं कि तुम अपने गौरव को उपदेश झाड़ने वाला समझोगी, मैंने कभी आपसे कुछ नहीं छिपाया, अपने मन की बात सदा ही साफ-साफ करता रहा हूँ, आज भी मैं तुम्हें उसी रूप में अपने मन की बात कह रहा हूँ, जरूरी तो नहीं कि मेरे मन में आई हर बात सही हो, मैं गलत भी हो सकता हूँ, बिना किसी लाग-लपेट के मैंने अपने मन की बात आपसे कह दी, आप प्लीज अन्यथा न लें।''

इस पर वे बोली, ''तू बता गौरव! बहुएँ जीन्स पहनकर बाहर निकलें, यह छोटा दोष कण है जो मुझे एंलार्ज्ड होकर दिखाई दे रहा है?'' मैंने कहा, ''बड़े भैया की बड़ी बेटी एम.ए. कर रही है, कालेज जींस पहनकर जाती है या नहीं?''

''जाती तो है, पर वह तो बेटी है।''

''बस यही तो गड़बड़ है भाभी, बहुएँ क्या तुम्हारी बेटी नहीं?''

''जो कुछ भी हो, पर बेटी बहू में अंतर तो रहता ही है, बहुएँ बड़े-बूढ़ों का इतना भी लिहाज न करें कि उन्हें देखकर तिनके की ओट जितना पर्दा कर लें? ''

''और बेटी भले ही नौजवान लड़कों के साथ बेलिहाज घूमती फिरे?'' मैंने कहा, ''यह तो भाभी एक कोल्डवार है, न जाने कब से चली आ रही है, इसका अंत होता नजर नहीं आता—सास, माँ नहीं बन सकती और बहू, बेटी।'' इसमें मैं आपको दोषी नहीं ठहराता, कदाचित् आप ठीक कह रही हैं।'' मैंने मन ही मन सोचा कि कहीं मैं यह भाभी के डर से तो नहीं कह गया। पर मैं डर जरूर रहा था कि वे मेरी बात को अन्यथा न ले लें। और वही हुआ, वे बोली, ''अरे तू तो वाकई मुझे उपदेश झाड़ने लगा, लगता है अब तू बड़ा हो गया है, मुझे उपदेश देने लगा।''

"वही हुआ ना भाभी जिसका मुझे अंदेशा था, निश्छल बात मैंने आपसे कही तो आप बुरा मान गईं, आय एम सॉरी, सोचता हूँ आप ठीक हैं—एक दिन में ही बेटा, माँ का न होकर बहू का हो जाए, तो गलत तो है ही।" और मैं चुप हो गया। अपनी बात को पानी देती हुई वे बोली, "क्या मैं इतनी ना समझ हूं कि यह भी नहीं जानती कि दो दूनी चार होते हैं, पाँच नहीं? मुझे क्या एकदम बेवकूफ समझ रखा है? तू यह बता कि जब बहू के चेहरे पर सास यह लिखा पढ़ ले कि 'इस बुढ़िया ने तो हमारा जीना हराम कर दिया, हमारी सारी प्रायवेसी पर बंदूक ताने सिपाही की तरह पहरा देती रहती है...' तो कौन बर्दाश्त कर लेगा? इसका अर्थ क्या है? बता कोई दूसरा अर्थ हो सकता है इसका? इसे अपराध न मानूँ? क्या यह मेरा अपमान नहीं? दब्बुओं की तरह इस कान से सुन उस कान से निकालती रहूँ, क्या मैं उनके खसमों का दिया खाती हूँ?...क्या लाई थीं वे अपने घर से? हमने दहेज के नाम पर छदाम भी लिया? कौन-सा ऐसा शौक है इनका जो मैंने पूरा नहीं किया? अरे हमारी सुहागरात तो घर में ही मनी थी, पर मैंने एक को ऊटी भेजा दूसरी को गोवा, कौन कसर उठा रखी है मैंने इनके अरमानों को पूरा करने में? और आते ही बेटों की खसम बन बैठी।" मैंने भाभी की प्रश्न-बौछारों पर एकदम छाता-सा तानते हुए कहा, "छोड़ो भी भाभी, ये सब मुझे क्या बता रही हो, मैं नहीं जानता? नया नया जोश है, बच्चे ही तो हैं सब, इन्हें दीन दुनिया की क्या खबर?"

"अरे सुगृहणियों के कुछ तौर तरीके होते हैं कि नहीं?—सुबह आठ बजे तक पड़े सोते रहो, नौकर चाय लेकर पहुँचे तो महारानी बिस्तर पर ही चाय पीती है। सुबह उठकर न भगवान का नाम , न किसी को नमस्कार प्रणाम, उठो और कुत्ते बिल्लियों की तरह टूट पड़ो चाय के प्याले पर...अपने मजनुओं के साथ मेरे सामने मटक-मटककर निर्लज्ज की तरह बातें करती हैं, बेटों पर ऐसा हक जमाती हैं जैसे अपने बाप के यहाँ से लाई हुई कोई जायदाद हो—हुकुम चलाती हैं—नाम लेकर पुकारती हैं—अरे सौमित्र सुनो तो...अरे राघव तुमने यह काम नहीं किया, कितनी बार कहना पड़ेगा यार, तुम समझते क्यों नहीं? खसम को यार कहती है, काम पूरा क्यों नहीं किया, इसका एक्सप्लेनेशन माँगती हैं—यह तमीज है पति से बात करने की? अब तू कहेगा गौरव! कि 'भाभी पति को पति मानने का जमाना गया', अरे पति को पति न माने तो क्या बाप माने, भाई माने

या बेटा माने? क्या माने?''

''भाभी, पति को दोस्त भी तो माना जा सकता है।'' कहकर मैंने भाभी की प्रतिक्रिया को परखने की कोशिश की।

''ठीक है गौरव! तुझे भी मुझमें ही बुराई नजर आई।''

''फिर गलत समझ रही हो, भाभी! मेरा आशय यह नहीं है। मैं तो इतना जानता हूँ भाभी कि बहू-बेटों में किसी की हिम्मत नहीं जो आपका अपमान कर सके। यदि कोई आपका अपमान होता है तो क्या मैं बर्दाश्त कर लूँगा? बस मेरा तो यही कहना है कि चीजों को देखने के अपने एंगिल को बदलकर देखो, फिर देखो कि कुछ अच्छा नजर आता है कि नहीं?'' इतने में ही सौमित्र आ गया।

''चाचाजी प्रणाम।'' झुककर उसने मेरे पैर छुए।

''आशीर्वाद, खुश रहो बेटा, ठीक हो?''

''जी चाचाजी, सब प्रभु कृपा है।''

''तुम्हारा काम धाम?''

''सब बढ़िया है, राघव भी साथ ही है, हम दोनों भाई मिल-जुलकर हँसी-खुशी अपने काम को बढ़ाते जा रहे हैं।''

''अच्छा चाचाजी, मैं अभी आता हूँ, जरा फ्रेश हो लूँ।'' कहकर सौमित्र उठकर चला गया।

संध्या हो चली थी, भाभी मुझे भीतर ड्राइंग रूम में ले गई। मैं ड्राइंग रूम में जाकर बैठा ही था कि दोनों बहुएँ, बाहर से आई थीं, मुझे देखकर, दोनों मेरे पास आईं और दोनों ने मेरे चरण छुए। बड़ी बोली, ''कितनी देर हो गई चाचा जी आए हुए। चाची नहीं आईं?''

''बस जस्ट, अभी आकर बैठा हूँ। उन्हें कुछ काम था। कैसी हो तुम लोग?''

''वी आर फाइन।'' कहकर बड़ी मुस्करा पड़ी। छोटी ने भी मुस्कान छिड़काई और बोली, ''चाचाजी, सब कुशल मंगल?''

''हाँ बेटा, सब ठीक है, जाओ तुम लोग, थक गई होंगी।''

बड़ी बोली, ''सॉरी चाचाजी, हमें पता होता कि आप आने वाले हैं तो...'' कहकर आशीर्वाद लेकर वे भीतर चली गईं। भाभी बोली, ''गौरव, जबसे आया है यूँ ही कसा हुआ बैठा है, जा हाथ मुँह धोकर कपड़े बदल ले, डिनर का समय हो रहा है।''

भाभी के साथ मैं, और चारों बहू-बेटे डिनर टेबिल पर बैठ गए, लगभग आधे घंटे में डिनर समाप्त हो गया। मैंने रामू से कहा, "रामू! एक-एक प्याला चाय तो बना ला। थोड़ी देर में ही रामू ने टेबिल पर चाय रख दी। मैंने उससे कहा, "रामू अब तू घर जा, कल प्रातः जल्दी आ जाना।" रामू ने नमस्ते की और चला गया।

चाय पीते-पीते मैंने, उन चारों को डाँटना शुरू किया, "क्यों भई, आप चारों, भाभी का बोझ उठाते-उठाते थक गए हो क्या?" सभी एकदम चौंक पड़े, मानो अचानक बिजली कड़क पड़ी हो। सौमित्र बोला, "क्या मतलब चाचाजी? हम समझे नहीं, हम उठाएँगे माँ का बोझ?" "हाँ मुझे ऐसा ही लगता है।" मैंने थोड़ा उत्तेजित स्वर में कहा। इस पर सौमित्र कुछ आहत-सा बोला, "बोझ तो अकेली ये उठा रही हैं हम सबका, हम कौन होते हैं इनका बोझ उठाने वाले? माँ के कारण ही तो इस समाज में हमारी एक अलग पहचान बनी है, सभी एक स्वर से कहते हैं, 'बच्चों का निर्माण करना तो कोई सुमित्रा से सीखे, कितने गुणी, सुशील, सभ्य और होनहार बच्चे हैं? पिता जी का नाम कोई नहीं लेता, आज जो हम राजा बने फिर रहे हैं, माँ की ही बदौलत तो हैं।" इतने में ही राघव बोला, "क्या माँ ने कुछ कहा है आपसे?"

मैं बोला, "क्यूँ, भाभी तुम्हारी शिकायत क्या मुझसे करेंगी? क्या उन्हें तुमने इतना कमजोर समझा है कि वे तुम्हें ठीक करने के लिए, मेरी सहायता माँगेंगी? वे तुम्हें तो तुम्हें, मुझे भी ठीक कर सकती हैं।" कहकर मैं रुक गया और मेरे चेहरे पर एक रोष उभर आया।

सौमित्र बोला, "चाचाजी, क्या मुझे इसका प्रमाण देना पड़ेगा कि इस घर में, माँ की इजाजत के बिना परिंदा भी पर नहीं मार सकता?"

इस पर मैंने कहा, "आगे भी उन्हीं का हुकुम चलेगा, वे इस घर की मालिक हैं, उन्हीं की इजाजत से सब कुछ होगा।"

"हम कब इससे इंकार करते हैं चाचाजी" इस बार राघव बोला।

"और सुन लो बहुओं।" मैंने कहना शुरू किया, "सब लोग अच्छी तरह समझ लो, अगर तुममें से कोई भी दाएँ-बाएँ चला तो ये तो बाद में कहेंगी तुमसे, पहले मैं ही तुम सबको 'गेट आउट' कहते हुए यह कह दूँगा, कि तुमने जो कुछ कमाया है, उसे उठाओ और अपनी-अपनी पत्नी की अंगुली पकड़ दफा हो जाओ इस घर से, समझ क्या रखा है तुम लोगों

ने? न बड़े की शर्म न छोटे की लिहाज, कुल की कुछ परंपरा होती है, उनका पालन करते तुम्हें शर्म आती है, बेशर्मों की तरह माँ के सामने नंगा नाच नाचकर उन्हें नीचा दिखाना चाहते हो, समाज में उन्होंने जो प्रतिष्ठा बनाई हुई है, उसे मिट्टी में मिला देना चाहते हो।''

''ऐसा कैसे हो सकता है चाचाजी, आखिर बात क्या है?'' सौमित्र ने पूछा।

''बात कुछ नहीं बेटा! मैं समझता हूँ तुम चारों के भीतर इतनी अक्ल जरूर है कि यह पहचान सको कि माँ को क्या अच्छा लगता है, क्या बुरा, इतना भी त्याग नहीं कर सकते तुम अपनी जननी के लिए कि कोई ऐसा काम न करो जिससे उन्हें पीड़ा पहुँचे। मैं समझता हूँ तुम लोगों में त्याग-भावना है ही नहीं, स्वार्थी हो तुम सब लोग, एक बार आँख बंद कर यह तो सोच लिया करो कि यह माँ न होती तो तुम क्या होते? यह भी अपने ऐश-ओ-आराम के लिए मनमानी करती तो तुम लोग क्या होते? बस इससे अधिक मैं कुछ नहीं कहूँगा?'' कहकर मैं शांत हो गया।

कुछ देर शांत होकर मैंने भाभी से कहा, ''भाभी! कल सुबह यहाँ से हम दिल्ली के लिए निकल लेंगे, मुझे आपकी जरूरत है, आपके प्यार और आशीर्वाद की जरूरत है, अब आप मेरे साथ रहेंगी, जब इन लोगों का मन करे, ये मिलने आ जाया करेंगे, जब आपका मन करे, आप यहाँ आ जाना इन दुष्टों को देखने, यह आपका घर है।''

अगली प्रातः मैं भाभी को लेकर दिल्ली आ गया, बेटे-बहुओं ने बहुत विनती की, याचना की कि माँ मत जाओ, पर मैं उन्हें यह कहकर ले आया कि मेरा घर भी उनका उतना ही अपना घर है।

भाभी को दिल्ली आए हुए पंद्रह दिन बीत गए। मैं माइन्यूटली परख रहा था उनके चेहरे को। मैंने महसूस किया कि उनके चेहरे की उत्फुल्लता का ग्राफ दिन-प्रतिदिन गिरता और उदासी का बढ़ता चला जा रहा है। मैंने बेला से पूछा, ''लगता है भाभी की मुख कांति कुछ फीकी पड़ने लगी है, क्या तुम भी ऐसा ही सोचती हो बेला?''

''हाँ लगता तो मुझे भी कुछ ऐसा ही है।''

''आखिर क्यों?''

''कह नहीं सकती गौरव! पर मैं सतर्क हूँ कि कोई भी ऐसा काम न करूँ जो उन्हें बुरा लगे, कई बार उनके सामने मेरे मुँह से 'गौरव'

निकलते-निकलते बचा है, मैं जो कुछ भी करती हूँ, सोच लेती हूँ कि उन्हें बुरा तो नहीं लगेगा—उनके उठने से पहले सोकर उठ जाती हूँ, उनके उठते ही, उनके पास जाकर उन्हें चरणस्पर्श करती हूँ, उनके पास बैठकर उनकी कमर सहलाती हूँ, पूछती हूँ, "भाभी, नींद ठीक से आई?" "हाँ बहू बहुत अच्छे से आई।"

"चाय ले आऊँ भाभी?" "अभी ठहर जा जरा फ्रेश हो लूँ।"

"रात को जब वे कई बार कहती हैं कि अरी उठ, जा, देख गौरव तेरे इंतजार में जाग रहा होगा, जा अब छोड़ मुझे, कब तक मेरे पैर दबाती रहेगी।" तब कहीं रात को उनके पास से आती हूँ। आज सुबह थोड़ी देर उनके पलंग पर बैठी ही थी तो बोली, "अरी उठ, यहाँ बैठी क्या पान चीर रही है, जा उठकर गौरव को चाय दे, उठा उसे, सूरज सिर पर चढ़ आया है, यूँ कब तक पड़ा सोता रहेगा आलसियों की तरह?"

"वे तो भाभी नहा धो भी लिए, पूजा कर रहे हैं।" इतना सुनते ही वे आँखें फाड़कर देखने लगीं, "अच्छा?" "हाँ भाभी।"

इतने में ही मैं पहुँच जाता हूँ। भाभी के चरणस्पर्श करता हूँ, भाभी आशीर्वाद देती हुई पूछती हैं, "अरे गौरव! आज सूरज पश्चिम से कैसे निकल आया?"

"मतलब?" "मतलब यह कि गौरव इतनी सबेरे पूजा भी कर चुका? मैं भूल गई क्या, गौरव सुबह कान पकड़कर उठाने से उठता था और आँखें बंद किए किए ही चाय का प्याला हाथ में पकड़ लिया करता था और आज वही गौरव...?"

"सच्ची पूछो भाभी! कान पकड़कर उठाने वाली तो चली गई, और कोई ऐसा है नहीं जो कान पकड़कर उठाने की हिम्मत करे?" "बेला नहीं है?" वे बोली।

भाभी के इतना कहते ही बेला बोली, "भाभी मैं? इनके कान पकड़ूँ? मेरी तो रूह काँपती है इनके गुस्से से, हर वक्त डरी-डरी रहती हूँ, मैं तो इनके डर के मारे आपसे इनकी शिकायत भी नहीं कर सकती। ये बस डरते हैं तो आपसे, इसीलिए मैं भी इनसे डरती रहती हूँ।" कहकर बेला चुप हो गई।

फिर मैं बोला, "सच पूछो भाभी, आपकी अनुपस्थिति, आपकी उपस्थिति से ज्यादा महसूस होती है, हर समय यही लगता है भाभी कि

आप छुपकर देख रही हैं, सावधान रहता हूँ कि आपको कुछ बुरा न लग जाए।'' इस पर बेला बोली, ''सच भाभी, मैं तो हर वक्त डरी-डरी रहती हूँ कि कहीं भाभी को बुरा न लग जाए।'' बेला ने अपने दोनों कान पकड़े, ''ना भाभी ना, हमारे लिए पहले आप हैं, हम तो आपके जनम जनम के कर्जदार हें, आपसे तो डरना ही होगा।''

इस पर भाभी ने कहा, ''इतनी चिंता करती हो मेरी, हर वक्त डरती हो मुझसे? तुम्हें भी कुछ अच्छा लगता है, यह नहीं सोचती?''

बेला बोली, ''अपने बारे में तो तब सोचूँ भाभी, जब मुझे आपके बारे में सोचने में कोई कष्ट हो, आपके बारे में सोचने में, आपकी भावनाओं की कद्र करने में ही सुख महसूस करती हूँ मैं तो। मैं जानती हूँ भाभी कि माँ को जब अपने बच्चे के गूमूत तक करने में कोई कष्ट नहीं होता तो, बड़ा होकर उस बच्चे के मन में भी क्यों तकलीफ हो माँ के लिए कुछ करने में?''

''नहीं बेला, यह गलत है, मैं क्या हौवा हूँ, जो तुम मुझसे हर वक्त डरी-डरी-सी रहो, बच्चे अपना मन मारें तो क्या माँ को अच्छा लगेगा? मैं कोई जेलर हूँ? तुम्हें कैदी बनाकर रखने में मुझे सुख मिलेगा? नहीं, नहीं, यह सब नहीं चलेगा, गौरव! तुम भी सुन लो, अपने को मेरा नौकर समझते हो? मैं चाहती हूँ कि मुझ तानाशाह के सामने तुम बाअदब, बा मुलहिजा, पेश आओ? मैं हंटरवाली हूँ? क्या समझ रखा है मुझे? मैं देख रही हूँ कि तुम लोगों ने घर में एक शून्य पर दिया है, शांत, मौन, मरघटी चुप्पी नजर आती है मुझे यहाँ, अरे यह घर किलकारियों से जब गूँजेगा तब गूँजेगा, लेकिन तब तक तो तुम लोग चहकते फुदकते रहो, एक दूसरे की शिकवा-शिकायत करते रहो, तुम कभी एक-दूसरे की शिकायतें तक नहीं करते, अरे छोटों की शिकायतें सुनने और उनका फैसला करने में भी एक सुख होता है, मुझे तुम उससे वंचित रख रहे हो। क्या मैं देख नहीं रही हूँ बेला कि तुम गौरव को कोई टाइम नहीं देती, गौरव साँझ को लौटता है, तुम मुझसे चिपकी बैठी रहती हो, वह चुपचाप आता है, कपड़े बदलकर चुपचाप नौकर से चाय को कह देता है और अकेला अपने कमरे में चाय पी लेता है, मैं देख रही हूँ कि तुम लोग मेरे सामने न खिल-खिलाकर हँसते हो, न एक-दूसरे के साथ अपनत्व की बातें करते हो, मुझे सब कुछ बनावटी लगता है, प्रकृत कुछ भी नहीं लगता—दिखावट क्या

अच्छी लगती है? अरे बहू-बेटे खिलखिलाते अच्छे लगते हैं, तुमने एक बार भी अब तक शिकायत नहीं की "देख लो भाभी! ये मुझे चिड़ा रहे हैं, मुझे तंग कर रहे हैं, ना ही कभी मैंने गौरव को देखा कि वह तुझे डाँट रहा है–"अरे शिकवे शिकायत, ये रूठना मनाना, ये सब तो स्वस्थ जीवन के मिर्च मसाले हैं, ये ना हों तो जीवन स्वादहीन सा बन जाता है। साफ सुन लो, इन्हीं सब कारणों से मैं यहाँ सहज अनुभव नहीं कर रही हूँ, एक घुटन-सी महसूस करती हूँ। मैं देख रही हूँ तुम लोग दब्बू से, सहमे-सहमे से रहते हो, यह सब मेरे भीतर एक अपराध बोध जगाता है, जैसे मैं आतंकी हूँ तुम लोगों के लिए।" कहकर भाभी चुप हो गई। थोड़ी देर रुककर भाभी फिर बोली, "मैं देख रही हूँ मैं किसी नए गौरव के पास आई हूँ, पता नहीं मेरा पुराना गौरव कहाँ खो गया? कहता है भाभी उदास हो? उसे मेरी उदासी तो दिखाई दी, कहाँ गई मेरी वह सुंदरता...भाभी आज तो बहुत सुंदर लग रही हो।"

"तब तो भाभी रुपए ऐंठने होते थे।" "मतलब कि मैं सुंदर नहीं थी?" मुझे धोखा देकर रुपए ठगा करता था?"

"ना भाभी, ना तुम्हारी सौगंध, सुंदर तो तुम अब भी उतनी ही हो, पाला पड़ने से मुरझाए फूल का सौंदर्य खत्म हो जाता है? सौंदर्य है, मन की आँखों में है, मेरी भाभी, अतीव सुंदरी थी, हैं और सदा रहेंगी।" कहकर मैंने उनकी कोली भर ली।

"अरे हट रे! धींग का धींग हो गया, अभी भी मस्ती सूझ रही है, बता कितने रुपए चाहिएँ?" भाभी जैसे सोते से जाग उठी और शर्माती सी अचंभे में बोली, "अरे वैज्ञानिक कविता करने लगा?" हम तीनों खिलखिलाकर हँस पड़े।

"बस ऐसा ही वातावरण चाहिए मुझे घर में–एकदम निर्द्वंद्व, निरातंक वातावरण–उत्फुल्ल, उन्मुक्त।" कहकर भाभी मौन हो गई।

15, 20 दिनों बाद मैंने भाभी से कहा, "भाभी उदास सी लग रही हो, क्या बात है?"

"कुछ खास नहीं, पता नहीं बच्चे कैसे हैं?" भाभी ने कहा।

"ठीक ही होने चाहिएँ, कुछ बात होती तो फोन आ जाता।" मैं बोला।

"लगता है वे परेशान है, नाराज हैं, उस दिन से फोन भी नहीं आया।"

"फोन तो कई बार आ चुका, मैंने तुम्हें बताया नहीं।"

"क्यूँ? मुझे फोन क्यूँ नहीं किया?"

"तुमसे डरते हैं भाभी, कह रहे थे कि पता नहीं मम्मी किस बात पर डाट दे?"

"और अब जो डाँटूँगी कि अपनी खैर-खबर क्यों नहीं दी मुझे?"

"अरी भाभी, क्यूँ चिंता करती हैं, वे अब ज्यादा सुखी होंगे।"

"नहीं रे, सौमित्र राघव दोनों को मैं जानती हूँ, दोनों बहुत प्यार करते हैं मुझे...उनकी याद आ रही है।"

"और बहुओं की नहीं?" मैंने तपाक से कहा। वे बोली, "बहुओं की क्यूँ नहीं आएगी, आखिर बड़े चाव से उन्हें घर में लाई हूँ, उनके सभी अरमान पूरे कर मैंने अपने मन की साध पूरी की है, ओढ़-पहनकर कितनी सुंदर लगती हैं, जब कभी शृंगार कर लेती हैं तो मेरा मन उनकी नजर उतारने को करता है, उन्हें देखकर तो मेरी चाल में एक घमंड उभर आता है। पता है गौरव कभी-कभी तो मैं सारे रिश्तेदारों की बहुओं से उनकी तुलना करने बैठ जाती हूँ कि आस-पड़ौस में, रिश्तेदारों में है कोई जो मेरी बहुओं से अधिक सुंदर हो, मेरी बहुएँ ही टॉप पर होती हैं।" इतने में ही बेला बोल उठी, "और भाभी मैं?" "अरी तू किसी और की पसंद की है क्या, तुझे भी तो मैं ही ठोक बजाकर लाई थी, तू किसी से कम कैसे हो सकती है?" बस बहुएँ छाँटने में मैंने कोई कंप्रोमाइज नहीं किया, मैं दहेज के लोभ में कभी नहीं आई, बस गुण, शील, सौंदर्य के पीछे ही दौड़ी।"

इतने में ही फोन की घंटी बजी, गौरव ने फोन उठाया, "हैलो।" "हैलो, चाचाजी, प्रणाम, सौमित्र बोल रहा हूँ, वहाँ सब ठीक है?"

"हाँ बेटा सब ठीक-ठाक है, और तुम लोग?"

"यहाँ सब कुशल मंगल है, जरा माँ से बात करा दो।"

"हाँ, हाँ", कहकर मैंने भाभी को फोन थमा दिया, "भाभी, सौमित्र का फोन है।"

"हैलो माँ, प्रणाम।"

"सुखी रह, इतने दिनों बाद माँ की याद आई, नालायक! क्यूँ नहीं अभी तक फोन किया?"

"फोन क्या करता, आप कहीं गैर जगह थोड़े ही ना गई थीं, अपने तीसरे बेटे के पास गई थीं, बड़े के पास तुम हो तो क्या हालचाल पूछता?

यूँ मैं उनसे बातचीत करता रहता था। हाँ माँ, इसलिए फोन किया है कि डॉ. चोपड़ा की लड़की की शादी है अभी परसों ही, वे कह रहे थे कि सौमित्र तुम्हारी माताजी को जरूर आना है। आप आ जाइए--कहिए तो मैं लेने आ जाऊँ? पूछ लीजिए चाचाजी से।''

भाभी मुझसे बोली, ''अरे गौरव, सौमित्र बुला रहा है कि डॉ. चोपड़ा की लड़की की शादी है आ जाएँ, मुझे जाना चाहिए, डॉ. चोपड़ा हमारे फैमिली डॉक्टर हैं, उनसे बिल्कुल घर कैसे संबंध हैं, सौमित्र पूछ रहा है कि मैं लेने आ जाऊँ?''

मैंने कहा, ''नहीं भाभी, वह क्या करेगा आकर, कल शनिवार है, मेरी छुट्टी है, मैं छोड़ आऊँगा आपको।''

मैं भाभी को शनिवार की प्रातः आगरा छोड़ संध्या को ही वापस दिल्ली लौट आया।

भाभी के आदेशानुसार, दोनों बहुएँ डॉ. चोपड़ा की लड़की की शादी के लिए सज-धजकर तैयार हो गईं। भाभी ने आदेश दिया,

''अरी बड़की, छुटकी जल्दी करो, बारात आने का समय हो चला है।'' दोनों बहुओं ने साड़ी, गहने पहने, शृंगार किया और सिर पर साड़ी का पल्लू रखे, आकर भाभी के सामने खड़ी हो गईं, और बोलीं, ''चलिए मम्मीजी, हम तैयार है।''

बेंकट हाल की सजावट से आँखें चौंधिया रही थीं। ऐसा लगता था मानो बच्चों से लेकर बड़े-बूढ़ों, लड़के-लड़कियों, नवयौवनाओं, नव युवकों, सभी नर-नारियों की कोई सौंदर्य प्रतियोगिता हो, नवयुवतियाँ, बहुएँ खास तौर से लग रहा था, जैसे केटवाक कर रही हों, बच्चे उछल-कूद रहे थे। सभी की नजर वहाँ की सभी बहुओं पर थी, पर पता ही नहीं लग रहा था कि कौन बहू है, कौन बेटी, हाथ में चूड़ा पहने कोई नववधू तो पहचानी जा सकतीथी। अधिकतर बहुएँ लड़कियाँ घाघरा पहने थीं जो फर्श पर घिसटते, पोंछा-सा लगाते से प्रतीत हो रहे थे। कुछ स्त्रियाँ साड़ी पहने थीं, सभी नंगे सिर, मात्र छोटा-सा ब्लाउज पहने थी। चुन्नी शायद ही किसी के सिर पर हो, यदि किसी के पास चुन्नी थी भी तो वह एक कंधे पर लटकी तह की हुई, मात्र कंधे की शोभा बढ़ा रही थी। भाभी की दोनों बहुएँ, जरी की भारी कीमती साड़ी, पहने थीं, सिर पर साड़ी का पल्लू ढके थीं। भाभी को लगा जैसे मेरी बहुएँ सबसे अलग-थलग-सी लग

रही हैं, बड़ी अजीब-सी दिखाई पड़ रही हैं, भाभी ने सोचा, इतने प्यारे लंबे, घने काले बालों का जूड़ा बनाया हुआ है बहुओं ने...क्या फायदा? सिर ढका हुआ है।''

भाभी को बहुओं का यह रंग-ढंग कुछ जँचा नहीं, इतनी कौस्टली साड़ी पहने हुए हैं बहुएँ कि किसी के पास ऐसी नहीं, लेकिन जो चीप तो नहीं कहनी चाहिए, पर अपेक्षाकृत सस्ती हैं, उनमें जो बात नजर आती है, वह मेरी बहुओं के परिधान में नहीं। भाभी सारे समारोह का माइन्यूटली निरीक्षण कर रही थीं, सबके हाव-भाव, एक दूसरे से हँस-हँसकर बातें करना, मटक-मटककर चलना, भाभी को लगा कि मेरी बहुएँ तो इनके सामने सेठानी सी लग रही हैं। उन्हें बर्दाश्त नहीं हुआ, वे बहुओं के पास गईं, वे अकेली, कुर्सियों पर बैठी हुई थीं, भाभी ने धीरे से कहा, गँवारों की तरह ये सिर क्यूँ ढके बैठी हो?'' बहुओं ने झट सिर से साड़ी उतार ली, भाभी को वे पहले से अच्छी लगी।

घर लौटते-लौटते रात्रि का एक बजने जा रहा था। रास्ते में भाभी ने कहा, ''तुम लोग कहाँ थे, दिखाई नहीं पड़े?'' ''वहीं तो थे यार-दोस्तों के साथ।'' सौमित्र ने कहा।

''और बीवी कहाँ है, यह पता ही नहीं रहा तुम दोनों को? अपनी-अपनी मिसेज के साथ क्यूँ नहीं थे? मैं देख रही थी कि सब अपनी-अपनी पत्नियों के साथ, घूम-धूमकर खा-पी रहे थे—पत्नी ने दोना पकड़ रखा था, खुद खा रही थी, अपने पति को भी खिला रही थी, कितना अच्छा लग रहा था। उनके प्यार को देखकर, लगता था कितने खुश हैं ये लोग और तुम्हारा कुछ पता नहीं, कहाँ छिप गए थे? जरा भी मैनर्स नहीं तुम लोगों में।''

अगले दिन भाभी ने सुबह ही बहुओं को हुकुम दिया, ''अरी बड़की छुटकी सुनो, आज मार्केट चलना है, कुछ शापिंग करनी है। खाने से जल्दी निपट लेना।'' दोपहर बाद भाभी, बहुओं को लेकर एक प्रसिद्ध मॉल में पहुँची। सबसे पहले साड़ियों के शोरूम में प्रविष्ट हुईं, बोली, ''देखो बड़की छुटकी अपनी पसंद की कुछ डिजाइनर साड़ियाँ ले लो।'' ''पर मम्मी जी, हमारे पास तो एक से एक कीमती साड़ियों से अलमारियाँ भरी पड़ी हैं, क्या करना है और साड़ियाँ लेकर?'' बड़की ने कहा और पीछे से छुटकी को चुटकी काटी। छुटकी बोली, ''दीदी ले लेंगी, मुझे नहीं

चाहिए।'' बड़की बोली, ''अरी मैं बड़ी हूँ, तेरे सामने पहनती क्या मैं अच्छी लगूँगी? नहीं तू ही ले ले।''

भाभी कुछ रोष दिखाते बोली, ''हाँ हाँ, दोनों बुड्ढी हो गई हो, जुम्मा जुम्मा आठ दिन तो नए जीवन में प्रवेश किए हुए नहीं कि अभी से अपने को बुढ़िया समझने लगीं, अरी यही तो उम्र है ओढ़ने पहनने की, उछलने-कूदने की, जब बच्चे हो जाएँगे तो क्या सुध रहेगी अपनी? चलो मैं कहती हूँ, खरीदो।''

दोनों बहुएँ मन ही मन मुस्करा रही थीं। बड़की बोली, ''मम्मी जी, आप कह रही हैं, तो खरीद तो हम लेंगी, पर आपने पहले ही हमें गहने जेवर कपड़े-लत्तों से लादा हुआ है कि अब जरूरत ही महसूस नहीं होती, क्या करना है?'' छुटकी ने भी हाँ में हाँ मिलाई। भाभी ने कहा, ''अरी सुना नहीं, बहस किए जा रही हो, जब मैंने कह दिया कि खरीदो, तो बस खरीदो, नो कमेंट।'' दोनों बहुओं ने जी भरकर आधुनिक डिजाइनर वीयर खरीदे—हर साड़ी पर यह कहना नहीं भूलती थी, ''मम्मी जी ये कैसी है?'' ''हाँ हाँ अच्छी है'' की मोहर लगवाती जाती थी। बड़की बोली, ''बस मम्मी जी! काफी हो गई, अब रहने दीजिए।''

''अरी अभी मेरी पसंद की तो खरीदी ही नहीं।'' कहकर मम्मी ने दोनों के लिए अपनी पसंद की कुछ साड़ियाँ, लहंगे आदि और खरीदे। दोनों बहुओं के मन में लड्डू फूट रहे थे, वे दोनों सासू माँ के साथ प्रसन्न मुख घर लौट आईं।

संध्या को सौमित्र राघव घर लौटे। आते ही, बिना कपड़े चेंज किए, माँ से चिपटकर बैठ गए—''अरे उठो भी यहाँ से कब तक मेरा दिमाग चाटते रहोगे? जाओ अपने अपने कमरे में और चेंज करो।'' फिर जोर से बोली, ''अरी बड़की छुटकी, मैं देख रही हूँ कि तुम दोनों के रंग-ढंग बिगड़ते जा रहे हैं।'' दोनों ही घबराई हुई-सी भागी आईं, ''क्यूँ क्या हुआ मम्मी जी?'' बड़की बोली।

''हुआ ही कुछ नहीं, तुम्हें पता है दोनों लड़के कब के घर लौट आए? उन दोनों को कुछ चाय-वाय चाहिए या नहीं, खयाल है तुम लोगों को? पति के घर आते ही पत्नियाँ उनकी ओर दौड़ी चली जाती हैं, उनका हाल-चाल पूछती हैं, चाय-पानी देती हैं, कुछ मैनर्स भी आते हैं तुम्हें या नहीं? जाओ यूँ खड़ी मेरा मुँह क्या ताक रही हो, उनकी खैर-खबर लो,

इतनी भी तमीज नहीं कि साँझ को घर लौटा पुरुष क्या चाहता है? यह भी मुझे ही बताना पड़ेगा, कि उसने अगर पत्नी के मुख पर खिलखिलाहट नहीं देखी, यदि उसके सामने उसकी पत्नी एक फूहड़-सी आकर खड़ी हो जाए तो कैसा लगेगा उसे? तुम लोगों पर अच्छे कपड़े नहीं रहे क्या? नौकरानियाँ सी लग रही हो—जाओ यहाँ से।" दोनों चली गईं।

सभी लोगों ने रात को खाना एक साथ ही खाया। खाना खाते ही सौमित्र, राघव, भाभी के कमरे में चले गए, दोनों माँ से लिपटकर बैठ गए, और बातें करने लगे। थोड़ी देर में ही भाभी बोली, "जाओ रे! बहुएँ इंतजार कर रही होंगी, सुबह की थकी माँदी हैं, जाग रही होंगी।"

"जागने दो माँ, जब नींद आएगी सो जाएँगी।"

"नहीं, नहीं, उठो तुम लोग यहाँ से मुझे नींद आ रही है।" वे उठकर गए तो दोनों बहुएँ भाभी के पास जा पहुँची।

"अरी तुम लोग क्या करने आई हो यहाँ?"

"आप जब सो जाएँगी मम्मी जी, तभी हम सोएँगी, लाइए, आपके पैर दबा दें।"

"नहीं नहीं, जाओ यहाँ से, मुझे नींद आ रही है।" और दोनों बहुएँ, भाभी के चरण छूकर चली गईं, साथ में दूधो नहाओ, पूतो फलो का आशीर्वाद लेती गईं।

अगले दिन भाभी ने डिनर पर कहा, "देख रही हूँ सौमित्र, राघव, तुम दोनों बहुओं की उपेक्षा कर रहे हो, और बहुएँ भी कम नहीं, वे भी तुम्हारी परवाह नहीं कर रही हैं। सारे काम मेरे सिर पर ही डालते जा रहे हो—मम्मी जी, नौकरों की तनख्वाह देनी है पैसे दे दीजिए, अखबार वाले का बिल देना है, बाजार से सामान लाना है, पैसे दे दीजिए, मुझे जैसे कुछ और काम रह ही नहीं गया, हर वक्त उठती रहूँ, सेफ खोलकर पैसे देती रहूँ, बस तुम्हारे कामों में फिरकी बनी घूमती रहूँ।"

"पर चाबी तो आपके पास ही रहती है मम्मी जी!" बड़की बोली।

"तू खुद क्यों नहीं रख लेती बड़की? चाभी भी मैं सँभालूँ, घर के सारे खर्चों का हिसाब भी मैं ही रखूँ, तुम सब लोग खाली पड़े रहो, यह लो गुच्छा, सँभालो सब कुछ अपने आप, मुझसे अब नहीं होती तुम्हारी चौकीदारी।" चाभी का गुच्छा बड़ी बहू को दे दिया और कहा, "देखो अब लेन-देन के मामले में मुझे डिस्टर्ब मत करना, मैं क्या सदा तुम लोगों के

चक्करों में ही फिरती रहूँगी? अब से तुम जानो तुम्हारा काम, जो चाहो जैसे चाहो, खर्च करो, अब तुम लोग समर्थ हो, अपना भला बुरा सब समझती हो, अब मुझे परमात्मा का शुक्रिया अदा करने के लिए भी कुछ समय चाहिए।''

इस पर बड़की बोली, ''आपके जितनी अक्ल कहाँ से लाएँ हम लोग, हम तो अभी बच्चे हैं, आप जैसे जैसे कहती रहेंगी, हम करते रहेंगे, हमारे बुरे भले की तो आप ही सोचेंगी, आपको ऐसे कैसे फ्री कर दें, अपने इन पौधों को सींचना तो आपको ही है।'' और दोनों बच्चियों की भाँति सास के बाएँ-दाएँ चिपट गईं, ''अरी मैं कहीं भागी जा रही हूँ क्या? जो कुछ गलत होगा, मैं कह दिया करूँगी, पर अब मैं स्वतंत्र होना चाहती हूँ। ....और सुन लो रे सौमित्र, राघव। घर में ये मनहूसियत मुझे बर्दाश्त नहीं, मुझे हर समय सन्नाटा-सा महसूस होता है इस घर में, क्या यह एक घर है? न हल्ला गुल्ला, न हँसी मजाक, न बच्चे की किलकारियाँ, न किसी का रूठना मनाना'', कहते कहते भाभी भावुक हो उठी, ''तुम चारों ही तो हो जिनमें में अपनी खुशी ढूँढ़ती हूँ, घर की यह चुप्पी, यह शांति मुझे खाने को दौड़ती है। मैंने गौरव को भी कहा था ''गौरव! फूल खिले खिले अच्छे लगते हैं, मुझे मुरझाए फूल देखने की आदत नहीं, तुम लोग भी कान खोलकर सुन लो, घर में मुझे शांति नहीं खिलखिलाहट भरा कोलाहल चाहिए।'' कहकर भाभी ने साड़ी के पल्लू से अपनी आँखें पोंछीं।

•

(गृहशोभा के 2011 के अप्रैल प्रथम, अप्रैल द्वितीय और मई प्रथम के अंकों में धारावाहिक प्रकाशित।)

डिजायनर कफन कॉलोनी

"अंदर आ सकता हूँ?" गरिमा कॉम्प्लैक्स के एक ऑफिस के बाहर मैंने दरवाजे पर नॉक किया। "आइए प्लीज, तशरीफ लाइए।" एक भव्य रिवॉल्लिंग चेयर पर बैठे हुए स्मार्ट से युवक ने मेरी ओर चेयर घुमाते हुए कहा। उसके सामने सेमी सर्किल सा बनाती हुई काउंटर नुमा, एक टेबुल, ऊपर शीशा लगा हुआ, उस पर खुला हुआ लैपटॉप, उनके दोनों ओर दो फोन सैट, सेल फोन कान से लगाए हुए, फोन पर हाथ रखकर मुझसे बोले, 'जस्ट ए मिनिट सर', और अंगुली से मुझे बैठ जाने का इशारा किया। उनके सामने पड़ी हुई कुर्सियों में बीच वाली कुर्सी पर मैं बैठ गया और उनके ऑफिस का निरीक्षण-सा करने लगा। उनके पीछे, दीवार पर, एक बुजुर्ग का फोटो टँगा हुआ था, जिस पर माला लटकाई हुई थी—मेरी कुर्सी के पीछे दीवार पर विंडो ए.सी. लगा था, जिससे हल्की-हल्की ठंडी हवा आ रही थी, नीचे पूरा फर्श मखमली कार्पेट से ढका था। उनके सामने एक नोट बुक रखी थी, वे सेलफोन सुनते जाते थे और नोट बुक में कुछ लिखते जा रहे थे।

अपना सेलफोन मेज पर रखते हुए बोले, "सॉरी, यू हैड टु वेट, एक जरूरी फोन था। कहिए, मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूँ?" तभी एक युवक ठंडे पानी का गिलास ट्रे में रखकर ले आया, "सर...।" और मेरी ओर ट्रे बढ़ाई। मैंने कहा "नो थैंक्स।"

"लीजिए साहब, मिनरल वाटर है।" वे बोले।

मैंने कहा, "नहीं, थैंक्स, मैं घड़े का पानी पीता हूँ और गर्मियों में खूब पानी पीकर बाहर निकलता हूँ।"

"फरमाइए।"

"जी मुझे एक डिजाइनर कफन बनवाना है अपने लिए?" मैं बोला।

"जी?" वह चौंका, बोला, "मैं समझा नहीं, शायद आप गलत जगह पहुँच गए, बाहर बोर्ड नहीं देखा?"

"वही देखकर तो आया हूँ 'वर्मा एंड वर्मा एसोशिएट्स आर्कीटेक्ट इंजीनियर्स।' "

"तो क्या यहाँ कफन सिए जाते हैं?" उसके मुँह पर रोष की झलक उभर आई।

"और यहाँ क्या होता है?" मैंने गंभीरतापूर्वक कहा।

"जनाबेआली, यहाँ नक्शे बनाए जाते हैं।"

"किस चीज के?"

"मकानों, दुकानों, फैक्टरियों के।"

"वही तो मुझे बनवाना है, फिर तो मैं सही जगह पर ही आया हूँ।" कहकर मैं चुप हो गया। वह बोला, "पर आप तो कह रहे थे डिजायनर कफन...।"

"यह मेरे मकान का नाम होगा।" सुनकर वह चकरा गया, मैं मौन हो गया।

वह बोला, "आपका छोटा-सा परिचय? कुछ कविता वविता तो नहीं करते?"

"सोचा तो था कि कुछ कविता वविता, कहानी वहानी लिखने लगता। मैं बी.ए. का छात्र था, तभी मुझे यह रोग लग गया था, बी.ए. में मैंने गलती से हिंदी विषय ले लिया था। पता नहीं कहाँ से मेरे भीतर एक मरियल से कहानीकार का जीवाणु प्रवेश कर गया। कहानी सुनने का शौक तो मुझे दादी, नानी से ही लग गया था और कविता भी कभी-कभी कर लिया करता था। पर कविता में तो मुझे इंट्रेस्ट नहीं आया मुझे लगा कविताबाजी में तो बहुत कुछ सोचना-समझना पड़ता है, उल्टी-सीधी कल्पनाएँ करनी पड़ती हैं, ऐसी जोड़-तोड़ करनी पड़ती है कि पाठक तो पाठक स्वयं कवि भी न जान सके कि तूने जो कुछ लिख मारा उसका आशय क्या है। तो मैंने कहानी लिखना बेहतर समझा। मैं फिल्में बहुत देखता था, मुझे लगता था कि इन सबमें क्या है, कहीं की ईंट, कहीं का रोड़ा, इकट्ठा किया, अपनी तरफ से थोड़ा-सा मिर्च मसाला मिलाया और जोड़ दिया आपस में, मेरे भीतर से उत्तर आया, 'ऐसी जोड़-तोड़ तो तू भी कर सकता है, चल उठा कलम और बुन दे एक कहानी।" कहकर मैं

चुप हो गया।

"फिर?" उसने पूछा।

"फिर क्या, मैंने भी कहीं से ईंट चुराई, कहीं से रोड़े, कुछ मिर्च-मसाले मिलाए और घड़ डाली एक कहानी और जानते हैं इंजीनियर साहब कि फिर क्या हुआ?" मैंने उनकी ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखा!

"पता नहीं फिर क्या हुआ, यह तो आप ही बताएँगे।" उन्होंने जिज्ञासा व्यक्त की।

मैंने मन-मन में सोचा कि इस वक्त यह खाली बैठा है, इसलिए इसके समय का सदुपयोग किया जाए। मैंने कहा, "एक कहानी प्रतियोगिता हुई और उसमें वह पुरस्कृत हो गई। निर्णायकों ने मेरी पीठ थपथपाई और मुझे पुरस्कार में एक उपन्यास दिया। वह उपन्यास मेरे पास आज भी रखा है, काल की मार से भले ही जीर्ण-शीर्ण अवस्था को प्राप्त हो गया हो। अरे साहब, वह तो पुस्तक थी, इतने सालों में तो आजकल के महल भी ढह जाते हैं। आप तो यह सब जानते ही हैं कि ये सब क्यूँ ढह जाते हैं और कई सौ वर्ष पुरानी इतारतें—मसलन ताज महल, लालकिला, कुतुब मीनार आज भी ज्यूँ-के-त्यूँ खड़े हैं—खैर मेरी कहानी पुरस्कृत हुई तो मेरे भीतर की कुलबुलाहट उस तरह उछल-कूद मचाने लगी जैसे गाय का बँधा बछड़ा, दूध पीने के लिए खोले जाते समय उछल-कूद मचाने लगता है, जेवड़ा तुड़ाकर भाग उठने को मचल पड़ता है ...पर...।"

"फिर क्या हुआ आगे बताइए, सर?" इंजीनियर बोला।

"फिर वही हुआ जो एक तेली के साथ हुआ था। हमारे मुहल्ले में एक तेली तेल बेचने आया करता था। गली के नुक्कड़ पर पहुँचते ही वह इतने जोर से आवाज लगाता था—तेल ले लो तेल, तेल ले लो तेल, कि सारे मुहल्ले में उसकी आवाज गूँज जाती थी, क्या खनक थी उसकी आवाज में! मैं उससे तेल लिया करता था। एक दिन मैंने तेली से कहा, "फिद्दन मियाँ आज कल क्या तेल बेचना कम कर दिया है?"

"नहीं तो हुजूर तेल नहीं बेचूँगा तो खाऊँगा कहाँ से?" कहते हुए उसने सिर से तेल का पीपा उतारकर जमीन पर रख दिया और उकड़ूँ बैठ गया।

मैंने कहा, "मैं तो एक हफ्ते से तेल की इंतजार में था, हारकर मुझे

बाजार से खरीदना पड़ा, नामी गिरामी कंपनी का शुद्ध सरसों का तेल लिखा था बोतल पर, उसमें निकला महागंदी सरसों का तेल, मिलावट खोर कहीं के।'' सुनते ही फिद्दन मियाँ बोले, ''हुजूर सरसों तो खालिस ही रही होगी, अब कोई उसमें कुछ मिला दे तो सरसों बिचारी का क्या दोष? सरसों बेचारी को मत कोसिए, बह तो पिस-पिसकर अपनी जान कुर्बान कर देती है। अपने भीतर का सारा रस निचुड़वा लेती है, आपके स्वाद के लिए।'' सुनते ही मैं आँखें फाड़कर बोला, ''फिद्दन मियाँ क्या शायरी वायरी करते हो, लगता है उर्दू पढ़ी है।''

वह बोला, ''उर्दू? अरे हुजूर फारसी भी पढ़ी है।'' मैं भौंचक देखता रह गया। वह आगे बोला, ''लालाजी! 'पढ़े फारसी बेचे तेल', मुहावरा हम जैसों की ही बदौलत तो बना है।'' खैर कुछ रुककर वे फिर बोले, ''लालाजी, आवाज तो मैं रोज ही लगाता हूँ, बिना आवाज लगाए कोई माल बिकता है?''

''वह सब तो ठीक है, पर मुझे तो आपकी आवाज सुनाई नहीं पड़ी? कान तो मेरे ठीक ठाक हैं।''

''बात ये है लालाजी कि अब मेरी शादी हो गई है।'' कहकर फिद्दन मियाँ मुस्कराए।

मैं बोला, ''मुबारक हो फिद्दन मियाँ, बधाई, आप दोपाए से चौपाए हो गए...हाँ यह बात तो ठीक है। मियाँ, आवाज में वह खनक कहाँ रह जाती है, पता नहीं कहाँ गुम हो जाती है।''

थोड़ा रुककर मैं इंजीनियर से बोला, ''मतलब यह है इंजीनियर साहब कि मेरी भी शादी हो गई, बाल-बच्चे पालता या कहानियाँ लिखता?'' घर में, माँ या बड़े भाई वगैरह पूछते कि ''हरचरण कहाँ है?'' तो बीवी ताने मारती, कहती, ''बैठे हुए पन्ने काले कर रहे हैं। फिर मुझे समझाती, ''इन कहानियों वहानियों से क्या मिलना है?''...और मैंने कहानियाँ लिखना छोड़ दिया। बिजनेस शुरू किया, वह भी रास नहीं आया, तरह-तरह के प्लान बनाता, सब फेल हो जाया करते थे—मेरे बड़े भाई साहब मुझ पर अक्सर मुस्कराकर व्यंग्य कसा करते थे कि इसके काम तो बंदरवाली कूकड़ी है।'' ''बंदरवाली कूकड़ी का मतलब तो शायद आप समझे नहीं होंगे?''

''ना मैं नहीं समझा, बताइए।'' इंजीनियर बोला।

मैंने कहना शुरू किया, "एक बंदर कई दिनों से भूखा घूम रहा था, चलते-चलते वह मक्का के एक खेत में घुस गया, मोटी मोटी कूकड़ी (भुट्टे) देखकर उसके मुँह में पानी आ गया—उसने दाएँ हाथ से एक भुट्टा तोड़ा और बाईं कांख (बगल) में दबा लिया, फिर बाएँ हाथ से एक भुट्टा तोड़ा दाईं बगल में दबा लिया, बाईं बगलवाला भुट्टा, बगल से निकल गिर पड़ा—इस तरह वह एक बगल में दबाता रहा, दूसरी का, नीचे गिरता रहा, इस प्रकार उसने सारा खेत उजाड़ दिया, वह बहुत खुश कि आज तो सालभर के खाने-पीने का जुगाड़ फिट हो गया। खुशी-खुशी खेत से बाहर निकला तो देखा कि उसके पास एक ही भुट्टा था—बाईं बगल में। इंजीनियर साहब, मेरा सारा कार्य व्यापार बंदरवाली कूकड़ी ही रहा। अब जाकर गाड़ी कुछ पटरी पर आई है, एक दुकान कर ली है, कहने को तो वह परचूनिए की है, पर अच्छी चाँदी काट रही है। अब सोचता हूँ एक मकान बनवा लूँ, इसीलिए आपके पास आया हूँ कि एक अच्छा-सा नक्शा बना दें।"

"पर आप तो कह रहे थे डिजायनर कफन!" इंजीनियर ने कहा।

"भैया मेरे, कह तो चुका हूँ कि वह मेरे घर की नेम प्लेट होगी।"

"ऐसा अजीब नाम?"

आप ही बताइए क्या नाम रखता? शांति निकेतन, रखता? जहाँ धमा चौकड़ी, उठा पटक, राँड नपूती, तू तू, मैं मैं तो होती पर शांति जैसी कोई चीज नहीं दिखाई देती, क्या हरचरण निकुंज रखता, जहाँ हरचरण को कोयल की कुहूकुहू के बजाए, औरतों की कतरनी-सी झोंटा खींची, केशोन्मूल दिखाई पड़ता, जहाँ छाती पीट-पीटकर औरतें एक दूसरी को कोसती रहतीं, जहाँ भाई, भाई आपस में शकुनि चाल चलते रहते और महाभारत के सीन घटित होते रहते, या फिर पर्ण कुटीर रखता फिर आप जैसे लोग कहते 'दीवारों' में तो सोने की मोहरें गाड़ रखी हैं और बोर्ड टाँग रखा है कुटीर का। इंकम टैक्स वाले क्या इतने उल्लू हैं कि कुटीर को देखकर भ्रम में पड़ जाते सारी गड़ी दौलत न निकाल ले जाते। जैसा आपने सुना होगा कि नजीवावाद के एक सामान्य से दिखने वाले लाला के यहाँ हुआ था—तहखाने में रखे ट्रंकों में नोटों की गड्डियाँ भरी पड़ी थीं, जिनमें सीलन के कारण काफी नोट तो गल गए थे। तो इंजीनियर साहब, ये भी कोई नाम हैं, मैं चाहता था कि और कहीं तो नाम कमा

नहीं सका, कम-से-कम घर के नाम से ही, नाम कमाऊँ—एक ऐसा नाम जो अद्वितीय हो, सारे देश में उस नाम की चर्चा हो। मैं कुछ ऐसा करना चाहता हूँ कि अलग से ही दिखे, बस यूँ समझलो इंजीनियर साहब, यह मेरी एक आदत है कि मेरे हर काम में कुछ-न-कुछ अद्भुत दिखना चाहिए, ताकि लोग-बाग मुझे जान जाएँ।''

''तो ऐसे गंदे नाम से आप नाम कमाना चाहते हैं?'' वह मेरी बात काटते हुए बोला।

''अरे बदनाम होंगे तो क्या नाम न होगा?''...खैर अभी तुम बच्चे हो, ऊँट अभी पहाड़ के तले से नहीं निकला, ये बातें अभी तुम्हारे पल्ले नहीं पड़ेंगी, इस धंधे से रिटायर हो जाओगे तो समझोगे।'' कहकर मैं चुप हो गया।

वह बोला, ''खैर मुझे बताइए कैसा नक्शा बनाऊँ? आपका बजट?''

''बजट की फिकर आप ना करें, परमात्मा का दिया काफी कुछ है मेरे पास, बस एक मकान ही नहीं है, किराए के मकान में रह रहा हूँ।''

''कितना किराया देते हैं?''

''दस हजार रुपए महीना।''

इंजीनियर ने मेरे विषय में कदाचित् सोचा हो कि असामी ठीक ठाक है, पर जरा सनकी है। यह हर व्यक्ति की विशेषता होती है कि वह दूसरे व्यक्ति का झट असेसमेंट कर डालता है—झूठा है, सच्चा है, शरीफ है, सनकी है, चालाक है वगैरह वगैरह, जब कि वह स्वयं को तोलते समय डंडी जरूर मारता है और पलड़ा ईमानदारी की ओर झुकता रहता है।

थोड़ा रुककर मैंने कहा, ''अच्छा, चलता हूँ, एक दो दिन में फिर आऊँगा, माफी चाहता हूँ, आपका बहुत टाइम खा गया।'' कहकर मैं कुर्सी से उठा। ''पर आपका नक्शा?'' ''अरे भाई, कह तो दिया कि एक दो दिनों बाद आऊँगा।'' कहकर मैं चला आया।

लाइक माइंडिड कुछ व्यक्तियों से सलाह मशविरा किया और एक सोसायटी बना ली। सस्ते दामों पर, बाहरी इलाके में छह एकड़ जमीन खरीद ली और आर्किटीट इंजीनियर के पास पहुँचा। निष्तकल्लुफ मैं उनके दफ्तर में घुस गया—नॉक करने की आवश्यकता इसलिए नहीं समझी कि उनके कार्यालय में जो थोड़े से कर्मचारी थे वे सब पुरुष ही थे, महिला

यानी स्मार्ट सी रिसेप्शनिस्ट जैसी कोई मनमोहिनी नहीं थी, फिर बेधड़क घुसने में क्या परेशानी थी?

"आइए लालाजी बैठिए प्लीज।" उसके चेहरे पर मुस्कान उतर आई।

"इंजीनियर साहब, मकान ने नकशे को तो अभी पैंडिंग रखिए, पहले छह एकड़ की एक, कालोनी का नक्शा बनाइए—ले आउट प्लान एक दम मॉडर्न होना चाहिए, सड़कें, पार्क, हवा रोशनी, हरियाली आदि का वर्ल्ड क्लास इंफ्रास्ट्रक्चर होना चाहिए, स्वीमिंग पूल, बच्चों के लिए खेल का मैदान आदि सभी बातों का ध्यान रखिए, हर प्लॉट मिनिमम टू साइड ओपन, 200 वर्ग-मीटर का होना चाहिए।" कहकर मैं मौन हो गया। इंजीनियर मन ही मन मुस्कराया, कुछ अहसान सा लादते हुए बोला, "ठीक है, लेकिन मेहनत काफी करनी होगी...पैसे कुछ ज्यादा लग जाएँगे।"

"पैसों की चिंता न करें, सब इंतजाम है, फिर बैंक तो हैं ही।" कहकर मैं चुप हो गया। थोड़ी देर बाद मैं बोला, "अच्छा तो चलूँ, कुछ एडवांस भिजवा देता हूँ।" मैं उठकर दरवाजे की ओर चला और एकदम वापस मुड़कर बोला, "हाँ, इंजीनियर साहब, एक खास बात तो मैं बताना भूल ही गया, सभी प्लॉट दक्षिण मुखी होने चाहिएँ।"

"दक्षिण मुखी?" वह चौंका।

"हाँ हाँ, साउथ फेसिंग।"

"माफ कीजिएगा लालाजी, मैं आपको समझ नहीं पा रहा हूं।" ही कह पाया था कि मैंने बात काटी—"इसमें कौन बड़ी बात है, मैं खुद ही अपने आपको नहीं समझ सका हूँ, आप नहीं समझ पा रहे तो इसमें कैसा आश्चर्य?"

"मेरा मतलब था कि अपवाद रूप में भी अभी तक कोई ऐसा व्यक्ति नहीं मिला जिसने दक्षिण मुखी की इच्छा जाहिर हो, फिर आप कैसे बेचेंगे उन प्लॉटों को?"

मैंने कहा, "आपकी सहानुभूति के लिए धन्यवाद, अरे ये भी कोई हिंदी की पुस्तकें हैं जो बिकें नहीं और प्रकाशक रोने रोता रहे कि 'पुस्तकें बिकती नहीं।' बेचने की कला आनी चाहिए, जो इस कला में माहिर थे वे जीरो से हीरो हो गए और जो घोंचू थे, अर्श से फर्श पर आ पड़े हैं। मैं चाहूँ तो सड़ी-गली पुस्तक का 3000 हजार का एडिशन तो यूँ बेच

सकता हूँ, मैंने चुटकी बजाते हुए कहा, और फिर आप देख नहीं रहे कि आज बेचने की कला कितनी विकसित हो गई है—अपनी प्रोडक्ट बेचने के लिए वे ग्राहक के पास नहीं जाते, 'दो के साथ तीसरी फ्री' जैसे लटके इस्तेमाल किए नहीं कि ग्राहक खुद ही भगा चला आता है प्रोडक्ट के पास—खैर इसकी आप चिंता न करें, जहाँ तक संभव हो सभी प्लाट साउथ फेसिंग हो'', कहकर मैं चला आया।

समाचार पत्रों में विज्ञापन दे दिया गया, विज्ञापन से स्पष्ट था कि यह कॉलोनी दिल्ली सीमा से मात्र 10 कि.मी. दूर है और ऐसी पॉश कालोनी में जमीन की कीमत दिल्ली, जहाँ लाख डेढ़ लाख रुपए प्रति वर्ग मीटर है वहाँ, इस कालोनी में सिर्फ 15 हजार रुपए वर्ग मीटर में उपलब्ध है, केवल 200 प्लॉट की यह एक अद्भुत कालोनी होगी—सभी सुख सुविधाओं से लैस। एक व्यक्ति को एक ही प्लाट मिलेगा, संपर्क कीजिए—सचिव डिजायनर कफन, कॉलोनी दिल्ली-92

पहले ही दिन एक सज्जन का फोन आया—''हैलो, डिजायनर कफन कॉलोनी?'' ''जी हाँ, कहिए।'' ''ये कंडीशंस अप्लाई का क्या मतलब है, पैसे लीजिए और प्लॉट दीजिए, इसमें कौन-सी कंडीशन लगेगी?''

मैंने शांतिपूर्वक उत्तर दिया, ''श्रीमन्, सोसायटी हमारी, प्लॉट हम बेच रहे हैं, हमारी मर्जी जिस किसी को भी प्लॉट दें।'' ''तो किसे किसे देंगे आप प्लॉट?'' उधर से आवाज आई।

''वह हम, प्रत्येक आवेदन कर्ता से बातचीत करके ही तय करेंगे कि उसे प्लाट दिया जाए अथवा नहीं।'' कहकर मैंने फोन काट दिया।

फोन आने शुरू हो गए और मैं उन्हें अप्वाइंटमेंट देता गया। प्रतिदिन 15, 20 व्यक्तियों के इंटरव्यू लेता था। पहले दिन एक सज्जन् से बातें हुईं—

''आपका नाम?'' मैंने पूछा।

''गिरधर गोपाल।''

''काम?''

''अध्यापन।''

''कितने बच्चे हैं?'' वे बोले, ''दो लड़के और एक लड़की, लड़की बड़ी है, उसकी शादी कर दी है।''

''लड़के?''

"बड़ा लड़का सैनिटरी इंस्पेक्टर है, छोटा कचहरी में पेंशन आफिस में काम करता है।" मैंने कहा, "दोनों ठीक-ठाक कमा लेते हैं?"

"जी हाँ ठीक गुजारा कर रहे हैं, इज्जत की दाल रोटी खा रहे हैं।"

"कोई शराब वराब का शौकीन है?"

"राम, राम, शराब और अध्यापक का लड़का? शराब विरोधी शिक्षा देते-देते तो मैं रिटायर होने के कगार पर हूँ।" इतना ही कह पाए थे कि मैं बोला, "सॉरी मास्साब, हम आपको प्लॉट नहीं दे सकते।"

पर क्यूँ? क्या ऐब है मुझमें?" वे निराशा से बोले। "मैंने तो आपको ऐबी नहीं कहा, सॉरी।" और उनसे उठकर चले जाने का इशारा किया।

मोटे-मोटे अक्षरों में, नियम और शर्तें छपवाकर मैंने अपनी कुर्सी के पीछे दीवार पर लटकाई हुई थी, हर व्यक्ति से कहता था कि पहले शर्तें अच्छी तरह पढ़ लीजिए, मंजूर हो तो आगे बढ़े। अतः हरेक से पूछ लिया करता था शर्तें मंजूर? उसकी हाँ सुनने के बाद ही मैं आगे बढ़ता।"

मैंने घंटी बजाई, "नैक्स्ट!" दूसरा व्यक्ति प्रविष्ट हुआ।

"बैठिए,...आपका नाम?" "जी, मोहनलाल अग्रवाल।" "पेशा?" "बाबूगीरी, मतलब इंकमटैक्स कार्यालय में बड़ा बाबू हूँ।"

मैंने कहा, "देखिए अग्रवाल साहब, एक बात स्पष्ट सुन लीजिए और विश्वास रखिए, कि आपकी हर बात सीक्रेट रखी जाएगी लेकिन मेरे किसी भी प्रश्न का उत्तर गलत दिया तो हम आपको प्लॉट नहीं दे सकेंगे। अभी आपसे पहले एक अध्यापक आए थे, उन्होंने मेरे एक दो सवालों के जवाब गलत दिए तो मैंने उनको प्लॉट नहीं दिया। देखिए जैसी कॉलोनी हम बना रहे हैं, वैसी आपको कहीं नहीं मिलेगी, हम चाहें तो इससे महँगे दामों में भी हमारे सभी प्लॉट बिक जाएँगे, पर हमारा एक मिशन है, एक उद्देश्य है, उसके विरुद्ध मैं नहीं जा सकता, इसलिए सही सही जवाब दीजिएगा।"

"जी, मैं झूठ क्यूँ बोलूँगा? पूछिए।" कहकर वे मेरी ओर देखने लगे।

मैंने पूछा, "आपके बच्चे?" "जी एक बेटा है बस।" वे बोले।

"उसकी शादी कर दी?" "जी हाँ" "कितना दहेज लिया?"

वे चौंके, "दहेज? दहेज कहाँ से लेता, मुझे तो उल्टे दहेज देना

पड़ा।" "क्या मतलब?"

"उसने अपनी मर्जी से, एक दूसरी जाति की लड़की से शादी कर ली, लड़की वालों की ओर से भारी विरोध हुआ, जूतम पैजार की नौबत आई, पुलिस केस बन गया, ले दे कर पीछा छुड़ाया, दो लाख के नीचे आ गया। उस लड़की को बहू रूप में लाने में, एक छोटा-सा झौपड़ा था, वह भी बिक गया।" कहकर अग्रवाल साहब चुप हो गए।

"कांग्रेट्स अग्रवाल साहब, बोलिए आपको कौन-सा प्लाट चाहिए?" उनके सामने कालोनी का नक्शा रखते हुए मैंने सोत्साह कहा।

अगला व्यक्ति–

"आपका नाम?" "डॉ. संजय शर्मा।" "प्रैक्टिस करते हैं या गवर्नमेंट जॉब है?"

"जी, मैं वो वाला डॉक्टर नहीं हँ, पी-एच.डी. हूँ, प्रोफेसर हूँ।"

"आपके बच्चे?" "दो लड़के।" "क्या करते हैं?" "बड़ा आई.टी. में है और छोटा जे.एन.यू. से एम. फिल कर रहा है।"

"लड़की?" वे बोले, "लड़की कोई नहीं। बस ये ही दो लड़के हैं।" "कोई मकान वकान नहीं बनवाया डॉक्टर साहब?" "जी अभी तक तो नहीं, अब सोचता हूँ आपके यहाँ कोई प्लॉट मिल जाए तो कुछ सोचूँ।" "फिलहाल कहाँ रहते हैं?" "जी, वैशाली में किराए पर रह रहा हूँ।" "कितना किराया दे रहे हैं?" "मेंटीनेंस, वगैरह सब मिलाकर, आठ हजार रुपए पड़ जाता है, इतनी बचत ही नहीं हो पाती। बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलवा लेता या मकान बनवा लेता, मेरी प्राथमिकता अच्छी शिक्षा रही है, जो मैंने पूरी कर ली है। मेरी एक सोच रही है कि मकान से लड़के नहीं बनते, लड़कों से मकान बनते हैं।"

"आपको पीने पाने का कुछ शौक है?" मैंने पूछा। वे बोले, "जी नहीं, पान, बीड़ी सिगरिट तक नहीं छुई।" "लड़कों में से कोई...?"

"देखिए, लड़कों की क्या कहूँ, काजल की वोठरी में रहते हैं, आई. टी. वाला अच्छा क्या लेता है, डेढ़ दो लाख रुपए महीना, वह कभी कभार पार्टी वार्टी में पी लेता है, घर के भीतर शराब पीने की हिम्मत तो किसी लड़के में नहीं है, फिर एक बात और है जिसका अपना महत्व है—मैं तो एक गरीब बाप का बेटा था, ज्यूँ-त्यूँ करके मेरे पिताजी ने मुझे शिक्षित किया, अब मेरे बेटे तो गरीब बाप के बच्चे नहीं, वे क्यूँ हीन भावना से

ग्रस्त रहें अपने साथियों के समक्ष, इसलिए मैंने उनके शौक पूरे करने में कोई कसर नहीं छोड़ी, इसलिए सीमा में रहते हुए वे यदि अपने शौक पूरे कर लें तो कर लें, मैं बुरा नहीं मानता।'' कहकर वे चुप हो गए।

''आप भी तो अच्छा-खासा कमाते थे, आपने अपने शौक पूरे क्यों नहीं किए।'' मैंने पूछा।

''देखिए श्रीमन्, मैंने अपने सभी शौक पूरे किए—भारत भर के तीर्थों की यात्रा की है, हिमालय के बर्फीले उत्तुंग शिखरों को बड़े निकट से देखा है, ज्वार भाटे वाला समुद्र देखा है, गंगा मैया का गोमुख देखा है, कृष्ण कन्हैया की ब्रजभूमि देखी है, जगन्नाथ जी की पुरी देखी है, भगवान कृष्ण का द्वारका देखा है और तिरुपति बालाजी, तो दोनों बच्चों का मुंडन कराया है। मेरा निजी पुस्तकालय है, देखिए एक-से-एक उत्तम ग्रंथ, शब्द कोश, आदि मिलेंगे, मैं इन पुस्तकों से परम संतुष्ट हूँ, जब भी कोई अच्छी पुस्तक दिखाई पड़ती है, खरीद लेता हूँ।''

''वात्स्यायन पढ़ा है?'' उनकी बातों को मोड़ देता हुआ मैं बोला।

''जी सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन अज्ञेय तो मेरे प्रिय कवियों में से रहे हैं।'' उन्होंने सोत्साह उत्तर दिया।

''और दूसरे वाले वात्स्यायन को नहीं पढ़ा?'' मैंने किंचित मुस्कान के साथ पूछा।

''उन्हें पढ़ने का अवकाश ही नहीं मिला, कभी कभार फिल्में देख लिया करता था।''

''ब्ल्यू फिल्में?''

''अरे साहब आप तो मजाक कर रहे हैं।'' वे मुस्कराए और मैं खिलखिला पड़ा और बोला, ''तो डॉक्टर साहब, अब काहे मकान वकान के चक्करों में फँसते हो? शौक तो पूरे कर लिए, छोड़ो।''

''सोचता हूँ, आखिरी शौक भी पूरा कर लूँ, एक मकान बनवा लूँ, एक जिम्मेदारी समझता हूँ अपने ऊपर कि दोनों लड़कों के लिए एक छत बनवा दूं, माया से छाया भली, पेंशन से जो कुछ मिलेगा उसमें ठीक-ठाक -सा मकान तो बन जाना चाहिए, लड़के लगभग सैटिल हो ही गए, 25, 30 हजार रुपए मासिक पेंशन मिला करेगी, मुझे पर्याप्त है।'' कहकर डॉ. संजय शर्मा चुप हो गए।

मैंने कहा, ''बधाई डॉ. साहब, आपको प्लॉट स्वीकृत।'' डॉ. शर्मा

मानो कृतार्थ हुए।

तीसरा व्यक्ति—

"आपका नाम?" "सुरिंदर चोपड़ा।" "पेशा?" "दिल्ली पुलिस में सब इंस्पेक्टर।" "शराब तो पीते होंगे?" "आपका मतलब है पुलिस और शराब का चोली दामन का साथ है, जनाबे आली, शराब पीने वालों को तो मैं तड़ी पार कर देता हूँ, राधा स्वामी हूँ, कोई गुंडा नहीं हूँ, मैं एक शरीफ आदमी हूँ, अपने मुँह से कहते अच्छा नहीं लगता, मेरे मुहल्ले में जाकर एंक्वारी कीजिए तो पता चलेगा कि सुरिंदर चोपड़ा कैसा आदमी है, गली के किसी लड़के की हिम्मत नहीं है कि कहीं इधर-उधर ताक-झाँक ले।" वे मौन हुए।

मैंने पूछा, "आपके बच्चे?" "दो लड़कियाँ हैं बस।" "लड़का?" "लड़का कोई नहीं, बस ये दो लड़कियाँ हैं।" "लड़के की इच्छा नहीं आपकी?"

वह तपाक से बोला, "बिल्कुल नहीं, चारों तरफ जो हाल मैं लड़कों का देख रहा हूँ उससे तो न होना ही अच्छा है, लड़की मरते-मरते भी माँ-बाप के लिए मरती रहेगी और लड़के...बस मत पूछिए—बीवी 'इन' तो माँ प्यो आउट।"

मैंने कहा, " माफ कीजिए इंस्पेक्टर साहब हम आपको प्लाट नहीं दे सकते, सॉरी।" इतना सुनते ही चोपड़ा साहब उबल पड़े—"कैसी कालोनी बसाना चाहते हैं आप? गुंडों, चोरों, डकैतों, बदमाशों की कालोनी बसाना चाहते हैं?"

मैंने शांतिपूर्वक कहा, "माफ कीजिए, यह तो हमें देखना है कि किसे प्लॉट दें, किसे न दें, आप प्लीज हमें माफ करें।" सुनते ही इंस्पेक्टर बड़बड़ाता हुआ चला गया।

कोई हफ्ते भर में मैंने सभी प्लॉट अलाट कर दिए। इनमें से अधिकांशतः वे लोग थे जिनकी संतानें अच्छी पढ़ी-लिखी, होनहार थीं, काफी लड़कों की शादी, पढ़ी-लिखी, उत्तम करियर वाली लड़कियों से हो चुकी थी, शेष लड़कों की भी ऐसी ही लड़कियों से होने की संभावना थी—मतलब ऐसी कोई बुकिंग मैंने नहीं कि जिसकी संतान पिछड़ी हुई, ग्रामीण संस्कार लिए हुए या श्रवण कुमार जैसी गुणशील हो।

इस कालोनी के साथ ही, इतने ही कमरों की, हरिद्वार में एक-एक

कमरे के सैटों की एक छोटी-सी कालोनी 'मेरा अपना घर' नाम से बननी शुरू हो गई जिसका आधा खर्च सोसायटी के नियमानुसार डिजाइनर कफन कालोनी के प्लाट होल्डरों से लिया गया था आधा खर्च सोसायटी ने वहन किया। उसके बाहर एक बड़ा-सा बोर्ड लगवा दिया गया—''दिल्ली की डिजाइनर कफन कॉलोनी वालों का 'मेरा अपना घर' कालोनी।''

मकान बनने शुरू हो गए और देखते ही देखते कॉलोनी सज-सँवरकर तैयार हो गई। कुछ दिनों में ही कॉलोनी आबाद हो गई।

कुछ समय पश्चात्...

मैं एक दिन डॉ. शर्मा के घर के सामने से निकला जा रहा था, भीतर से कुछ ऊँची-ऊँची आवाजें आ रही थीं—'देखो जी, पापा जी आलसियों की तरह पड़े पढ़ते-लिखते रहते हैं, जरा-सा भी सामान लाना हो तो इन्हें रिक्शा चाहिए, इन्हें दो चार किलो वजन भी उठाते भी जोर पड़ता है, हर काम के लिए इन्हें रिक्शा चाहिए, इससे तो इन्हें एक सायकिल ही दिला दो, साइकिल चलाएँगे तो स्वास्थ्य भी ठीक रहेगा और काम भी फटाफट हो जाया करेंगे, रिक्शे में पैसे भी जाया नहीं होंगे।''

''अरी इस उमर में उनसे साइकिल चलेगी क्या? कहीं गिर गिरा पड़े तो लेने के देने पड़ जाएँगे, बिना बात के रोज़े तुड़ाने के चक्करों में नमाज गले पड़ जाएगी, मैं ले आया करूँगा सामान स्कूटर से।''

''तुम और स्कूटर? लोग क्या कहेंगे?''

''और अब लोग क्या कहते होंगे कि यह है डॉ. शर्मा का होनहार सुपुत्र इतना बड़ा एक्जीक्यूटिव...पर बाप चप्पलें घसीटता फिरता है, तब क्या मुझे शर्म नहीं आएगी?''

''इसमें शर्म कैसी? बड़े-बूढ़े क्या काम नहीं करते, मेरा क्या, मैं तो यही सोच रही थी कि यूँ पड़े-पड़े पापाजी आलसी हो जाएँगे, आलसी को तो अपने मान सम्मान की चिंता तक नहीं रहती, और उसे हराम की खाने की आदत पड़ जाती है, अरे मेरा क्या, बनाओ उन्हें रोगी, अपाहिज, भुगतोगे तुम ही, मैं तो हाथ बँटाने से रही, घर का काम-काज भी करूँ और दफ्तर भी जाऊँ, मुझसे नहीं होता यह सब।''

''छोड़ दो सर्विस, किसने कहा था कि सर्विस करो?''

''और जब महीने में 70 हजार का चैक लाकर रखती हूँ तुम्हारे हाथ पर, तब तो मुँह में पानी भर आता है।''

"देखो सुरभि, नौकरी का अहसान मुझ पर मत डालो, अरे घर में नौकर हैं, उनसे मँगा लिया करो सामान।"

"पता नहीं तुम्हें कि नौकर कैसा-कैसा सामान लाते हैं और ओने-पोने में लाते हैं, पापाजी जो झाड़ू 30 रुपए में लाए थे, वही नौकरानी 45 रुपए में लाई। मैंने उससे पूछा, 'अरी 45 रुपए की झाड़ू? पापाजी तो 30 रुपए की लाते हैं।' तो बोली, 'मँगवा लिया करो ना उन्हीं से, इनका सामान भी खरीदकर लाओ और ऊपर से चोर भी कहलाओ।' और अगले दिन काम पर न आने की वार्निंग देकर बड़बड़ाती चली गई। यही हाल दूधवाले का है, लाख कहो, पर पानी मिलाने से बाज नहीं आता—पापाजी मदर डेयरी से दूध ले आते हैं तो क्या बुरा है, मुन्ने को स्कूल छोड़ आते हैं पापा जी, तो क्या बुरा करते हैं, किसी नौकर पर विश्वास कर लूँ? पता लगेगा किसी दिन कि वह रास्ते में बीड़ी सुलगाने में लग गया और बच्चे का एक्सीडेंट हो गया—हर वक्त आप तो पापा, पापा की रट लगाए रहते हैं, यह तक भी नहीं होता तुमसे तो कि उनकी पेंशन में से ही कुछ ले लिया करें।"

"खबरदार सुरभि, पापा की पेंशन का जिक्र किया तो, भूलकर भी कभी पेंशन के रुपयों का ख्याल मत कर बैठना, मैं दृढ़ प्रतिज्ञ हूँ, कि उनकी पेंशन को हाथ भी न लगाऊँगा, फिर मुझे जरूरत क्या है, उनसे रुपए लेने की, जिस दिन हमें रुपयों की जरूरत पड़ेगी, वे अपने आप ही दे देंगे।" और आवाज़ें बंद हो गईं। इस सब वार्तालाप को सुनकर मैं कुछ प्रसन्न हुआ, मुझे लगा जैसे मेरे प्लान से सफलता की गंध आनी शुरू हो गई हो।

इसके दो एक दिन बाद अग्रवाल साहब आए, दुआ सलाम हुई। मैंने पूछा, "कहिए, अग्रवाल साहब, सब कुशल मंगल, कैसे कष्ट किया?" वे बोले, "कहना यह था लालाजी, 'मेरा अपना घर' की चाबी दे दीजिए।" मैं बोला, "क्यूँ, क्या हुआ?"

वे बोले, "हुआ कुछ नहीं, बहू बेटे जिद कर रहे हैं कि पिताजी छोड़ो इन सब झगड़ों को, आप हरिद्वार क्यों नहीं चले जाते, जब वहाँ अपना सुसज्जित कमरे का एक सैट है, गंगाजी का किनारा है, वहाँ भगवद् भक्ति में मन लगेगा, सारी जिंदगी गृहस्थी की चक्की में पिसते रहे, अब आराम से स्वतंत्र जीवन भोगिए।" इसे सुनकर मेरे भीतर वैसी ही एक

सरसराहट-सी हुई जैसे किसी की मन मुराद पूरी होने पर मिलती है। मैं बोला, ''हाँ, ठीक है अग्रवाल साहब, भगवान से नाता तो पहले ही जोड़ लेना चाहिए था, इतनी देर क्यूँ कर दी?''

वे बोले, ''लालाजी, कर तो पहले ही चुका होता मैं यह काम, पर पोता आड़े आता रहा, ऐसा लगता था मानो मेरा एक हाथ बहू-बेटे के हाथ में है, दूसरा मेरे पोते के हाथ में, बहू-बेटे मेन गेट से बाहर की ओर खींच रहे हैं, तो रोककर पोता भीतर की ओर, इसी रस्साकशी में बँधा बिस्तर कई बार खोलना पड़ा, मैं अपनी आत्मा की आवाज के विरुद्ध रुक जाता था, मोह की जीत हो जाती थी।'' मैंने बात काटी, ''क्या अब मोह पर विजय पा ली है अग्रवाल साहब?''

''नहीं लालाजी, मोहजयी हो जाता तो रोना किस बात का था।'' ''फिर?'' ''अब पोता कुछ बड़ा हो गया है, उसे अपनी माँ की सीख समझ में आने लगी है। अब वह नहीं रोकता, मैं चाहता हूँ कि वह मुझे रोके, उसके बिना मेरा मन नहीं लगेगा, बेटे-बहू का मोह तो अब मुझे रहा नहीं, पर पोता, वह तो जैसे मेरी जान है, उसे कैसे छोड़ूँ?'' कहते-कहते अग्रवाल साहब का कंठ अवरुद्ध हो गया, मैं देख रहा था कि उनकी हिड़की बँधने वाली है, मैंने स्थिति को सँभाला और बोला, ''अरे अग्रवाल साहब, सुना है आपने कि डॉ. शर्मा अभी पिछले हफ्ते ही 'मेरा अपना घर में' शिफ्ट हो गए? आप फिक्र क्यूँ करते हैं, वहाँ आपको सब सुख-सुविधाएँ मिलेंगी और डॉ. शर्मा तो आपके घनिष्ट मित्रों में से हैं, खूब गुजरेगी जब मिल बैठेंगे मित्र दो, सब ठीक हो जाएगा।'' कहकर मैंने सेफ से चाबी निकाली और अग्रवाल साहब को चाबी सौंपते हुए कहा, ''गुडलक, टेककेयर और हाँ, यूँ तो वहाँ खाने-पीने का सब प्रबंध है ही, फिर भी आपको जब भी रुपयों की आवश्यकता हो वहाँ मुनीम जी से ले लीजिएगा, सोसायटी के नियमानुसार आपके द्वारा जमा कराए गए बीस हजार रुपए, अब तो ब्याज सहित काफी हो गए होंगे, वे रुपए आपके ही हैं, चाहे जैसे खर्च कीजिए।''

अग्रवाल साहब भी गए। कुछ ही दिन बीते थे कि एक सज्जन और आए। उन्हें देखकर मैंने कुछ वैसा ही महसूस किया जैसे किसी को अपने अनिष्ट की आशंका सच साबित होती नजर आए पर मुझे अनिष्ट के विपरीत प्रसन्नता की आशंका हुई, लगा कि सफलता का एक और तमगा

लगने जा रहा है मेरे प्लान को। मैं बोला, "आइए सिंह साहब, कहिए क्या हाल हैं?" "सब ठीक है।" "हाँ वह तो आपके चेहरे से दिखाई पड़ रहा है। प्रभु करे सब ठीक हो, सुनाइए किसलिए कष्ट किया?" वे बोले, "जी, हरिद्वार वाले कमरे की चाबी चाहिए।"

"क्या आप जा रहे हैं?" "नहीं मैं तो नहीं, बहू बेटे सोचते हैं, कुछ दिन हरिद्वार घूम आएँ।"

"सॉरी सिंह साहब, इस कार्य के लिए आपको चाबी नहीं दी जा सकती, आप खुद जाना चाहें तो शौक से जाइए।" मैंने कहा। इस पर वे बोले, "मैं जाऊँगा तो उन्हें मेरे पास आने की इजाजत नहीं दी जाएगी?" "क्यूँ नहीं? आखिर आप माँ बाप हैं, माँ बाप से मिलने, बेटे बहू क्यों नहीं जा सकते, जरूर जा सकते हैं, पर नौजवानों, पिकनिक का सैर-सपाटे के लिए वहाँ कोई स्थान नहीं, वह हमने अपनी शर्तों में साफ-साफ लिखा है, और आपको सभी नियम शर्तें पढ़वा दी गई थीं। माफी चाहता हूँ, मैं नियम विरुद्ध कार्य नहीं कर सकता।"

थोड़ी देर बाद सिंह साहब बोले, "असल बात यह है लालाजी, मैं खुद ही जाना चाहता हूँ, सोचता था, घर की लड़ाई घर में ही रहे, बाहर सड़कों पर क्यूँ जाए, इसलिए मैंने झूठ कहा था, लालाजी, अब तंग आ चुका हूँ...इन दुष्टों का तो नहीं, पर मुझे पोते का खयाल आता है, मैं उसके सवालों के जवाब नहीं दे सकता।"

मैंने मन में सोचा, 'फिर वही पोते की अड़चन, दुख का कारण।' मैंने पूछा, "क्यूँ वह कोई ऐसा सवाल करता है जिसका जवाब आपके पास न हो?"

"बस यूँ ही समझ लीजिए—वह पूछता है, 'दादाजी, पहले तो आप धूप वाले कमरे में सोते थे अब आप पीछे के अँधेरे वाले कमरे में क्यों सोते हो?' 'पता नहीं बेटे?' 'दादाजी, उस कमरे में तो आप बड़े से पलंग पर सोते थे, यहाँ छोटी-सी खटिया पर क्यूँ सोते हो?' 'पता नहीं बेटे?' 'दादाजी रात मुझे मम्मी ने मारा।' 'क्यूँ बेटे?' 'मैंने कहा था दादा जी के पास सोऊँगा, मम्मी बोली "नहीं!" मैं वहीं सोऊँगा, वहीं सोऊँगा, कहा, और मम्मी ने जोर से थप्पड़ मारा, बोली, कह दिया कि नहीं, अपने पापा के पास सोएगा, आँखें निकालकर इतने जोर से मुझे मारने को फिर से हाथ उठाया कि मैं डर गया, क्यूँ नहीं सोने देती मम्मी मुझे आपके पास?'

'पता नहीं बेटे?' 'बताइए ना दादाजी, मम्मी मुझे अब क्यूँ नहीं सोने देती आपके पास?' 'मुझे रात को खाँसी उठती है ना, इसमें कई बार सू सू करने जाना पड़ता है, सोचा होगा तेरी नींद डिस्टर्ब होगी, शायद इसीलिए तुझे अपने कमरे में सुलाने लगी हो।' 'दादाजी, जब मम्मी पापा के फ्रेंड्स आते हैं तो आप ड्राइंग रूम में क्यों नहीं आते?' 'पता नहीं बेटे।' 'आपके पास पापा क्यूँ नहीं उठते-बैठते?' 'पता नहीं बेटे।' 'दादाजी, पता है आपको, मम्मी बहुत बड़ा टी.वी. लाई है, मम्मी पापा और मैं टी.वी. देखते हैं तो बड़ा मजा आता है, आप भी बैठेंगे ना हमारे साथ?' 'पता नहीं बेटे।' 'पता नहीं, पता नहीं कह देते हैं दादाजी, आपको कुछ नहीं आता? आप झूठ बोलते हैं, बताइए ना दादाजी! मुझे बहुत बुरा लगता है, बताइए ना। दादाजी, मैं आपकी गोदी में बैठकर टी.वी. देखूँगा, आप क्यूँ नहीं चलते मेरे साथ टी.वी. देखेंगे।' हारकर मैंने उसे कहा, 'बेटा, इन सवालों के जवाब तुझे अभी समझ नहीं आएँगे जब तू बड़ा हो जाएगा, तेरी शादी हो जाएगी, तू बड़ा आदमी बन जाएगा, फिर तेरे एक बेटा होगा, फिर तू बूढ़ा हो जाएगा, फिर तुझसे तेरा पोता इसी तरह के सवाल पूछेगा, तो तू उसके सवालों के जवाब समझ पाएगा, अभी तू नन्हा, मुन्ना है, अभी तू नहीं समझेगा। कहते कहते मेरी आँखों से आँसू बह चले, पोते ने अपनी नन्हीं-नन्हीं हथेलियों से मेरे आँसू पोंछे और कहा, 'क्यों रो पड़े दादाजी, क्या हुआ?' मैंने कहा, 'कुछ नहीं बेटा, आँख में कुछ गिर गया है।' कहकर मैंने पोते से पीछा छुड़ाया। लालाजी! चाबी मुझे ही चाहिए।''

सुनकर मैं हर्षित हो उठा, बोला, ''इसमें छिपाने की कौन-सी बात थी?'' मुझे लगा जैसे पिछली रात लगाए पौधे सुबह फूलों से भर उठे हों। ''यह लीजिए चाबी'', कहते हुए मैंने उन्हें चाबी सौंपते हुए कहा, ''गुडलग सिंह साहब, टेककेयर।'' उन्होंने मेरी ओर एक याचक दृष्टि से देखा, ''लालाजी! प्लीज, इसकी किसी को कानों कान खबर न लग जाए, लड़के पर इसका अच्छा प्रभाव नहीं पड़ेगा।'' सुनते ही मैंने कहा, ''धन्य हो सिंह साहब, लगता है हम नहीं सुधरेंगे। कितने भोले हैं आप सिंह साहब, 70 वर्ष के हो गए पर अभी तक आपकी समझ में यह नहीं आया कि ऐसी बातें छिपाए नहीं छिपतीं, पड़ोसियों की दृष्टि बड़ी पैनी होती है, उनके मस्तिष्क की एक्सरे मशीनें तो दीवार के पार की घटनाओं की भी फोटो खींच लेती है, आपके आस-पड़ौस वाले कभी के समझ गए होंगे

कि आपकी संतान कितनी लायक है। तरल नेत्रों से सिंह साहब धीरे-धीरे बाहर निकल गए, उनकी चाल बता रही थी कि उनकी दो टाँगें उनके शरीर का भार नहीं उठा पा रही हैं, न जाने कितना भारी गट्ठर ढोए जा रहे हैं वे सिर पर जैसे अपने ही शव को वे अकेले ही ढोए जाने को अभिशप्त हैं।

देखते ही देखते, 'मेरा अपना घर' की चाबियाँ मेरी अलमारी से एक-एक कर सही मालिक के हाथ में पहुँच रही हैं। अपने सपनों की कॉलोनी 'डिजाइनर कफन कालोनी' में प्रायः चक्कर काटना मेरा शगल बना हुआ था। एक दिन यूँ ही प्रातः घूमते-घूमते एक घर से, मुझे कुछ धीमी-धीमी आवाजें सुनाई पड़ीं।

"पिताजी, आप समझते क्यूँ नहीं, आखिर मेरी भी कोई गृहस्थी है कि नहीं? मेरा अपना कोई स्टेटस है कि नहीं? आप चौदहवीं सदी में जी रहे हैं।" इसके बाद कुछ और आवाजें उस आवाज में मिल गईं, एक स्त्री की, दो एक बच्चों की तो कुछ स्पष्ट सुनाई नहीं पड़ा कि क्या वार्तालाप चल रहा था। इतना पल्ले जरूर पड़ा कि आपस में कुछ खटपट है, फिर कुछ जोर की आवाज आई, "हरामजादे, तुझे इसलिए पढ़ाया लिखाया था तू जिंदा बाप को ही चिता पर धर दे और उसका कफन बेचकर ऐश करे।"

"अब मुझसे बर्दाश्त नहीं होता पिताजी, इस सबसे अच्छा है मैं जहर खाकर सो जाऊँ, फिर आप करना मन मानी।" फिर बूढ़े की आवाज सुनाई पड़ी, "ठीक है, यह जीवित मुर्दा बाप, इस दक्षिणमुखी अर्थी के कफन से बाहर निकल जाता है, तू अपनी इस लुगैया को लेकर इस कफन पर ऐश कर।" खट से कोठी का दरवाजा खुला और वृद्ध उससे बाहर निकला, बाहर मुझे खड़ा देखकर वह आश्चर्यचकित हो गया और बोला, "अरे लालाजी आप?" "हाँ भैया जी, मैं लाला हरचरण दास।"

"मैं तो आपसे ही मिलने आ रहा था।"

"चलो कोई बात नहीं, मैं ही चला आया, क्या बात है?" भीतर ही भीतर उठी आनंद की लहरों से झूमता-सा मैंने कहा।

" 'मेरा अपना घर' की चाबी चाहिए मुझे।" "चलिए, अभी देता हूँ।" उन्हें लेकर अपने कार्यालय गया और अलमारी से चाबी निकालकर उनके हाथ पर रख दी, "गुड लक, टेककेयर।"

मेरे सिर से मानो सब भार उतर गया है, मैंने अपने को बड़ा हल्का महसूस किया, मेरा मिशन सफल हो गया, समर्थ असहायों को मैंने उन्हें गौरव के साथ जीवन व्यतीत करने के लिए एक घर दे दिया जिसे वे 'मेरा अपना घर' कहकर आत्म संतोष प्राप्त करते हुए अंतिम साँस ले सकेंगे, जहाँ उनकी मांस रहित हड्डियों पर किसी अपनी आत्मा के अंश की गिद्ध दृष्टि नहीं पड़ सकेगी।

× × ×

प्रिय पाठको,

इससे पूर्व कि आप मेरी इस खिचड़ी को साहित्यिक चोरी नाम से विभूषित करें, मैं स्वयं स्वीकार करता हूँ कि यह एक साहित्यिक चोरी है—बीज चुराया है मैंने मुंशी प्रेमचंद की कहानी 'कफन' से, हाँ भूमि मेरी अपनी है, खाद पानी गुड़ाई, सिंचाई, कटाई भी मेरी अपनी ही है। शालीन शब्दों में कहूँ तो यह कफन की संकर-संतति है—खैर इसे जो भी कहें, कहानी कहें, अकहानी कहें, शैखचिल्ली के सपने कहें, 'कहानी' में घुसपैठ कहें, जो भी कहें, यह आप पर निर्भर है, किस वर्ग में इसे रखा जाए, यह मेरा काम नहीं।

बात जुलाई 1949 की है, मैंने इलाहाबाद यूनिवर्सिटी में एम.ए. हिंदी में प्रवेश लिया था, मुशी प्रेमचंद की कहानी 'कफन' पढ़ चुका था, एक जिज्ञासा हुई कि मुंशी प्रेमचंद के दर्शन तो कर नहीं सका, उनके, 'कफन' के बाद उनकी संतति के तो दर्शन कर लूँ। मुझे थोड़ा-सा स्मरण है, लेकिन जो कुछ है, फ्रिस्टल क्लीयर है—मैं इलाहाबाद में एक विशाल कोठी पर पहुँचा, दरवाजे पर नॉक किया, दरवाजा खुला, मैं भीतर पहुँचा, ड्राइंग रूम में बैठा, बाहर बहुत गर्मी थी, ड्राइंग रूम की छत इतनी ऊँची थी कि ऐसी छत की कल्पना भी आज नहीं की जा सकती, पंखे का स्विच ऑन हुआ, एयरकंडीशनर जैसी ठंडी हवा का अहसास हुआ। तभी एक भद्र महिला, साड़ी पहने, ठंडे पानी का एक गिलास लेकर आई, मैंने हाथ जोड़कर नमस्कार किया, उन्होंने मुस्कराकर नेत्रों से मुझे बैठ जाने का इशारा किया और पानी का गिलास मेरी ओर बढ़ाया, मैंने पानी का गिलास पकड़ा, उनके चेहरे पर दौड़ती-सी नजर डाली और मैं ठगा-सा रह गया, अत्यधिक शालीन और सुंदर। श्रीपत राय की पत्नी थी, कदाचित् मुस्लिम थी—"कहिए।" "जी, राय साहब से मिलना था।" "वे तो इस

समय नहीं हैं।'' ''मैं चलता हूँ, धन्यवाद, फिर कभी आऊँगा।'' कहकर मैं कोठी से बाहर निकल आया लेकिन 'फिर कभी' आया नहीं और मैं श्रीपत राय साहब के दर्शन नहीं कर सका। मन में एक विचार-सा कौंधा—चलो मुंशी के दर्शन तो नहीं हुए, कम-से-कम कफन वाले मुंशीजी की संतान के रहन-सहन के तो कुछ-कुछ दर्शन हुए। 'पिता की विरासत पर संतान की ऐश' जैसे कुछ कुछ भाव ने मन में अंगड़ाई ली।

इस बात को गुजरे साठ वर्ष से ऊपर हो गए, 'कफन' के पुष्टिवर्धक समाचार, मीडिया के माध्यम से अक्सर मिलते रहे, कफन दर कफन मेरे मानस पटल पर जमते गए, मुंशीजी के 'कफन' से संतान को एक वक्त की दारु ही नसीब हुई थी, आज की संतति को तो स्कॉच और चिकन मिल रही है, तब का कफन मरने के बाद मिला था, आज का कफन मरने से पूर्व तैयार हो जाता है, तब का कफन संतान तैयार करती थी, आज का अपना कफन व्यक्ति स्वयं तैयार करता है, तब की संतान कुपड्ढी लाचार होती थी, आज की संतान संभ्रांत, संस्कारी, योग्य और समर्थ होती है—समय के साथ इतना परिवर्तन तो लाज़िम था।

अभी कुछ दिन पूर्व मेरे एक मित्र ने एक सच्ची घटना सुनाई—

''मैं, हरिद्वार में एक धर्मशाला में टिका हुआ था, बराबर वाले कमरे में एक सज्जन ठहरे हुए थे। रात में मुझे लगा कि वे रो रहे हैं। प्रातः उठा तो वे सामने खड़े दिखाई दिए, मुझसे बोले, ''गंगा नहाने चल रहे हो?'' ''हाँ, यहाँ आया किसलिए हूँ, चलूँगा।'' ''तो चलिए।'' और मैं उनके साथ हर की पौड़ी की ओर चला। वे मुझे गंगापार, एक एकांत से स्थान पर ले गए, बोले, ''यहाँ एकांत है, अच्छे से नहाएँगे, देखो यहाँ पानी गहरा है, आप यदि तैरना नहीं जानते तो यहाँ स्नान न करें।'' मैं बोला, ''तैरना तो मुझे नहीं आता।'' वह बोला, ''मुझे आता है।'' मैंने पूछा, ''रात आप रो रहे थे?'' ''हाँ शरीर दर्द कर रहा था, यह देखिए।'' कहकर उन्होंने अपनी बनियान, कमीज उतारी और मुझे अपनी पीठ दिखाई, मैंने देखा कि कमर पर जगह-जगह नील पड़े हुए थे। ''मेरे बेटे बहू ने बहुत मारा मुझे।'' कहकर वे फफक पड़े। झट अपनी धोती की फेंट खोली, दोनों हाथों पाँवों पर लपेटी और इससे पूर्व कि मैं अनुमान लगा सकता कि वे क्या कर रहे हैं, वे झट गंगा में लुढ़क गए और अदृष्ट हो गए—मानो कह रहे हों, ''देखो हूँ ना मैं एक अच्छा तैराक, क्षण भर

में ही इहलोक से परलोक तक तैर गया।''

इस कथा का रथ अब विराम लेना चाहता है, मेरा सूर्य भी तो अब अस्तंगत होने को है अतः इस कथ्य को इस अपील के साथ विराम देता हूँ कि नवयुवकों, महत्वाकांक्षियों, मेरी तुम लोगों से एक चेतावनी युक्त अपील है कि इतना पैसा खर्च कर जहाँ अपने बच्चों के लिए एक भव्य विला बना रहे हो वहाँ अपने अंचल की गंगा जैसी नदी के किनारे, दिल्ली जैसे प्रदूषित वातावरण से दूर, हरिद्वार जैसे आस्था केंद्रों पर, अपने लिए एक कमरे का छोटा-सा घर बनवा लो, जिसे तुम समय आने पर 'मेरा अपना घर' कह सको और उसमें शिफ्ट हो सको।

●

दहेज

"झर्रर...झर्रर," कोठी के मेन गेट की घंटी बजी।

"देखना तो रामसेवक, कौन है?" मिसेज़ भारद्वाज बोलीं। रामसेवक फुर्ती से मेन गेट पर पहुँचा, दरवाज़ा खोला, "जी?" उसने, नेत्रों से पूछा।

"भारद्वाज साहब हैं?"

"जी हाँ, आइए।" कहकर रामसेवक उन्हें ड्राइंग रूम में ले गया।

भारद्वाज जी ने आँखों से चश्मा उतारा, उनकी ओर देखा।" " जी, नमस्कार, मैं एम.एन. तिवारी, जयपुर से।" आगंतुक ने कहा।

"नमस्कार, नमस्कार, आइए बैठिए।"

तिवारी जी, भारद्वाज साहब के सामनेवाली कुर्सी पर बैठ गए और बोले, "जयपुर में आपके एक मित्र हैं उमाशंकर जी, मैं उन्हीं के पड़ौस में रहता हूँ, उन्होंने आपका परिचय दिया है।" "हाँ-हाँ, उमाशंकर जी, मेरे अच्छे मित्रों में से हैं, काफी दिन हो गए उनसे भेंट हुए।" भारद्वाज जी ने अखबार एक ओर रख दिया, आँखों पर चश्मा पहनते हुए कहा, "जयपुर से कब आना हुआ?"

"अभी सीधा, चला आ रहा हूँ, रात की बस से चला था, आजकल गर्मियों में रात्रि-यात्रा कुछ ज्यादा ठीक रहती है।" तिवारी जी ने कहा।

"अरे दिव्यालोक बेटा! जरा चाय तो ले आ।" कहते हुए, भारद्वाज जी ने, तिवारी जी की ओर देखा और बोले, "और सुनाइए, उमाशंकर जी ठीक-ठाक हैं?"

"जी ठीक हैं, वृद्धावस्था के कारण, घर से जरा कम ही निकलते हैं, वैसे स्वस्थ हैं।" तिवारी जी ने उत्तर दिया।

ठंडे पानी के दो गिलास और चाय के दो प्याले, एक ट्रे में रखे हुए दिव्यालोक पहुँचा और ट्रे मेज़ पर रख दी, हाथ जोड़कर तिवारी जी को

नमस्ते की। ''बेटा ये तिवारी जी हैं, जयपुर से, उमाशंकर जी के मित्र, और तिवारी जी, यह मेरा बड़ा बेटा दिव्यालोक।'' दिव्यालोक ने फिर हाथ जोड़े तिवारी जी के चरण स्पर्श किए, 'नमस्ते अंकल' कहा। तिवारी जी ने हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया, दिव्यालोक चला गया।

''लीजिए, चाय पीजिए,'' हाथ से इशारा करते हुए भारद्वाज जी ने पानी का गिलास उठाया। तिवारी जी ने भी पानी का गिलास उठाया और पानी पीकर बोले, ''जी चाय तो मैंने बस स्टैंड पर ही पी ली थी।'' ''लीजिए ना, इसमें संकोच कैसा?...मैं भी तो पीऊँगा।'' कहते हुए भारद्वाज जी ने चाय का प्याला उठाया और एक चुस्की ली। तिवारी जी ने प्याला उठाया और चाय पीने लगे।

''कहिए, कैसे आना हुआ? मेरे योग्य कोई सेवा?''

''ऐसा है कि पड़ौसियों से आपसी समस्याओं पर बातचीत तो होती रहती है, एक दिन मैंने उमाशंकर जी से कहा, 'प्रज्ञा एम.बी.ए. कर चुकी है' (प्रज्ञा मेरी बेटी है) इसके लिए कोई योग्य लड़का बताइए, आपकी नज़र में कोई हो तो? उन्होंने आपके पुत्र के विषय में बताया। मैंने उनसे आग्रह किया कि आप भी मेरे साथ दिल्ली चलिए तो जरा सहायता हो जाएगी, पर उन्होंने साफ इनकार कर दिया, 'तिवारी जी, वे सिफारिश में यकीन नहीं करते, आप स्वयं ही पहुँच जाएँ।' कहकर गर्दन हिला दी। बस इसीलिए आया हूँ।'' कहते हुए तिवारी जी ने, भारद्वाज जी पर एक याचक-दृष्टि डाली।

भारद्वाज बोले, ''पहले आप थोड़ा फ्रेश हो लीजिए, आराम कर लीजिए, फिर लंच पर बातें करेंगे...दिव्य! तिवारी जी को गेस्ट रूम में ले जाओ और देखो कि वहाँ स्नानादि का प्रबन्ध ठीक-ठाक है?'' भारद्वाज जी ने आवाज लगाते हुए कहा। दिव्य ने तिवारी जी की अटैची उठाई और तिवारी जी को ऊपर की मंजिल पर बने गेस्टरूम में ले गया। कमरे के एक कोने में गोदरेज की एक रैक में अटैची रख दी।

''यह अटैच्ड बाथरूम है अंकल, इसमें बाल्टी, मग्घा, साबुन, शैम्पू, टॉवल रखा है। पंखे से काम न चले तो ए.सी. ऑन कर लीजिए और फ्रेश होकर आराम कर लीजिए।'' कहकर दिव्यालोक चला गया। तिवारी जी ने देखा, एक डबल बेड, उस पर बिछी हुई साफ सुथरी चादर, दो तकिए, साइड में एक छोटी सी मेज, मेज के दोनों ओर एक-एक आराम कुर्सी,

ऊपर पंखा, रोशनदान में एक ए.सी., खिड़कियों पर पर्दे, साफ सुथरा कमरा, सभी सुविधाओं से ल्हैस। तिवारी जी प्रभावित हुए, जेब से सिगरेट निकाली, कुर्सी पर बैठ गए। सिगरेट जलाकर एक कश खींचा और सोचने लगे, ''मामला बनता नजर नहीं आ रहा, मेरा स्टैंडर्ड इनसे मैच नहीं करता, उमाशंकर जी को यह सब मुझे बताना चाहिए था, खैर, अब आया हूँ तो बातें तो करनी ही होंगी।'' और गुसलखाने में घुस गए। मन-ही-मन कह रहे थे, बड़े संस्कारी लोग हैं।

स्नानादि से निवृत्त हो, तिवारी जी कपड़े बदलकर बैठे ही थे कि रामसेवक आ गया, ''सर, आइए, नाश्ता कर लीजिए।'' तिवारी जी रामसेवक के पीछे-पीछे नीचे उतर आए। गेस्ट रूम के बाहर रखे, आठ-दस गमलों में खिले फूलों की महक और खूबसूरती, दोनों ने तिवारी जी का मन मोह लिया। तिवारी जी सोफे पर बैठ गए।

मिसेज भारद्वाज आईं, हाथ जोड़कर धीमी स्मिति से बोलीं, ''नमस्कार तिवारी जी, मैं मिसेज भारद्वाज।'' तिवारी जी एक दम खड़े हो गए, हाथ जोड़कर बोले, ''नमस्कार बहिन जी, कहिए ठीक-ठाक?''

''जी सब प्रभु-कृपा है, आइए नाश्ता कर लीजिए।'' कहते हुए उन्होंने डाइनिंग टेबुल की ओर इशारा किया। भारद्वाज जी ने भी पत्नी के स्वर में स्वर मिलाते हुए कहा, ''आइए तिवारी जी, प्लीज़।''

''क्यों व्यर्थ में कष्ट करते हैं?'' ''किसी को नाश्ता कराने में कुछ कष्ट होता है? मुझे तो होता नहीं, बहरहाल मुझे कभी नहीं हुआ कष्ट किसी को खिलाने-पिलाने में, आइए बैठिए।'' संकुचित से तिवारी जी कुर्सी पर बैठ गए।

भारद्वाज जी ने अपनी बात फिर शुरू कर दी, ''देखिए तिवारी जी, हम ग्रामीण पृष्ठभूमि के हैं, ये सब तामझाम जो आप देख रहे हैं ना, ये सब तो हमारी भारतीय संस्कृति में पाश्चात्य घुसपैठिए हैं, इन पर तो जोर-जबरदस्ती चली नहीं हमारी, मेरे पिताजी को तो यह सब कभी अच्छा नहीं लगा, वे सदा, चौके में आसन पर बैठकर भोजन किया करते थे, गाँव में, वे गढ़मुक्तेश्वर के मूढ़े पर बैठा करते थे, प्रतिवर्ष वे कार्तिक गंगा स्नान पर, गढ़ गंगा नहाने जाया करते थे, लौटते समय एक-दो मूढ़े वहाँ से ले आया करते थे। हमारे रंग-ढंग को देखकर कभी-कभी वे हमें म्लेच्छ तक कह दिया करते थे। एक बात उन्होंने हमारे दिलो-दिमाग में कूट-कूट

कर भरी हुई थी, "बेटा, किसी के आतिथ्य सत्कार से कभी टोटे नहीं पड़ते, परमात्मा जितना खर्च करवाता है तुरन्त उसका रिप्लेसमेंट कर देता है, इससे धन का एक प्रवाह-सा बना रहता है, यदि इकट्ठा होता रहा तो वह ठहरे जल की भाँति सड़ जाता है। वे कहते थे, न जाने किस वेश में नारायण मिल जाएँ? फिर इंसान में नारायण का ही तो अंश है। उनकी दिनचर्या की सारी बातों का पालन तो मैं नहीं कर सका पर उनके आतिथ्य-सत्कार को सीख को मैंने हृदय से स्वीकार किया हुआ है, आतिथ्य-सत्कार से मुझे एक विशेष तृप्ति मिलती है, सब कुछ उसी का दिया हुआ है, उसके दिए हुए में से एक अंश, क्या मैं उसी के लिए नहीं खर्च कर सकता? ऐसा न करना, सरासर बेईमानी होगी। तो 'त्वदीयं वस्तु गोविंदः तुम्यमेव समर्पये', तेरा तुझको सौंपते क्या लागै है मोर, चलिए तिवारी जी, नाश्ता शुरू कीजिए।"

नाश्ते में, अंकुरित मूँग, बिस्कुट, ब्रेड बटर, एक डलिया में सन्तरे, केले, सेब रखे हुए थे, मसालेदानी, नींबू की कटी हुई फाँके। "मूँग में नींबू, नमक अपने स्वादानुसार डाल लीजिएगा, चलिए शुरू कीजिए, यह सब ठंडा हो रहा है, वरना इनका भाषण चलता रहेगा!" कहकर मिसेज भारद्वाज चली गईं।

नाश्ता शुरू हो गया। तिवारी बोले, "आइए मिसेज भारद्वाज आप भी आइए, दिव्यालोक जी कहाँ हैं, वे भी कर लेते नाश्ता? मिसेज भारद्वाज बोली, "आप लीजिए, मैं थोड़ा ठहरकर करूँगी, अभी ठाकुर जी को स्नान वगैरह कराना बाकी है, दिव्य तो हैं नहीं, उसे आज छुट्टी के दिन भी ऑफिस जाना पड़ा।"

"दिव्यालोक जी की शिक्षा कहाँ तक हुई है?"

"रुड़की से सिविल में डिग्री ली है, अब यहाँ सी.पी.डब्ल्यू.डी. में सेवारत है। किसी और चीज की जरूरत हो तो निःसंकोच बोल दीजिएगा।" नाश्ता समाप्त होते-होते रामसेवक दूध, चाय की ट्रे ले आया। भारद्वाज जी बोले, "देखिए तिवारी जी, इस शीशी में हॉरलिक्स है, जो इच्छा हो, निःसंकोच लीजिएगा—दूध, चाय, हॉरलिक्स। कॉफी हम पीते नहीं, आप कहें तो बनवा दें?" "जी नहीं" कहते हुए तिवारी जी ने खाली कप उठाकर उसमें केतली से चाय उड़ेली, दो चम्मच चीनी डाली और ऊपर से दूध डाला—"आप चाय नहीं पीते?"

भारद्वाज जी ने कहा, "मैं सुबह एक प्याला बेड टी लेता हूँ, एक प्याला शाम को, बस।"

नाश्ता खत्म होने के बाद भारद्वाज बोले, "अब आप ऊपर कमरे में आराम कर लीजिए, थक गए होंगे। दस बज गए हैं, एक बजे लंच पर बैठकर आराम से बातें करेंगे।"

तिवारी जी ऊपर गए, कमरे का दरवाजा खोला, दरवाजे पर पर्दा डाला और पलंग पर लेट गए। पड़ते ही उनकी आँख लग गई।

एक बज गया, रामसेवक आया, उसने गेस्ट रूम के दरवाज़े पर नॉक किया, "सर"....कोई उत्तर न सुन वह कमरे के भीतर गया और देखा कि तिवारी जी बेहोश पड़े सो रहे थे। रामसेवक ने थोड़ी ऊँची आवाज़ में, "सर" कहा। वे चौंककर उठ बैठे, शर्मिन्दा से होकर बोले, "बहुत थक गया था, आँख लग गई, पता ही नहीं चला।" "चलिए भोजन कर लीजिए," कहकर रामसेवक चला गया। तिवारी जी बाथरूम में गए हाथ-मुँह धोया और नीचे उतर गए। भारद्वाज जी ने डाइनिंग टेबुल की ओर इशारा किया, "आइए भोजन कर लीजिए।" भारद्वाज एक कुर्सी पर बैठ गए, तिवारी उनके बराबर वाली कुर्सी पर बैठे, मिसेज भारद्वाज परोसने लगीं।

"शुरू कीजिए तिवारी जी।" कहकर भारद्वाज ने अपनी रोटी से एक-एक कर तीन ग्रास तोड़े और एक ओर रख दिए, दाएँ हाथ की अँगुलियों को एक साथ मिलाकर अंजुरी सी बनाई, उसमें थोड़ा-सा जल डाला, बाएँ हाथ की ओर से शुरू कर थाली के चारों ओर जल-धारा छिड़कते हुए एक वृत्त में गिराया। दोनों हाथ जोड़ अन्नदेव का स्मरण किया और भोजन करना शुरू कर दिया। तिवारी ने कहा, "मिसेज भारद्वाज आप भी आ जाइए।" "मैं बाद में करूँगी, कोई परोसने वाला भी तो चाहिए।" लंच समाप्त हुआ, तिवारी जी बोले, "खाना बहुत अच्छा बना है, दाल, सब्जी, रायता, अचार, पापड़ सब बहुत बढ़िया। आपके यहाँ पहले ही पापड़ दे देते हैं भोजन में। हमारे राजस्थान में बिना तला पापड़ सबसे अन्त में देते हैं, पापड़ लेने का मतलब हमारे यहाँ यह होता है कि पापड़ अन्तिम खाद्य है, इसके अलावा सूखा पापड़ गले में लगी भोजन की सब चिकनाई सोखने में ब्लाटिंग पेपर का काम करता है।" इस पर भारद्वाज बोले, "हमारे यहाँ मधुरेण समापयेत्" लीज़िए,

रसगुल्ला खाइए, लीजिए, लीजिए।'' तिवारी जी ने एक रसगुल्ला उठाया और मुँह में डाल लिया। भोजन समाप्त हुआ भारद्वाज जी ने कोठी का मेन गेट खोला, एक ग्रास कौवे को डाला, एक कुत्ते को और एक ग्रास बाहर की बाउंड्री वॉल पर रख दिया, ''यह रहा गऊ-ग्रास'' और उसे कौवा ले उड़ा। तिवारी यह सब देख रहे थे। भारद्वाज ने कहा, ''गउओं को तो शहर निकाला मिल गया है यहाँ उसके हिस्से का भी काक महाशय ले उड़े, चलो कोई बात नहीं, यह भी तो उसी स्रष्टा की सृष्टि में से एक है।'' वॉश बेसिन पर कुल्ला किया और सोफे पर बैठ गए।

तिवारी जी उनके सामने वाली सिंगल सीट पर बैठ गए। तिवारी जी बोले, ''आज्ञा हो तो एक सिगरेट पी लूँ?'' ''जी हाँ, अवश्य!'' कहकर भारद्वाज ने कहा, ''रामसेवक, एश ट्रे ले आओ।'' रामसेवक सैंट्रल टेबिल पर एश ट्रे रख गया, तिवारी जी ने आराम से सिगरेट पी। तब तक मिसेज भारद्वाज भी वहाँ पहुँच गईं और भारद्वाज जी के बगल में बैठ गईं।

''और सुनाइए तिवारी जी।'' ''सुनाना क्या है भारद्वाज साहब, आपके बराबर का तो नहीं हूँ परन्तु साहस बटोर कर विनती करता हूँ कि आप मुझे अपने बराबर का स्थान देना चाहें तो मैं कृतज्ञ रहूँगा, अपने पुत्र के लिए मेरी कन्या को स्वीकार कर लीजिए?'' यूँ आपका मेरा क्या मुकाबला, मैं तो एक रिटायर्ड अध्यापक हूँ'' इस पर भारद्वाज बोले, ''स्टैंडर्ड से शादी होती है या कन्या से?'' तिवारी चुप...बोले, ''मेरा मतलब था कि रिश्ते, सम्बन्ध, बराबरी के हों तो बेहतर होता है, आखिर स्टैंडर्ड के भी मायने तो होते हैं।'' इस पर भारद्वाज जी बोले, ''स्टैंडर्ड? स्टैंडर्ड क्या होता है? आपको पता है तिवारी जी कि ये सब तामझाम, ये शोशाई, लोन महाराज की अनुकम्पा और किश्त महारानी की छत्रछाया में पनप रहे हैं? आपका अनुमान ही तो है कि मैं रईस हूँ, अनुमान जरूरी नहीं कि सच हो, मैं जानता हूँ, आप भी जानते होंगे दिल्ली की यह अधिकांश चमक-दमक ये चमचमाती मोटर गाड़ियाँ, ये आलीशान बिल्डिंगें, लोन की धरती पर खड़ी हैं, सो कॉल्ड स्टैंडर्ड को मैं रोज जमींदोज़ होते देखता हूँ। आए दिन देखता हूँ कि भरी बस्ती में बैंक के लठैत आए, स्टैंडर्ड वाले साहब की टाई पकड़ी, गाड़ी से नीचे खींचा और गाड़ी लेकर चले गए, स्टैंडर्ड नंगा हो टुकुर-टुकुर देखता रह गया। समझ नहीं आता कि आदमी स्वयं से धोखा करता है या औरों को, रिश्तेदारों को धोखे में

रखता है—चार दिनों की चाँदनी को एक दिन में ही ग्रहण लग जाता है, अतः मैं नहीं मानता इन सब फिजूल की बातों को। वह जब देता है तो छप्पर फाड़ के देता है और लेता है तो एक झटके में ही सब कुछ झटक लेता है। बीस रुपए की लाटरी से झुग्गी-झोंपड़ी वाले को, रातोंरात कोठी में शिफ्ट होते देखा है, टूटी साइकिल पर चलने वाले को एकदम चमचमाती मोटरगाड़ी में हवा में उड़ते देखा है, यकीन न हो तो गुड़गाँव, गाजियाबाद, नोएडा, ग्रेटर नोएडा आदि के उन किसानों को देख लीजिए जिनके पैरों को जूती और सिर को टोपी भी नसीब नहीं हुई, जो नमक की डली और प्याज के गंठे से अपनी जठराग्नि शान्त करते थे, आज चिकन और स्कॉच से उदरपूर्ति करते हैं। कुछेक बुद्धिमानों की बात तो मैं करता नहीं वरना अधिकांश किसानों की ईमानदारी, भलमनसाहत, निश्छलता को निगल गया है यह छप्पर फाड़ धन, यहाँ तक कि एक भोली-भाली कौम को बदनाम करके रख दिया है, उसे आतंक और गुंडागर्दी का पर्याय बना दिया है। तो तिवारी जी! मैं इस पैसे को कोई महत्त्व नहीं देता—"वह एक हाथ से लेता है तो दूसरे हाथ से झटक लेने की शक्ति का भी प्रदर्शन कर देता है।" भारद्वाज की बात काटते हुए मिसेज भारद्वाज बोली, "अब बस़ भी कीजिए, तिवारी जी आप अपनी बात कीजिए, इनकी तो आदत है भाषण देने की, इनके तो कोई बस पल्ले पड़ जाए"..."अरे रामसेवक, बेटा पानी ले आ" भारद्वाज जी ने थोड़ा उच्च स्वर में आवाज़ लगाई और तिवारी जी की ओर मुखातिब होते हुए बोले, "चलिए, मतलब की बात पर आइए, क्या कह रहे थे?"

तिवारी जी गद्‌गद हो उठे। उन्हें लगा कि भारद्वाज का छप्पर फाड़कर देने वाला हाथ मेरी ओर बढ़ रहा है। तिवारी जी ने जेब से एक लिफाफा निकाला उसे भारद्वाज जी की ओर बढ़ाते हुए बोले, "यह है मेरी बिटिया का फोटो और बायोडाटा, आपको जँच जाए तो देख लीजिएगा। पर आपकी हाँ सुनने से पहले मैं स्थिति जरूर स्पष्ट करना चाहूँगा कि मुझे अनुमानतः कितने रुपयों का प्रबन्ध करना होगा, मैं यह जरूर चाहूँगा कि आप पहले लड़की देख लें, दिव्यालोक जी को मैंने देख ही लिया है।"

भारद्वाज जी ने फोटो देख, पत्नी की ओर बढ़ा दिया और बायोडाटा देखने लगे, उसे भी पत्नी को दे दिया। "अरे रामसेवक पानी नहीं लाया?" कहकर भारद्वाज ने पत्नी को हल्की-सी कोहनी मारी और उनकी

ओर कनखियों से देख, भौंहों को ऊपर की ओर एक झटका दिया, एक प्रश्न सूचक रूप दिया, "कैसी लगी?" पत्नी ने भी हल्की सी स्मिति के साथ, हल्की सी गर्दन हिलाते हुए उत्तर दिया, "एक्सीलेंट।" तिवारी जी हाथ जोड़कर बोले, "अच्छा अब मुझे आज्ञा दीजिए, जल्दी बस पकड़ लूँगा तो रात 11-12 बजे तक घर पहुँच जाऊँगा, अगर आपको रुचे तो लड़की देखने का प्रोग्राम बना लीजिए, मुझे फोन कर दीजिएगा।"

"लड़की तो हम जरूर देखेंगे, तभी हाँ, ना का निर्णय कर पाएँगे।" इस पर तिवारी थोड़ा उत्साहित हो बोले, "धन्यवाद आपका, जरूर पधारिए, अपने आने की सूचना अवश्य दीजिएगा।"

"क्यूँ, कहीं बाहर जाने का प्रोग्राम है आपका?"

"नहीं, पर मुझे उस समय घर में तो होना चाहिए जब आप लोग आएँ।"

"कोई बात नहीं, हम आगामी रविवार को प्रातः 10 बजे आपके यहाँ पहुँच जाएँगे।"

"बहुत-बहुत धन्यवाद आपका।" हाथ जोड़ते हुए तिवारी ने कहा, "अच्छा अब मैं चलता हूँ।"

"जैसी आपकी इच्छा।"

तिवारी जी बस स्टैंड के लिए प्रस्थान कर गए। निराशा के बादल छँट गए और तिवारी जी के मुखमंडल पर एक कान्ति फैल गई। आई. एस. बी. टी. पहुँच, तिवारी जी ने जयपुर की बस पकड़ी। बस जयपुर की ओर उड़ी जा रही थी पर तिवारी जी को लग रहा था जैसे वह रेंग-रेंग कर चल रही हो। रात्रि 12 बजे वे जयपुर बस से उतरे, एकदम चुस्त-दुरुस्त, तेजी से बाहर निकले, ऑटो पकड़ी और घर पहुँच गए। पत्नी ने दरवाजा खोला, "बधाई हो, लगता है हमारी लड़की बड़ी भाग्यशालिनी है, वे लोग इसी रविवार को प्रज्ञा को देखने आ रहे हैं।" वे एक ही साँस में कह गए। "चलिए पहले खाना खा लीजिए।" पत्नी ने कहा। प्रज्ञा सो गई थी, झटपट खाना खाया और तिवारी जी शैयाशायी हो गए। पत्नी भी काम समेटकर सोने के लिए आ गई। दोनों बातें करते रहे, तिवारी ने अपने घर वापस पहुँचने तक का आँखों देखा सब वृत्तान्त सुनाया और लड़की के सुखद भविष्य की कल्पना करते-करते लेटे रहे। दोनों पति-पत्नी करवटों पर करवटें बदलते रहें। नींद का नाम नहीं और

सूर्योदय का समय हो गया।

दोनों पति-पत्नी उठ गए, एकदम फ्रेश। पत्नी से बोले, "देखो समय कम है, चार दिन ही शेष हैं रविवार में, घर ठीक-ठाक कर लो, नाश्ते पानी का बढ़िया सा प्रबन्ध कर लो और प्रज्ञा को ऐसा सजाना कि उर्वशी, मेनका भी ईर्ष्या कर उठें हमारी बिटिया से।"

भारद्वाज दंपती, रविवार के बजाय शुक्रवार को ही ग्यारह बजे तिवारी जी के घर पहुँच गए। तिवारी जी के घर का दरवाज़ा खटखटाया, उनकी बिटिया प्रज्ञा, बाल बिखेरे हुए, माथे पर पसीने की बूँदें, आटे में सने हुए हाथ, पुरानी सी तलवार कुर्ता पहने हुए दरवाज़े पर पहुँचीं, दरवाज़ा खोला, "जी अंकल!"

"बेटा तिवारी जी हमारे मित्र हैं, इधर आए थे, सोचा मिलते चलें, घर में हैं?"

"अंकल, इस समय तो पापा घर में नहीं हैं, आइए अभी आते ही होंगे, आइए।" कहकर, प्रज्ञा उन्हें अन्दर ले गई, एक कमरे में बिठा दिया जिसमें एक दीवान, एक छोटी-सी मेज़, चार कुर्सियाँ पड़ी हुई थीं। "बैठिए आप लोग।" प्रज्ञा बाजू से माथे का पसीना पोंछते हुए पंखा चला, कमरे से बाहर निकल गई। फ्रिज से ठंडा पानी निकाला, दो गिलास और पानी की बोतल ट्रे में रखकर ले आई, दोनों को पानी का एक-एक गिलास थमाया..."और अंकल? आंटी और पानी?"

"बस बेटा थैंक्स" उसने बोतल मेज़ पर ही रख दी, एक पत्रिका और समाचार-पत्र उन्हें देते हुए बोली, "अभी आते होंगे पापा, आप बस थोड़ी देर बैठिए।" कहकर चली गई। भारद्वाज ने फुसफुसाकर पत्नी से पूछा, "क्या ख्याल है?" "मन भावन" पत्नी ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया। दोनों खड़े हो गए, कमरे से बाहर निकले, "बिटिया अब हम चलते हैं, तिवारी जी से कहना हम फिर आएँगे।"

"अंकल चाय बन गई, एक प्याला चाय तो पीते जाइए।"

"ना बेटा, हम फिर आएँगे।" कहकर वे चले आए।

भारद्वाज ने घर पहुँचकर रात्रि में ही तिवारी जी को फोन किया "तिवारी जी नमस्कार, हम रविवार को नहीं आ पाएँगे लड़की देखने, कुछ जरूरी काम आ पड़ा है, फिर लड़की का देखना दिखाना क्या है, समझ लीजिए तिवारी जी हमने लड़की देख ली है, हमें पसन्द है, अब आपको

मंजूर हो तो बोलिए, हमारी तरफ से हाँ है।''

तिवारी जी खुशी से उछल पड़े, ''जी बहुत-बहुत धन्यवाद, प्रणाम, मिसेज भारद्वाज को भी मेरा प्रणाम कहिए, धन्यवाद आपका, हम कृतार्थ हुए।''

लेकिन तिवारी जी को कुछ अटपटा सा लगा, वे उमाशंकर जी के पास गए, उन्हें यह समाचार सुनाया। उमाशंकर जी मुस्कराए—''मैंने कहा था न तिवारी जी, कि ये भारद्वाज जी एक अजब पहेली हैं, वे तो लड़की देख भी गए, वे कहते थे कि लड़की देखने के पारम्परिक रिवाज से मैं सख्त नफरत करता हूँ, लड़की देखो, जरूर देखो, पर उसे नैचुरल रूप में देखो, ये जो लीप पोतकर लड़की दिखाते हैं वह मुझे कतई पसन्द नहीं—लड़की अपनी जींस उतारकर साड़ी पहने, सिर पर साड़ी का पल्लू ढके, क्रीम पाउडर, लिपिस्टिक से लिपी-पुती, चाय की ट्रे हाथ में लिए इस प्रकार चली आती है जैसे फैशन शो में कैटवॉक कर रही हो—एब्सर्ड! मेरे गले नहीं उतरती ये सब बातें।'' तिवारी जी हतप्रभ, उनकी वह पहेली भी सुलझ गई कि कल कौन आए थे मेरे पीछे घर में? उमाशंकर जी ने आगे कहा, ''तिवारी जी, शादी का प्रबन्ध कीजिए, अब मैं उनकी ओर से गारंटी लेता हूँ कि शादी पक्की।''

जैसे ही तिवारी जी ने घर पहुँच पत्नी को उमाशंकर जी के साथ हुई बातों का विवरण सुनाया, तिवारी जी का घर आँगन चहक उठा। उन्होंने झटपट भारद्वाज जी को फोन मिलाया—''हैलो!'' उधर से आवाज आई। तिवारी जी ने उत्तर दिया, ''हैलो, कौन, मिसेज भारद्वाज बोल रही हैं?'' ''जी हाँ बोल रही हूँ आप?''

''जी नमस्ते बहिन जी, मैं तिवारी जयपुर से।''

''नमस्ते भाई साहब! कैसे हैं?''

''सब प्रभु कृपा है, बधाई हो बहिन जी, आपने जो हम लोगों को आशीर्वाद दिया है, उसके लिए हम आभारी हैं, आपके कृतज्ञ हैं, बस आप आगे का प्रोग्राम तय कीजिए, भाई साहब कहाँ हैं? उन्हें मेरा प्रणाम कहिए, धन्यवाद, फिर बात करूँगा, अच्छा नमस्ते।'' कहकर तिवारी जी ने फोन रख दिया। मानो किसी जल्दी में हों।

विवाह सम्बन्धी सब बातें तय हो गईं, 21 नवम्बर शादी की तारीख पक्की हो गई। सभी कार्यक्रम, सगाई की तिथि, मैन्यू, सब बातें दोनों ने

मिल-बैठ तय कर लीं। लेन-देन, दान-दहेज आदि का कोई जिक्र नहीं हुआ। ''भारद्वाज जी आपकी डिमांड?'' कई बार तिवारी जी के पूछने पर एक ही उत्तर मिलता, ''बता देंगे।'' तैयारियों की गति, तीव्र से तीव्रतर होती हुई, युद्ध स्तर को प्राप्त हुई।

विवाह की घड़ी आ पहुँची, बारात दरवाज़े पर आ गई। श्रीमती तिवारी अपने पति की तुलना में अपेक्षाकृत अधिक व्यग्र और चिन्तित थीं। उन्होंने तिवारी जी से पूछा, ''कुछ मुँह खोला भारद्वाज जी ने?'' ''कई बार पूछ चुका हूँ, हर बार एक ही उत्तर देते हैं, बता देंगे, कौन-सी आफत आ गई?'' मेरे अधिक गिड़गिड़ाने पर उन्होंने कहा है, ''चिन्ता मत कीजिए तिवारी जी, समय आने पर सब बता देंगे।'' श्रीमती तिवारी झुंझलाकर बोलीं, ''आखिर कब आएगा उचित समय, लड़की फेरों पर बैठने जा रही है और उनका उचित समय ही नहीं आया।'' तिवारी जी ने समझाया, ''परमात्मा पर विश्वास रखो, वह जो करेगा ठीक ही करेगा।'' ''आप समझते क्यों नहीं, सबको अपने जैसा ही समझते हैं, ये लड़के वाले बड़े घाघ होते हैं, ऊपर-ऊपर दिखावा करते हैं, हमें कुछ नहीं चाहिए, हम तो पाँच कपड़ों में ही ले जाएँगे, भगवान का दिया सब कुछ है हमारे पास। वगैरह-वगैरह बोलते हैं और जब डोली उठने का समय आ जाता है तो कहते हैं, ''अरे आपने कार तो दी ही नहीं?'' और अपनी ईमानदारी का परिचय देते हुए कहेंगे, ''कार हम अपने लिए थोड़े ही ना माँग रहे हैं, आपकी लड़की ही बैठेगी उसमें,'' मेरा तो दिल धक्-धक् कर रहा है, पता नहीं प्रभु को क्या मंजूर है? और उनकी आँखें गीली हो गईं। एक ओर तो अपने कलेजे के टुकड़े को अलग कर देने की कचोटन दूसरे किसी अदृष्ट की आशंका से श्रीमती तिवारी विह्वल थीं। अज्ञात भय की हल्की सी रेखाएँ तिवारी जी के मुख पर भी खिंची हुई थीं।

श्रीमती तिवारी बोलीं, ''मेरा तो माथा ठनक रहा है।'' तिवारी जी ने हल्की-सी झुंझलाहट में कहा, ''अरी कह तो दिया, प्रभु सब ठीक करेंगे, जो होगा देखा जाएगा, जब ओखली में सिर दे ही दिया है तो अब मूसलों से क्या डरना, जो इस लड़की के भाग्य लिखा होगा वह तो होगा ही, विधि का लिखा न मेटन हारा।'' कहकर तिवारी विदा की तैयारी में लग गए। पति-पत्नी के बीच में आशा-निराशा का यह द्वन्द्व कदाचित् प्रकृत है, पति, आशा-आशा में बड़े से बड़ी जोखिम उठा लेता है और पत्नी जरा

सी जोखिम के लिए भी तैयार नहीं होती। प्रायः ऐसा देखा गया है।

विदाई की रस्म शुरू हो गई। पंडाल में बिछे हुए कालीनों पर एक ओर घराती बैठ गए दूसरी ओर बराती। बीच में आसन पर लड़का बैठ गया उसके सामने पंडित जी। कुशा से जल छिड़कते हुए पंडित जी ने "ओंगणानांत्वा" गणपति पूजन से विदाई रस्म शुरू कर दी। दोनों पक्षों की मिलाई हो गई, तिवारी जी को कुछ दहेज रूप में देना था वह भी दिखाया गया, कविता, सेहरे पढ़े हुए, आशीर्वचन भी हुए, तिवारी जी, हार कर, भारद्वाज जी से कुछ भी न पूछने का संकल्प कर चुके थे। अन्त में कन्या-पक्ष के लोगों में से किसी एक ने कहा, "आप भी तो दो शब्द बोलिए भारद्वाज जी!"

भारद्वाज जी खड़े हुए और उन्होंने बोलना शुरू किया, "बन्धुओं हमारे आचार्यों ने पृथ्वी पर तीन रत्नों का उल्लेख किया है।"

"पृथिव्यां त्रीणि रत्नानि जलमन्नं सुभाषितम्।
मूढ़ै पाषाण खंडेषु रत्न संज्ञा विधीयते।"

अर्थात् पृथ्वी पर रत्न तो तीन ही होते हैं–जल, अन्न और सुभाषित, मीठे वचन किन्तु मूर्ख लोग, उन तीन रत्नों की उपेक्षा कर हीरे, मोती, नीलम, पुखराज आदि पत्थर के टुकड़ों को ही रत्न कहते हैं। मैंने, हम सभी दिल्लीवासियों ने, आपके यहाँ का जल ग्रहण किया जो उत्तम था, आपके यहाँ का अन्न सेवन किया, वह भी उत्तम कोटिका और तीसरा रत्न सुभाषित, इसके तो कहने ही क्या हैं, राजस्थानियों के सुभाषित तो मशहूर हैं। आप लोगों में तो एक परम्परा भी है बल्कि कहना चाहिए राजस्थानी संस्कृति का एक अंग है कि नौकर तक को 'जी' कहकर सम्बोधित करते हैं। जहाँ हमने आप लोगों से ये तीन रत्न ग्रहण किए, वहाँ एक चौथा रत्न भी गहण किया जिसका शास्त्रों में कदाचित् उल्लेख नहीं है और वह चौथा रत्न है–कन्या रत्न। भाई तिवारी जी ने मुझसे अनेक बार पूछा, "कोई दहेज सम्बन्धी डिमांड?" अब मैं दहेज डिमांड रखता हूँ तिवारी जी के सामने।" भारद्वाज जी, तिवारी जी की ओर उन्मुख हुए, "क्यों तिवारी जी, पूछा था न आपने?" "जी हाँ, पूछा था, कई बार पूछा था, पर आपने बताया ही नहीं।" "तो अब बता देता हूँ, बताइए करेंगे मेरी दहेज की डिमांड पूरी?" "मेरी सीमा में हुई तो अवश्य पूरी करूँगा।" "हाँ-हाँ, आप मेरे समधी हो गए हैं कोई शत्रु थोड़े ही ना

बन गए जो मैं आपकी पगड़ी उछालने का भय दिखाकर कुछ लूट-खसोट कर लूँ?'' ''हाँ-हाँ, बोलिए भारद्वाज जी, मैं प्राणप्रण से आपकी डिमांड पूरी करने का वचन देता हूँ।'' ''वह तो मुझे विश्वास है राजस्थान के सत्य-वचनों पर और आप लोगों के वचन पालन के संकल्प की प्राणप्रण से रक्षा करने का तो इतिहास साक्षी है।'' सुनकर तिवारी जी हाथ जोड़े भारद्वाज जी के सामने खड़े रहे, बोले, ''आज्ञा कीजिए।'' भारद्वाज जी एक कदम आगे बढ़े, तिवारी जी के बिल्कुल निकट पहुँच गए, उनकी जुड़ी हथेलियों को अपनी दोनों हथेलियों के बीच लेते हुए बोले, ''देखिए तिवारी जी, इस प्रकार हाथ जोड़कर खड़े रहना मुझे अच्छा नहीं लगता, वास्तव में याचक तो मैं हूँ, आपसे आपकी सबसे मूल्यवान वस्तु आपकी कन्या माँग कर ले जा रहा हूँ, दाता तो आप हैं, यह दीन भाव किस लिए? आइए, मेरे सामने सीना तानकर खड़े होइए, और मेरी दहेज की डिमांग पूरी कीजिए।'' सभी की ओर मुखातिब होते हुए भारद्वाज बोले, ''बन्धुओं, मैं दहेज नम्बर दो में नहीं नम्बर एक में खुल्लम-खुल्ला माँग रहा हूँ, हमारे लेन-देन के साक्षी आप लोग हैं—तो तिवारी जी आप मुझे अपनी जेब में पड़े सिगरेट के पैकेट को दहेज में दे दीजिए, और भविष्य में कभी धूम्रपान न करने का वचन दीजिए।'' तिवारी जी ने भारद्वाज जी की कोली भर ली, भाव-विह्वल हो गए, नेत्रों से अश्रुधारा फूट चली, उनकी हिड़की सी बँध गई...स्वयं को नियन्त्रित करते हुए तिवारी जी ने जेब से सिगरेट का पैकेट निकाला और उसे नाली में फेंकते हुए बोले, ''यह लीजिए भाई साहब, आपका दहेज और अब कभी भी धूम्रपान न करने का मेरा वचन।'' और फिर फफक पड़े।

●

बाबू

जून की दोपहरी, कानपुर सैंट्रल रेलवे स्टेशन, प्लेट फॉम न. 2 पर कलकत्ता से दिल्ली जानेवाली कालका मेल, घड़घड़ाती, धूल उड़ाती, आकर ठहर गई। प्लेट फॉर्म पर, यात्रियों की भीड़ में एक ऐसी भगदड़ मच गई मानो कहीं आग लग गई हो और लोग, आग बुझाने के लिए हबड़-तबड़ इधर-उधर भागे फिर रहे हों। 'चा' 'चा' 'सब्जी पूड़ी' 'ठंडी बोतल', 'समोसे' आदि की भागती-दौड़ती, चीखती-चिल्लाती आवाजें, फलों, खान-पीन की सामग्री, बच्चों के खिलौनों, समाचार पत्र-पत्रिकाओं की धीरे-धीरे रुड़कती ठेलियाँ, गले के सहारे, पेट तक लटकी ट्रे में पनवाड़ी की चलती-फिरती दुकान आदि नजर आती थीं। एक हाथ में चाय की बड़ी सी केतली और दूसरे में कुल्हड़ों भरी टोकरी थामे, चाय बेचनेवालों की गजब की फुर्ती देखते ही बनती थी—भाग-भागकर डिब्बे में बैठे मुसाफिरों को प्लेटफॉर्म से ही चाय पकड़ाना, फिर भाग-भाग उनसे नोट लेना, जेब से बचे पैसे वापस करना—सब जैसे आटोमैटिक चल रहा हो। लाल वर्दी धारी कुलियों की, 'कुली, 'कुली' की तेज आवाजों के बीच, सर पर अटैची धरे 'जोर लगाके हैइशा' जैसा धक्का लगाते हुए, एक युवक— कम्पार्टमेंट में चढ़ने उतरने वालों की, 'पहले मैं, पहले मैं, फार्मूले के अनुसार—भीड़ के बीच से भीतर घुसने की बाजी मार गया। दाईं ओर घूमकर उसने ऊपर की बर्थ के एक कोने में अपनी अटैची सरका दी। नीचे की बर्थ पर एक कथावाचक रामायणी पंडित जी, अपनी सीट पर पैर फैलाए कोहनी के सहारे अधलेटे बैठे थे। युवक ने याचक-स्वर में कहा, "पं. जी आज्ञा हो तो मैं यहाँ बैठ जाऊँ? बस एक कोने में थोड़ा सा स्थान चाहिए, आपको कष्ट नहीं दूँगा।" पं. जी ने उसकी ओर देखा, 'भैया, रिज़र्व सीट है...चलो बैठ जाओ।" वह बैठ गया। "कहाँ जाओगे?"

"जी मेरठ जाना है।" सुनते ही पं.जी का चेहरा थोड़ा सा खिला, "अच्छा, मैं भी मेरठ जा रहा हूँ।"

पं. जी ने ताड़ लिया था कि वेश भूषा, बोल-चाल से लड़का संस्कारी लगता है। उन्होंने पूछा, "क्या नाम है बेटा?" "जी, बाबू।" "क्या करते हो?" जी मेरठ कॉलेज में बी.ए. अन्तिम वर्ष का छात्र हूँ।" "बेटा, एक कष्ट करोगे?" "आज्ञा दीजिए पं.जी।" पं. जी ने उसे अपना लोटा पकड़ाते हुए कहा, "जरा एक लोटा, ठंडा जल ले आओ, बड़ी देर से प्यास लगी है। बाबू उठ खड़ा हुआ, अपनी अटैची की ओर अँगुली उठाते हुए बोला, "मेरी अटैची पं. जी।" कहकर कम्पार्टमेंट से नीचे उतर गया, डिब्बे की भीड़ छँट चुकी थी। पं.जी ने जोर से आवाज लगाते हुए कहा, "बेटा, हाथ धोकर, लोटा धो धाकर शुद्ध जल लाना।" "जी पं. जी।" बाबू पानी लेने चला गया। वहाँ बैठे खड़े लोगों में से कोई अपने रूमाल से, पं.जी अपने अँगोछे से, कोई हाथ के पंखे से गर्मी को इस प्रकार भगा रहा था जैसे मक्खी मच्छर भगा रहे हों। ऊपर की बर्थ पर बैठे हुए एक व्यक्ति से पं.जी ने कहा, "बेटा, ये पंखा जरा बन्द कर दो, लू के थपेड़े लग रहे हैं, पूरा डिब्बा भट्टी सा तप रहा है। उसने पंखा बन्द कर दिया। डिब्बे में कुछ लोग आराम से पैर फैलाए लेटे थे, कुछ लेटना न चाहते हुए भी लेट रहे थे, और रिजर्वेशन की अपनी अधिकार-भावना का सदुपयोग कर रहे थे, कुछ लाचार बने एक दूसरे से सटे खड़े थे। बाबू ने एक वाटर कूलर पर अपने हाथ धोए, लोटा धोया, उसमें शीतल जल भरा, स्वयं ओक से अपनी प्यास बुझाई और भागकर डिब्बे में चढ़ गया। गाड़ी स्टार्ट हो चुकी थी, पं. जी चिन्तित हो उठे थे, बाबू उनके पास पहुँच गया। पं. जी प्यास से व्याकुल थे। उन्होंने लोटा पकड़ा और एक ही साँस में पूरा लोटा गटागट चढ़ा गए। पं. जी तृप्त हुए और डकार लेते हुए 'ओम्' कहा। उनके चेहरे के भाव को देखकर लगा मानो प्यास-दैत्य को उन्होंने कुश्ती में चारों खाने चित्त कर दिया हो, मुख पर एक सन्तोष-भाव था। "धन्यवाद बेटा! यशस्वी भव।" पं. जी ने आशीर्वाद दिया। "धन्यवाद किस बात का पं. जी, प्यासे को जल पिलाना तो मानव-धर्म है।" सुनकर पं.जी बड़े प्रसन्न हुए। मन-ही-मन उसकी सभ्यता, सुशीलता की तारीफ करने लगे, "लड़का तो बड़ा सुसंस्कृत है, वरना आज कल के लौंडे लपाड़े विशेषतः कॉलेज-छात्र तो...बस भगवान बचाए, जैसे ये सब हमारी

संस्कृति के दुश्मन हैं--न छोटे की चिन्ता, न बड़े का लिहाज, जुल्फों में तेल, कंघी पट्टी, इत्र फुलैल, फैशन में मदमस्त रहते हैं। बाबू उन्हें एक अपवाद महसूस हुआ।

"कहाँ के हो बेटा?" जी मवाना तहसील में फलावदा एक कस्बा है, वहीं का रहनेवाला हूँ।" "अच्छा, अच्छा फलावदा, हाँ देखा है, बी.ए. में क्या-क्या पढ़ते हो?" "जी अर्थशास्त्र, हिन्दी और संस्कृत विषय ले रखे हैं मैंने।" पं. जी ने सोचा, तभी तो इतना संस्कारी है, हिन्दी संस्कृत पढ़नेवालों की तो बात ही कुछ और होती है।..." यदा कदा सीटी बजाती, अपने मेल नाम को सार्थक करती हुई, कालका मेल, छोटे मोटे स्टेशनों पर स्टेशन मास्टर की हरी झंडी का सैल्यूट स्वीकार करती, उन्हें 'बाय' कहती दौड़ी चली जा रही है। ऊँघते-आँघते, बतियाते, गर्मी के थपेड़े सहन करते-करते रास्ता कट गया और कालका मेल दिल्ली जंक्शन के प्लेटफार्म नं. छह पर रुक गई। ट्रेन अभी पूरी तरह ठहर भी न पाई थी कि कुली लोग भाग भागकर डिब्बों में चढ़ गए। सूर्यास्त होने में अधिक देर नहीं थी। कुली को अपना सामान उठाने को कहकर पं. जी बाबू से बोले, "बेटा, अपनी अटैची कुली को दे दो।" कुली ने पं. जी का बिस्तरबन्द उठाया और जोर लगाकर झुकते हुए दाएँ कन्धे पर लटका लिया, अटैची सिर पर रख ली बाबू ने कुली के सिर पर रखी पं. जी की अटैची के ऊपर अपनी अटैची रख दी। थोड़ी देर के बाद मेरठ के लिए गाड़ी छूटनेवाली थी। "पं. जी अपनी यह टोकरी भी कुली को दे दीजिए" बाबू ने कहा। पं. जी बोले, "ना बेटा, उसे तू पकड़ ले, पता नहीं कैसा आदमी है? देखना इसमें मेरे ठाकुर जी हैं, कहीं गन्दी जगह मत रेख देना।" बापू ने ढक्कन लगी बाँस की टोकरी पकड़ ली, और कुली ने प्लेट फार्म नं. दस पर, मेरठ जाने वाली गाड़ी में सामान रख दिया बाबू बोला, "लीजिए पं. जी ठाकुर जी की टोकरी, मैं भागकर टिकट ले आऊँ, गाड़ी छूटने में अधिक समय नहीं है।"

"ले बेटा एक टिकट मेरा भी लेते आना। कहते हुए पं. जी ने दस रुपए का एक नोट बाबू के हाथ में थमा दिया।

बातों-बातों में पं. जी ने जान लिया था कि बाबू हर साल जुलाई में, मेरठ में कहीं कमरा किराए पर लेता है, परीक्षा समाप्त होते ही मार्च में कमरा खाली कर देता है, इस प्रकार उसे साल के अढाई तीन महीने

की, किराए की बचत हो जाती है। पं. जी ने कहा, "बाबू तुम हमारे यहाँ क्यों नहीं रह जाते, हमारे पास काफी बड़ा मकान है, मैं और मेरी धर्म पत्नी, हम दो ही प्राणी हैं घर में। अक्सर कलकत्ता, बम्बई, गुजरात, राजस्थान आदि कथा-प्रोग्राम करने जाता रहता हूँ, रामायण-प्रेमियों के निमन्त्रण आते रहते हैं? अभी एक महीने का प्रोग्राम कलकत्ता में करके आ रहा हूँ। वह अक्सर घर में अकेली रहती हैं। सारा घर खाली पड़ा रहता है, उसे भी सहारा मिल जाया करेगा। संकोच की कोई बात नहीं।" "किराया कितना लेंगे पं. जी?" बाबू ने पूछा। 'किराया?' "अरे किराया लूँगा? तुम यहाँ विद्या-ग्रहण करने के उद्देश्य से रहोगे। मैं उसमें तुम्हारी सहायता करूँगा, समझूँगा मैं विद्या-दान कर रहा हूँ। बेटा, पैसा ही सब कुछ होता है क्या, यह तो तुम्हारे इस विद्यार्जन-यज्ञ में मेरी एक आहुति मात्र होगी। देखो, यहाँ बेटा बनकर रहना है तो तेरा स्वागत है, मेरा बेटा तो बम्बई में नौकरी करता है, वहीं रहता है, समझूँगा वह यहाँ रह रहा है और किराएदार की हैसियत से चाहता है तो भैया साफ बात है, कमरा खाली नहीं। किराए की कमाई खाता तो मकान खाली क्यों पड़ा रहता। इसलिए तू अपना घर समझकर रह, फिर हमें एक सहारा मिल जाएगा, तू हमारी अड़ी भीड़ में काम आया करेगा। घर खाली पड़ा है, अगर इसमें तू रह लेगा तो क्या घिस जाएगा इसका?" आखिरकार बाबू मान गया।

बाबू टिकट लेकर आ गया, उसके आते ही गाड़ी मेरठ की ओर चल पड़ी। ट्रेन समय पर मेरठ पहुँच गई। अन्धकार घिरने लगा था, सामान सहित पं. जी, बाबू के साथ बाहर निकल गए। कुली ने पं. जी का सामान रिक्शा में रखवा दिया। बाबू ने कहा, "अच्छा पं. जी प्रणाम, मैं चलता हूँ।" "अरे रात होने को आई, अब कहाँ जाएगा, चल घर चल, कल चले जाना।" "नहीं पं.जी, 15 जुलाई को कॉलेज खुलेगा, मैं एक, दो दिन पहले ही पहुँच जाऊँगा। दोनों अपने-अपने गंतव्यों की ओर बढ़ चले।

13 जुलाई को प्रातः 10 बजे बाबू एक अटैची, छोटा सा बिस्तर लेकर सूरज कुंड रोड स्थित पं. जी के बताए हुए पते पर पहुँच गया। बाबू ने कुंडा खटखटाया। पं. जी आए बाबू ने उन्हें प्रणाम किया, पंडिताइन सामने दिखाई पड़ी "माता जी प्रणाम," बाबू ने हाथ जोड़े। पं. जी ने उंगली से इशारा किया, "इस कमरे में अपना सामान रख लो, अब से यह

कमरा तुम्हारा।'' बाबू ने कमरे में सामान रख दिया। ''भीतर एक चारपाई, छोटी सी मेज और एक कुर्सी रखी थी। ऊपर पंखा लगा हुआ था। बाबू ने अपना बिस्तर खोला, पलंग पर दरी चादर बिछाई और अटैची अलमारी में रख दी। कालेज खुल गए, बाबू ने कालेज जाना शुरू कर दिया।

बाबू, पं. जी के घर ही, भोजन करने लगा, पंडिताइन, बाबू से बार-बार आग्रह करती रहती थी कि बेटा खाने पीने में संकोच मत करना, मेरे यहाँ कोई भोजन करके तृप्त होता है तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। घर, बाहर, बाजार का सब काम बाबू ने अपने ऊपर ले लिया। धीरे-धीरे बाबू ने पंडित जी का पूर्ण विश्वास जीत लिया और घर में इतना घुल मिल गया कि पं. जी को बाबू पर अपने पुत्र से भी अधिक विश्वास हो गया। घनिष्ठता यहाँ तक पहुँच गई कि पं. जी ने अपनी अलमारी बन्द करनी ही छोड़ दी, सारा जेवर, नकदी सब उसी अलमारी में रखे रहते थे। घर के लिए कुछ सामान लाना होता तो बाबू अब उनसे पैसे नहीं माँगता था, अलमारी से स्वयं ही नोट निकालता बाकी बचे पैसे लाकर अलमारी में ही रख देता था। घर की ओर से पं. जी बिलकुल निश्चिन्त हो गए।

बाबू का कंठ सुमधुर था, पंडिताइन बाबू से प्रायः कहती, ''बेटा, सुन्दर कांड सुना दे।'' बाबू जब तन्मय होकर सुन्दर कांड की चौपाइयाँ, दोहे गाकर सुनाता था, तो ऐसा समाँ बँधता था कि सब लोग भाव-विभोर हो उठते थे। बीच-बीच में वह दोहे चौपाइयों की व्याख्या करता जाता था। मुग्ध होकर पंडिताइन मन-ही-मन बाबू को आशीष देते नहीं थकती थी—कैसा गुणी लड़का है, धन्य है वे माँ-बाप जिसके बाबू जैसा पुत्र हो, भगवान इसकी उमर बढ़ाए, यह सौ साल जिए, जिस पवित्र भाव से बाबू हमारी सेवा करता है, कोई अपना सगा बेटा भी नहीं करता, बड़ा ही संस्कारी बालक है, प्रभु करे यह बहुत बड़ा आदमी बने आदि-आदि आशीर्वाद वह बाबू को देती रहती थी।

एक दिन पं. जी को तीव्र ज्वर हो गया। वे कराहते हुए बोले, ''बाबू बेटा, आज ठाकुर जी बिना स्नान के ही रहेंगे क्या?'' ''क्यूँ पं. जी बोलिए, क्या करूँ?'' ''बेटा, पूजा के पात्र माँज ले, ठाकुर जी को स्नान करा दे। आरती तेरी माता जी कर देंगी।'' ''जी पं. जी।'' कहकर बाबू चला गया। वह पं. जी को यह सब करते देखता था। उसने ठाकुर जी

के सिंहासन से, ठाकुर जी को उठाया पूजा-पात्र उठाए, पात्रों की पीली मिट्टी से माँजा, धोया, ठाकुर जी के ऊपर लोटे से जल डाल कर उन्हें स्नान कराया, एक छोटे से तौलिए से सबको पोंछ कर सिंहासन पर विराजमान कर दिया। "माता जी, हो गया ठाकुर जी का स्नान, आरती कर लीजिए।" "आई बेटे, अभी करती हूँ।" बाबू ने पं. जी को सूचना दी, "करा दिया स्नान पं. जी।" "अरे नहा भी लिया था?" पं. जी ने कराहते हुए पूछा। "नहा तो मैं सुबह ही लेता हूँ। पं. जी, कमर, पैर दबा दूँ, पीड़ा हो रही होगी?" "बेटा, पीड़ा तो सारे शरीर में हो रही है, कहाँ तक दबाओगे?" "नहीं पं. जी, दबा देता हूँ।" कहकर बाबू, पं. जी की कमर पैर दबाने में लग गया, आधे घंटे तक उनका शरीर दबाता रहा, पं. जी को बड़ा आराम मिला। पं. जी ने कहा बस बेटा, बड़ा आराम मिला, सुखी रह, प्रभु तेरा कल्याण करें।"

दशहरा अवकाश आनेवाला था। बाबू ने एक दिन पंडिताइन से कहा, "माता जी, दशहरे की छुट्टियाँ होनेवाली हैं, कालेज के लड़कों का एक टूर नेपाल जा रहा है, मैं भी हो आऊँ?" "हाँ हाँ बेटा, जरूर जाओ नेपाल बड़ा सुन्दर है, संसार में बस नेपाल ही तो एक हिन्दू राष्ट्र है, जरूर जाओ, बड़ा ही सुन्दर है काठमांडू, वहाँ भगवान पशुपतिनाथ का बड़ा भव्य मन्दिर है, वहाँ अवश्य जाना।" पं. जी ने भी प्रसन्नता पूर्वक आज्ञा दे दी और बाबू अपने साथियों के साथ पन्द्रह दिनों की नेपाल यात्रा पर चला गया।

इस बीच डाकिए ने "चिट्ठी पं. जी," आवाज लगाई और एक पोस्टकार्ड उनके आँगन में फेंक कर आगे बढ़ गया। पं. जी किसी काम से बाहर गए हुए थे, पंडिताइन ने पोस्टकार्ड उठाया, उसपर नजर डालते ही पंडिताइन पछाड़ खाकर गिर पड़ी, मूर्च्छित सी हो गई। तभी पं. जी पहुँच गए, पंडिताइन को उस हालत में पड़ी देख पं. जी के होश उड़ गए, बदहवास से बोले, "अरी क्या हुआ?...बोलती क्यों नहीं, क्या बात है?" पं. जी ने उन्हें हिलाया, पंडिताइन सुबकती हुई उठी और बोलीं तेरा सत्यानाश हो जाए बाबू, तुझे कीड़े पड़ें, तूने तो हमारा धर्म ही भ्रष्ट कर दिया, तुझे माता तोड़कर ले जाए मुँह जले, तूने तो हमारी जिन्दगी भर की कमाई में आग लगा दी, भगवान करे तू अन्धा हो जाए, कोढ़ी हो जाए।" सुनकर पं. जी हक्के-बक्के बने रह गए, "ये क्या बके जा रही

हो, क्यूँ गालियाँ दे रही हो बाबू को?'' धोती के पल्लू से आँखें पोंछती हुई पंडिताइन बोली, ''करम जले बाबू ने तो हमारा धर्म ही भ्रष्ट कर दिया, हमें कहीं का नहीं छोड़ा, भगवान इस पाप के लिए हमें कभी माफ नहीं करेगा।'' विलाप करते हुए पंडिताइन ने पं. जी के हाथ पर पोस्टकार्ड रख दिया।

पोस्टकार्ड देवनागरी में लिखा था, ''बेटे बाबू खाँ, अस्सलाम वालेकुम, खुदा के फजल से यहाँ खैरियत से है, उम्मीद है अल्लाहताला तुम पर भी मेहरबान होगा। खुशखबरी यह है कि दुख्तर वहीदा के लिए एक लड़का मिल गया है, तुम्हारी चाची के मामू का लड़का है, अलीगढ़ में एम.ए. कर रहा है, निकाह ही तारीख अभी तय नहीं हुई, चिट्ठी डालना, तुम्हारा चाचा, नूर अली।''

पं. जी को काटो तो खून नहीं, वे मूर्तिवत स्थिर हो गए, बिना हिले डुले यूँ ही बैठे रहे कुछ बड़बड़ाए, ''तूने अच्छा नहीं किया बाबू...और मौन हो गए। पंडिताइन बोली, ''पं. जी गंगा जी चलो, ये पाप धो आएँ, ठाकुर जी को गंगा जी में सिला देंगे, अपनी गलती की क्षमा माँग लेंगे कि बिना जात गोत्र पूछे हमने किसी पर यकीन कर लिया, हमारी आँखों पर पर्दा पड़ गया था, पिछले जनम का हमारा कोई पापोदय होना था, हो गया। प्रायश्चित, जो भी विधान होगा कर लेंगे, आज ही इस पाप को धो लेंगे। पं. लोग जो भी प्रायश्चित स्वरूप उपाय बताएँगे कर लेंगे, आगे भगवान की मर्जी कि वे हमारी भूल को क्षमा करें या हमें कोई दंड दें।'' पं.जी वैसे ही मूर्ति बने बैठे रहे। उनका विचार-मन्थन चल रहा था, मन, बुद्धि, मस्तिष्क में युद्ध सा छिड़ा था। स्थित प्रज्ञ से वे बराबर सोचे जा रहे थे, सोचे जा रहे थे। उनके मुख पर छाई कालिमा शनैः शनैः तिरोहित होने लगी, चेहरे पर लालिमा उभरने लगी। मन हृदय प्रांजल हो गया, वे बोले, ''शान्त हो जाओ पंडिताइन, बाबू को गाली मत दो, ठाकुर जी को गंगा जी में सिलाने की बात मत करो। शान्तिपूर्वक मेरे प्रश्न सुनो और ईमानदारी से उनका उत्तर दो–

''बाबू क्या बीड़ी सिगरेट पीता है?'' ''नहीं पीता,'' ''जबकि तुम्हारा पुत्र बीड़ी पीता है।'' बताओ, क्या वह शराब पीता है जुआ खेलता है।'' ''ना, ऐसा वह नहीं करता।'' ''बाबू क्या अंडा खाता है?'' पता नहीं, बाहर खाता हो, क्या पता है?'' ''पर तुम्हारा बेटा अंडे खाता

है, यह तुम भी जानती हो।" "अच्छा यह बताओ कि बाबू किसी लड़की पर बुरी नजर डालता है?" "ना ऐसी कोई शिकायत मैंने नहीं सुनी।" "जबकि पंडिताइन तुम्हारे पुत्र की कई बार शिकायत आई थी कि पनवाड़ी की दुकान पर खड़ा हुआ, आवारा लड़कों के साथ लड़कियों पर फब्तियाँ कसता है।"

"यह बताओ पंडिताइन तुम्हारी सेफ में इतने रुपए, गहने, चाँदी के बर्तन आदि रखे हैं, कभी इनसे कुछ चोरी किया बाबू ने?" "ना झूठ क्यों बोलूँ, बाबू ने कभी कुछ नहीं चुराया।" "जबकि तुम्हारे बेटे ने कई बार रुपयों में गड़बड़ की थी, उसने अपने ही रुपए चुराये थे" "और एक बात बताओ पंडिताइन कि बाबू ने श्रवण कुमार की भाँति मेरी तुम्हारी सेवा नहीं की है?" "की है", "लेकिन तुम्हारा लड़का हमारे लिए जो कुछ करता था वह मन से नहीं, लाचारी में करता था।...थोड़ा ठहर कर पं. जी. बोले," अब बताओ पंडिताइन ईमानदारी से, तुम्हें गंगाजी की सौगन्ध कि बाबू किधर से गलत हो गया? एक श्रेष्ठ मानव के जो भी लक्षण होने चाहिए वे सब बाबू में हैं, बताओ क्या कुछ नहीं है बाबू में जो श्रेष्ठ मानव न हो? इतना दयालु, इतना सहिष्णु, इतना कर्तव्यपालक, कौन सा ऐब दिखाई दिया तुम्हें बाबू में?...थोड़ा रुककर पं. जी बोले, "अच्छा यह बताओ कि पूरी सृष्टि का रचयिता कौन हैं?" "परम पिता परमात्मा," "तो क्या बाबू सृष्टि से बाहर का है? वह भी क्या उसी परम पिता की सन्तान नहीं? फिर उसमें और मुझमें फर्क कहाँ रह गया?" "पर है तो वह मुसलमान" पंडिताइन ने कहा। "अरी आत्मा तो वही है, चाहे जिस चोले को धारण कर ले। तेरा बेटा पैंट कमीज पहनता है, तो क्या वह अंग्रेज हो गया? बाबू मुसलमान है तो क्या हुआ, आत्मा तो वही है, उसी अंशी का तो अंश है, हम सब एक हैं। क्या तुम अपने ठाकुर जी को इतना दुर्बल, गया-गुजरा समझती हो कि वे किसी के स्पर्श मात्र से अस्पर्श्य हो जाएँगे, क्या धर्म काँच के टुकड़े के समान है जो जरा सी ठसक लगते ही टूट जाए, यदि ऐसा है तो ऐसी कच्ची चीज के पीछे दौड़ना कहाँ की बुद्धिमानी है। जो सबको पवित्र करता है वह किसी के भी स्पर्श से अपवित्र हो जाएगा? जिसके स्मरण मात्र से एक पापात्मा भवसागर पार कर जाता है, वह दूषित हो जाएगा? राम जी का उलटा नाम जपने से बाल्मीकि जैसा दुर्दांत, महर्षि पद प्राप्त कर गया, महादुष्ट

अजामिल, भगवान विष्णु के बराबर जा बैठा। वह अपवित्र हो जाएगा? पंडिताइन मैं तो परमात्मा को धन्यवाद देता हूँ कि तू कैसा महान् है, तेरी लीला अपरम्पार है, कैसी लीला रचाई तूने प्रभु कि मेरे ज्ञानचक्षु खोल दिए, धर्मांधता मिटाकर उसका प्रांजल रूप दिखा दिया। जो बात आज तक समझ में नहीं आई थी, उसे, सोदाहरण व्याख्या द्वारा, तूने समझा दिया, मेरे गुरु परमात्मा! अतः उठो बाबू को जितनी गालियाँ तुमने दी हैं उसके प्रायश्चित स्वरूप ठाकुर जी से क्षमायाचना करो, बाबू से कुछ नहीं कहना, जब वह आएगा बोलना, तेरी चिट्ठी आई है, मैंने पढ़ ली है, बधाई तुम्हें और अपने चाचा से कहना हमें उसके निकाह में जरूर बुलावें, हमारे कोई लड़की नहीं है ना, हम उसका कन्यादान करेंगे, और पुण्य कमाएँगे। कहते हैं बिना कन्यादान के स्वर्ग नहीं मिलता।

●

माँ का पत्र–बेटे के नाम

द्वारका, नई दिल्ली
12.12.2008

बेटे मेरे,

आयुष्मान् भव।

तू ठीक तो है रे, तेरा पत्र पिछले महीने आया था। लगता है, वर्षों बीत गए, सिडनी से तेरा समाचार आए। सिडनी गए तुझे कहने को तो 4-5 वर्ष ही हुए हैं, पर दिल इसे मानता ही नहीं, उसे तो ये 4-5 साल युगों लम्बे दीखते हैं, अब क्या करूँ इस दिल बावले का, इस बिगड़ैल से बच्चे को कैसे काबू करूँ? इस दिल को चकमा देने के लिए ही मैं यूनिवर्सिटी में, ज़रूरत से ज़्यादा समय वेस्ट करती रहती हूँ। वहाँ भी तू मेरा पीछा नहीं छोड़ता–किसी लड़के के हेयर स्टाइल में, किसी के गोरे-चिट्टे रंग में, किसी छह फुटे स्टुडेंट की मदमस्त चाल में, किसी के कपड़ों के रंग में, तू दिख ही जाता है–लगता है, ऐसा ही है मेरा बेटा–तू, फिर मेरे कन्धे पर सवार हो जाता है।

तुझसे सम्बन्धित अनेक बातें हैं, जो मुझे सान्त्वना देती हैं। तेरे चरित्र को देखती हूँ तो परमात्मा को धन्यवाद देती हूँ कि तूने मेरे पुत्र के संरक्षण में कोई कमी नहीं छोड़ी। तेरे हाईस्कूल करते ही मैंने तुझे पिलानी भेज दिया था, बारहवीं के बाद तूने दिल्ली विश्वविद्यालय में प्रवेश ले लिया। मैं अपने साथियों के बीच गर्व से कहती हूँ कि पाँच वर्षों तक काजल की कोठरी में रहने के बावजूद, मेरे मुन्ना की चदरिया पर कालिख को एक लीक तक नहीं लगी–न जुआ, न शराब, न सिगरेट, न चरस, न चाकू-तमंचा–उनके बीच से तेरा निष्कलंक निकल आना–मुझे प्रभु की अनुकम्पा का स्मरण कराता रहता है। तू इतनी दूर बैठा है, ग्लोब के

निचले सिरे पर, लेकिन मैं तुझे हर समय अपने ही पास महसूस करती हूँ, मन-मन में तुझसे बातें करती रहती हूँ। कक्षा में स्टूडैंट्स को तो कबीर के माध्यम से समझाती हूँ कि आत्मा, परमात्मा का अंश है, परमात्मा-सागर में, आत्मा-जल, भरे घट के समान है, कुम्भ है ना, कितना भी पक्का हो, एक ना एक दिन उसका फूटना तय है, घट फूटते ही, जल-जल में समा जाएगा, फिर मृत्यु का शोक कैसा, आदि-आदि। सोचती हूँ कितना धोखा दे रही हूँ छात्रों को, स्वयं तो तू बेटे की अनुपस्थिति को भी नहीं झेल सकती और उपदेश देने बैठ गई, मृत्यु तक पर शोक न मनाने का...शोक क्या दिखाने की चीज़ है, वह तो स्वयं भू है। मेरी दार्शनिकता पर, मुई यह ममता, झट सवारी गाँठ लेती है।

घर आते ही, मेरी प्रोफेसरी का, मेरे वैदुष्य के तमगों का, यहाँ-वहाँ से मिले सम्मानों के प्रमाण-पत्रों का लबादा उतरकर खूँटी पर टँग जाता है और एक माँ का गाउन स्वतः मेरे तन-मन को आवृत्त कर लेता है। पता नहीं कैसे, वे अलंकाराभूषण छिटककर दूर जा पड़ते हैं और माँ, सिर्फ़ माँ मेरे ऊपर हावी हो जाती है, बस फिर समय, मेरा जानलेवा बन जाता है, समयवृत्त रबड़बैंड की तरह बढ़ता ही रहता है। डिनर तक पहुँचते-पहुँचते थोड़ा-बहुत तो कट जाता है—तेरे पापा के साथ भी नहीं काट सकती क्योंकि वे अपनी ही धुन में रहते हैं। बस सारी रात तेरे साथ बातें करते-करते कटती है, झपकी लगने पर भी तो तू मुझे चैन से सोने नहीं देता, सपनों में भी तू मेरी गोदी चढ़ा रहता है। मेरी दिनचर्या—दो हिस्सों में बँटी हुई है—आधा समय विश्वविद्यालय में, आधा समय घर की चारदीवारी में—घर में तो तू हर वक्त मेरी गोद में चढ़ा ही रहता है, बाहर भी नहीं छोड़ता मुझे नालायक! छोटे बच्चों की तरह मुझसे चिपटा रहता है, तू तरस भी तो नहीं खाता मुझ पर, इतना बड़ा हो गया अभी भी मेरी गोदी से नहीं उतरता, बेटा अब थक गई हूँ, तेरी ममता का भार अब उठाए नहीं उठता, बहुत जल्द हाँफ जाती हूँ। बस यूँ ही तुझसे लड़ते-झगड़ते, बतियाते दिन निकल आता है।

ईमानदारी से कहूँ तो मेरा अधिकांश समय तेरी सुखद स्मृतियों में कट जाता है, थोड़ा-बहुत ऐसा बचता है जो काँटा बनकर चुभता रहता है। कमाल की बात है कि स्मृति की पुनरावृत्तियों से मन अघाता भी तो नहीं। तेरी ये स्मृतियाँ 'मीठा भावे लोन पर' की अपवाद हैं, तेरी सैंकड़ों बार की एक-एक

स्मृति की पुनरावृत्ति मेरी आत्मा को एक नवरस से भर जाती है, कोई भी तो बासी नहीं लगती, हर बार वही स्वाद, हर बार वही अमृतत्व।

एक कसक है, जो मुझे सालती रहती है कि तूने वहाँ अपनी मरजी से बिना हमारी मौजूदगी के शादी कर ली। इसमें मैं अपनी अवज्ञा की कसक नहीं महसूसती, बल्कि असली कसक यह है कि मेरे बेटे की शादी में न बैंड बाजे बजे, न बान तेल हुआ, न यज्ञोपवीत हुआ, न घोड़ो-बन्ने गाए गए, न भात की रस्म हुई, न घुड़ चढ़ी, न सुहागपूड़ा, न खेत, न सात भाँवरे, न सालियों द्वारा जूता चुराई और दक्षिणा लेने पर तुझसे झगड़ना हुआ, न ससुराल वालियों की ओर से छन सुनाई का आग्रह ताकि वे तेरी परीक्षा ले सकती कि जीजाजी हकलाते-तुतलाते तो नहीं, आदि-आदि अनेक रस्में होती हैं, सारी तो मुझे याद भी नहीं, वे सबकी सब हमारी बड़ी-बूढ़ियों के मानस-पटल पर एंग्रेव्ड होती हैं और अगली पीढ़ी को हस्तान्तरित होती हुई, लोकमानस में अक्षुण्ण रहती हैं। ऐसे अवसरों पर पढ़ी-लिखी स्त्रियों को भी उन अनपनढ़ नारियों के आदेश का पालन करना होता है—"अरी बहू, कुआँ पुजाई तो हुई ही नहीं, तैयारी करो।" घुड़चढ़ी समाप्त होने के साथ ही, वर एक जरूरी रस्म को पूरी करने के बाद अपने घर में बिना वधू प्रवेश नहीं कर सकता, वह बारात-प्रस्थान-स्थल पर किसी के घर बैठ जाता है। वह जरूरी रस्म है कि माँ कुएँ की मेंढ पर, कुएँ में पैर लटकाकर बैठ जाती है वह घुड़चढ़ी के बाद घोड़े से उतरकर माँ को मनाने आता है, माँ कहती रहती है, बेटा कसम धरम उठाकर माँ को विश्वास दिलाता है कि माँ, मैं तो तेरी हरी-भरी शाखा हूँ, इस शाखा को तुझसे तोड़कर कोई कैसे ले जा सकता है? तुझसे ही तो मेरी हरियाली है माँ, तुझसे टूटकर मेरा सिंचन होने पर भी, क्या मेरी हरियाली बनी रह सकेगी? माँ कुएँ में कूद पड़ने की धमकी वापस लेती है और पुत्र दोपाया से चौपाया होने हेतु, प्रस्थान कर जाता है।

यह रस्म कदाचित् माँ के उस अज्ञात भय का सुरक्षा कवच है कि "कोई मेरी शाखा को तोड़ न ले जाए।" कभी सोचती हूँ, चलो अच्छा हुआ तेरी यह रस्म नहीं हुई, वरना शायद प्रभु न करे, एक दिन ऐसा आता कि तुझे अपने वायदे के टूटने का मनस्ताप झेलना पड़ जाता। तेरे कई मित्रों के ही उदाहरण मेरे समक्ष हैं जिनमें से एक को भी यह अहसास नहीं कि उसने उस रस्म के तहत अपनी माँ को एक वचन दिया था। दूर

क्यों जाता है, अपने परम मित्र अनुराग को ही देख ले, माँ-बाप यहाँ पड़े सड़ रहे हैं और वह वहाँ बीवी-बच्चे के साथ क्रिसमस की मौजमस्ती कर रहा है। इस रस्म के पीछे कदाचित् एक कारण और है कि माँ के अवचेतन में यह भय व्याप्त है कि वृद्धावस्था में माँ हेतु पुत्रावलम्बन की अनिवार्यता की चूलें कहीं हिल न जाएँ। माँ के सबकांशस में एक भय और है जो उसे ऐसा करने को प्रेरित करता है—वह भय है कि तूने जो व्यवहार अपनी बहू के साथ किया है, कहीं बहू आकर मेरे साथ भी वैसा ही व्यवहार न करने लगे। जो भी हो, रस्में तो रस्में हैं, हम कितने भी पढ़-लिख जाएँ, कितने भी आधुनिक बन जाएँ पर रस्मों की दासता तो भुगतनी ही होती है।

हमारे पुरखों ने ये रस्में बड़ी सोच-समझकर बनाई होंगी, मेरा उनमें विश्वास है। उनमें मुझे कहीं-न-कहीं वैज्ञानिकता की झलक दिखाई पड़ती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने ऐसे लोगों का फेवर लिया है। उन्होंने जो कहा, उसका निष्कर्ष इस प्रकार है—आधुनिक पढ़े-लिखे लोगों के दो प्रकार हैं—एक वे जो परम्पराओं को बुद्धिसम्मत न मानते हुए उन्हें तोड़ डालने में अपनी वीरता-प्रदर्शन के लोभी होते हैं—दूसरे वे जो परम्पराओं को अनुपयोगी मानते हुए भी उनका पालन करने में शर्म नहीं महसूस करते। तो मैं बेटा दूसरे प्रकार के व्यक्तियों की श्रेणी में हूँ इसीलिए मुझे तेरे विवाह में रस्में न होने की कसक है। फिर मैं आज की नारी की भाँति साहसी भी तो नहीं, दिन-प्रतिदिन वह निःसीम साहस का परिचय दिए जा रही है। उसने खुले आम शराब, सिगरेट पीने का साहस प्रदर्शित कर दिया है। उसने अपनी फिगर को वरीयता देते हुए अपने कलेजे के टुकड़े तक को दूध पिलाने की उपेक्षा कर अपने अप्रतिम साहस का परिचय दिया है, उसने ममता को पछाड़ देने के शौर्य का परिचय दिया है—ममता-विजयिनी बन गई है। एक मैं हूँ, हर वक़्त ममता के हाथों घायल होती रहती हूँ, कभी-कभी अपनी इस दुर्बलता पर खीझ भी पड़ती हूँ, लेकिन दूसरे ही क्षण मुझे एक अपराध-बोध होता है कि मैं कमज़ोर नारी हूँ। आज की नारी तो एक शक्तिरूपा, चंडमुंड महिषासुरमर्दिनी, सिंह पर सवारी गाठने वाली, खड्गधारिणी दुर्गा देवी का रूपान्तरित संस्करण है। मैं तो विश्वविद्यालय में बड़ी बहनजी, साड़ी बिन्दी धारण करने वाली एक कमजोर-सी धर्मभीरू महिला मात्र हूँ। तुलसी मैया के सामने रोज़ दीपक

जलाती हूँ, सोने से पूर्व प्रतिदिन मैं ठाकुर जी की आरती गाती हूँ, उन्हें बाकायदा सुलाती हूँ। सोते समय और उठते ही हाथ जोड़कर प्रकाश को प्रणाम करती हूँ, प्रातःकालीन सूर्यदेव को नमस्कार करती हूँ। इन सबसे मुझे एक आत्मानन्द मिलता है। दूसरों की दृष्टि में आधुनिक दिखने की चाह में, मैं उनका तिरस्कार नहीं करती। कुछ परम्पराएँ मैं भी तोड़ती हूँ, तू जानता है कि तेरे हैप्पी बर्थडे पर मैं ताली बजाते हुए 'हैप्पी बर्थडे टु यू भी गाती हूँ, पर फूँक मारकर, मैं केक पर लगी मोमबत्तियाँ नहीं बुझाती—मुझे ऐसा महसूस होता है जैसे अपने कुलदीपक को, ये लोग, आप ही फूँक मारकर बुझा रहे हैं—बालक की आयु की प्रतीक ये मोमबत्तियाँ बुझा दी जाती हैं—चूँकि मेरी मान्यताओं से ऐसी बातें मेल नहीं खातीं, मैं उनका विरोध कर देती हूँ। मैं नहीं मानती कि बालक की बर्थडे से पूर्व के वर्ष समाप्त हो गए, वे तो उसमें विद्यमान रहते हैं, बालक के विकास के वे साल उसकी शारीरिक, मानसिक वृद्धि के रूप में उसमें निहित होते हैं। कुलान्त की प्रतीक-सी लगने वाली परम्परा मुझे ग्राह्य नहीं। खैर।

और क्या लिखूँ! पत्र लिखने में मुझे सुखानुभूति होती है, जब लिखती हूँ तब तू मेरे और निकट होता है, इसलिए मैं लिखती जाती हूँ, लिखती जाती हूँ। सच कहूँ बेटा साहित्य और इतिहास—प्रेम, प्रियतम, मिलन, विरह, वेदना, आशिक, माशूक, शृंगार, आदि से—ओत-प्रोत है। मैंने भी प्रेम किया था, पहले तेरे पिताजी आए, फिर तू आया। एक से दूसरा प्रेम उपजा मेरे जीवन में। पतिप्रेम और पुत्रप्रेम—दो धाराओं में बँट गया मेरा जीवन। अदृष्ट की तराजू में तुलने लगे दोनों, दोनों की कीमत निर्धारित होती रही, दोनों के घर के बाहर नेम-प्लेट टँग गई—प्रकृत प्रेम और कृत्रिम प्रेम। एक में भगवद्कीर्तन का-सा समाँ बँधता, दूसरा व्यावसायिक केन्द्र बन गया—सब्जी, फल, अनाज आदि की मंडी, जहाँ जोर-जोर से बोलियाँ लगती हैं, लेन-देन होता है, हानि-लाभ का लेखा-जोखा तैयार होता है, हार-जीत होती है, चिल्ल पौं मचती है, तू-तू मैं-मैं भी होती है, सब मुखौटे उतर जाते हैं और रह जाता है केवल कृत्रिम प्रेम का कंकाल। कहीं आध्यात्मिक प्रेम के दर्शन होते हैं तो मुझे मुन्ना तुझमें होते हैं, अपने बाल-गोपाल में, किसन कन्हैया में, फलतः तू आज भी मेरा कान्हा-सा है। अतः बेटा, मैंने तुझसे अपने इस प्रेम की कीमत कभी नहीं

वसूलनी चाही। कोई कीमत हो तो वसूलने की सोचूँ भी, पहले यथाशक्ति मन शरीर से तेरी सेवा करती रही, कभी कुछ नहीं चाहा तुझसे, अब आत्मा से करती हूँ अब भी कुछ नहीं चाहती, बस कामना करती रहती हूँ, तू जहाँ भी रहे, सुख से रहे, अपने स्वार्थ हेतु कोई बोझ मैं तुझ पर क्यों डालूँ? तुझे दुखी करूँगी तो उससे मुझे कोई दुख नहीं होगा? बस यही तो मेरा स्वार्थ है, तुझे दुखी कर, मैं स्वयं दुखी नहीं होना चाहती। प्रभु से यही कामना करती हूँ बेटे, कि तेरी जीवन-नौका, डल झील के शिकारे की भाँति (कश्मीर की) जीवन की समग्र सुषमा का रसपान करती, बिना कोई हिचकोला लिए तैरती रहे। तब मुझे असह्य वेदना होगी, जब मुझे लगेगा कि तू अपने जीवन का सफर उस ट्रैक्टर ट्रॉली पर पीछे बैठ कर रहा है, जो टूटी-फूटी, गड्ढों भरी, ऊबड़-खाबड़ सड़क पर स्थान-स्थान पर बने स्पीड ब्रेकरों के बैरियर को धड़धड़ कर पार करती हुई, भीतर से फुँकने का धुआँ उगलती, ड्राइवर द्वारा अचानक लगाए गए ब्रेक से चीखती हुई-सी दौड़ी चली जा रही है। वह पीड़ा मैं नहीं झेल पाऊँगी रे। अब तू सच्ची-सच्ची बता तेरी गाड़ी कैसी चल रही है? मुझसे कुछ नहीं छिपा बेटा, मैं तेरी माँ हूँ...व्यर्थ ही पूछ रही हूँ, मैं जानती हूँ कि तू कहेगा कि माँ चिन्ता मत कर, मैं खूब मजे में हूँ, तेरी कसम। फिर भी यह पगला मन मानता ही नहीं, मुझे आर पर आर चुभाए जाता है। खैर,

बाकी सब यहाँ ठीक है, हर महीने अपने सबके लेटेस्ट फोटो भेजते रहा कर, वे मेरे सुख-प्रदाता होंगे। तेरे पिताजी ठीक ही होने चाहिए—वे अपने कमरे में पड़े खुर्राटे ले रहे होंगे। दिन निकल आया है, चलती हूँ, उन्हें चाय बनाकर दूँगी, बिना चाय पिए वे बिस्तर से नहीं उतरेंगे। अब बन्द करती हूँ। शुभकामनाओं सहित तेरी माँ।

●

बेटे का पत्र–माँ के लिए

सिडनी
3.3.2009

पूज्या माँ!

चरण स्पर्श।

माँ, तेरा पत्र मिला, पत्र तो समय पर ही मिल गया था, लेकिन उत्तर मैं अब तक नहीं दे सका। सोचा कि शांत मन, मस्तिष्क से तुझे पत्र लिखूँगा। बस, आज का दिन माँ के नाम, जी भर कर माँ से बातें करूँगा, जी भर कर लिखूँगा।

मेरे यहाँ विवाह करने से, आप लोग नाराज हैं। दुनिया आज सिमट कर बहुत छोटी हो गई है। संचार-माध्यम इतने उन्नत हो गए हैं कि कोई दूरी, दूरी न रही–पूरा संसार अँगुलियों के पौरवों पर आ बैठा है। लैपटॉप खोलो, अँगुली इधर-उधर घुमाओ और झट पहुँच जाओ दुनिया के एक कोने से दूसरे कोने पर। सारे विश्व की हलचल, मौसम, सारे नगर, सड़कें, नदियाँ, पहाड़ सब दिखाई पड़ जाते हैं, मैं दिल्ली के अपने बँगले की सिचुएशन तक देख लेता हूँ। जी.पी.एस. (ग्लोबल पोजीशनिंग सिस्टम) एक ऐसा उपकरण बन गया है कि आपको दुनिया के किसी भी शहर जाकर वहाँ अपने गंतव्य, के बारे में किसी से रास्ता पूछने की आवश्यकता नहीं–अपनी गाड़ी में जी.पी.एस. फिट करो और जहाँ जाना हो, वहाँ फिक्स कर लो, वह आपको गाइड करता रहेगा, बोल बोल कर सब दिशा निर्देश देता रहेगा जैसे–"100 कदम आगे बाईं ओर मुड़ो, इतनी दूर रह गया आपका गंतव्य, अब चौराहा आने वाला है, और तो और वह हमें सावधान तक करता रहता है, स्पीड कम करो, आगे सीसीटीवी कैमरा लगा हैं, चालान हो जाएगा, यहाँ गाड़ी डैड स्टॉप कर लो, यहाँ स्पीड

लिमिट इतनी है, आदि आदि।" मतलब यह कि वह आपको सही मार्ग दिखाता चलता है। फिर माँ, तू दूरी क्यूँ महसूस करती है सब जगह पहुँचना आसान है।

अब तो एक दिन में दुनिया के एक कोने से दूसरे में, आराम से पहुँच सकते हैं। जब मन करे आ जाओ। मेरा आना तो कठिन है। यहाँ फुर्सत नाम की चीज नहीं। तुम यूनिवर्सिटी में पढ़ाती हो, तुम्हारे यहाँ छुट्टियों की कमी नहीं। यही एक बात है कि मुझे तुम्हारे वाली टीचिंग लाइन अच्छी लगती है—साल में गिने-चुने दिन पढ़ाओ और बाकी मौज मस्ती, यहाँ ऐसा कुछ नहीं है। यहाँ हर काम अपने आप करना पड़ता है, अतः मन समझाने के लिए कह सकते हैं कि यहाँ आस्ट्रेलिया में, स्वावलंबन का पाठ बचपन से ही पढ़ाया जाता है। आलस्य जैसा यहाँ कुछ नहीं, आज का काम कल पर नहीं टाला जा सकता। शरीर को, मन लगाकर जितना अधिक यहाँ दफ्तर की सिल पर घिसोगे उतना ही रंग अच्छा आएगा—बिल्कुल भाँग की तरह। भाँग को जितना अधिक सिलबट्टे पर रगड़ा जाता है, उतना अधिक यह नशा देती है। उसी का नतीजा है कि आज मेरे पास सभी आवश्यक सुख-सुविधाएँ हैं। मन मस्तिष्क की इस घिसाई से माँ, मुझे एक स्फूर्ति, एक गौरव, एक चमक मिली है, आलसियों की तरह इसे पालता रहता तो परमुखापेक्षी बन जाता, हो सकता है, डायबिटीज, मोटापे जैसी कुछ बीमारियों की गिरफ्त में भी आ जाता। तुझे मैं दुर्बल लगता हूँ, तू माँ है ना, तुझे तो कमजोर ही दिखाई पडूँगा, लेकिन मैं बिल्कुल फिट हूँ। रोज योगा करता हूँ, ईश्वर में भी ध्यान लगाता हूँ पर तरह-तरह के पाखंड नहीं करता, तुम्हारे घिसे-पिटे रिवाज़ों को नहीं मानता। एक तू है माँ कि इतना पढ़-लिखकर भी तू इन परंपराओं का, रीति-रिवाजों का, आँखें बंद कर लबादा ओढ़े फिरती है।

माँ तुझे अपनी विदेशी बहू पर ऐतराज है। इस विषय में तुझसे बस इतना ही कहता हूँ कि जब कुछ दिन तू बहू के साथ रहकर देखेगी तो तुझे अपनी राय बदलनी पड़ेगी, फिर तुझे मेरी च्वाइस पर गर्व होगा। पता नहीं कहाँ से इस लड़की में ये संस्कार आए हैं कि किसी भी एंगिल से यह तुम्हारी आदर्श भारतीय बहू न लगे। कभी-कभी तो यह मुझे एक मीठी सी धौंस भी दे देती है कि जिस दिन तुम इस भारतीयता से पल्ला

झाड़ लोगे, मैं भी तुमसे पल्ला झाड़ कर, फुर्र उड़ जाऊँगी।

तुमने लिखा माँ कि तुझे मेरी शादी का मलाल है। मैं लिख चुका हूँ माँ कि निश्चिंत रहो, तुम्हारी विधर्मी बहू, तुम्हारी देसी आदर्श बहुओं से कहीं अच्छी है। जितनी चिंता मैं तुम्हारी करता हूँ उससे अधिक यह तुम्हारी चिंता करती है। मुझे कहती है कि मॉम डैड को यहीं बुला लो, मॉम रिटायरमैंट ले लें और यहाँ आकर हमारे साथ रहें। हर वक्त मेरी जान खाती रहती है कि मॉम डैड को यहाँ बुला लो, नहीं तो इंडिया चलो, मैं अपना जीवन सार्थक करना चाहती हूँ, अपने परिवार को पूर्ण करना चाहती हूँ, यह भी कोई जीवन है कि आधा परिवार यहाँ और आधा दस हजार किलोमीटर दूर। मैं देखना चाहती हूँ कि सास-ससुर का प्यार कैसा होता है, उनकी सेवा से कैसा सुख मिलता है, प्रातः उठकर उनके चरण स्पर्श से जो आशीर्वाद मिलेगा, उसे ग्रहण करना चाहती हूँ। मैं अकेले अनाथ की तरह नहीं रहना चाहती, मुझे लगता है कि मैं उस सुख को नहीं पा सकती जो मेरे अपने वश में है। मुझे प्लीज इस सुख से वंचित मत करो। यह भारतीय संस्कृति से इतनी अभिभूत रहती है कि हर समय पुस्तकें पढ़ती रहती है, पता नहीं कहाँ-कहाँ से पुस्तकें लाकर इसने तो एक लायब्रेरी सी बना ली है। आज इसे भारतीय संस्कृति, भारतीय इतिहास, दर्शन का इतना ज्ञान है कि मैं स्वयं को इसके सामने छोटा महसूस करने लगा हूँ। एक दिन बोली, मुझे भीष्म पितामह की कहानी सुनाओ। मैं तो सब कुछ भूल चुका हूँ, बस भीष्म-प्रतिज्ञा का अर्थ जानता हूँ, इसके पीछे की कथा का मुझे स्मरण नहीं। इसने मुझे बताया कि भीष्म-प्रतिज्ञा पिता की इच्छापूर्ति हेतु किया गया, पुत्र का वह बलिदान है, वह इंद्रिय-दमन है कि भगवान शिव भी एक बार जिसे नहीं जीत पा रहे थे और क्रोध में आकर उन्होंने कामदेव को भस्म कर दिया था।

एक दिन बोली, मॉम डैड नाराज हैं, मैं अकेली इंडिया चली जाती हूँ, तुम्हें तो फुर्सत नहीं, मैं उन्हें यहाँ ले आऊँगी। मैंने इसे बहकाना चाहा, "मॉम बहुत सख्त हैं, वे नहीं स्वीकार करेंगी तुझे।" तो कहती है, "चैलेंज?" मैंने कहा, "हाँ", तो सचमुच यह तैयारी करने लगी अकेले भारत जाने की। बोली, "अब बस मुझे यही देखना है कि मॉम कैसे नहीं मानती, जब सावित्री अपनी शक्ति से अपने पति को मृत्यु तक से छीनकर वापस लौटा सकती है तो क्या मैं अपने मनोबल से मॉम-डैड को भारत

से यहाँ नहीं ला सकती? मैं उनके चरणों से लिपट जाऊँगी, गलती की माफी माँगूँगी, जब तक माफ नहीं करेगी उनके पैर नहीं छोड़ूँगी, अनशन कर दूँगी, मुझे अनशन की शक्ति का पता है, आखिर वे माँ हैं, इतनी क्रूर कैसे हो सकती हैं?''

अब इसे एक सनक और सवार हुई है। कहती है कि ''एक दो महीने की छुट्टियाँ ले लो, हम इंडिया जाएँगे, जाकर वहाँ मॉम की इच्छानुसार विधि विधानपूर्वक शादी करेंगे, मुझे वह सब बहुत अच्छा लगेगा, मॉम से कह दो कि हमारी शादी की तैयारी करें, फ्रॉम ए टु जेड, सभी रस्में निभाएँ। मैं तो इस सबकी कल्पना मात्र से ही अभिभूत हूँ—मोड़ बाँध कर, घोड़ी पर बैठा दूल्हा कैसा लगता है, कैसे भात लिया जाता है, आरता होता है, दुल्हन सजती है, उबटन लगाया जाता है, तेलवान होता है, घोड़ी बन्ने गाए जाते हैं, बैंड बाजे बजते हैं, आतिशबाजी होती है, सबका आनंद लूटूँगी। पूरी शादी की फिल्म बनवाकर लाऊँगी और फिर उसे हमारे बच्चे देखेंगे, कितने खुश होंगे। मैं पूरा इंडिया घूमूँगी, कश्मीर देखूँगी, तीर्थ यात्राएँ करूँगी, तीज त्यौहार मनाऊँगी, भारतीयता की सारी रंगीनियाँ दिल में उतार लूँगी! मैंने इतना पढ़ा है, सभी को पढ़ा है, जितनी खूबसूरती भारतीय जीवन में है कहीं और नहीं दिखती। हर दिन रंगीन, सारे साल मौज मस्ती, हर तीज त्यौहार में भगवान का वास है, हमारी क्रिश्चियनिटी में तो दो एक बार ही रंगीनी दिखाई देती है, इनके अतिरिक्त जो रंगीनी है वह आदमी की अपनी खुशी ढूँढने की रंगीनी है, लेकिन भारतीय रंगीनी में तो कहीं शिव होते हैं, कहीं राम, कहीं कृष्ण, मतलब हर तीज त्यौहार के पीछे प्रभु विराजे रहते हैं। मैं वृंदावन जाऊँगी, काशी, हरिद्वार, बदरीनाथ चारों धाम करूँगी। तुम कहते हो भारतीय आलसी होते हैं, पता नहीं किस लिए ऐसा कहते हो? मैंने टी.वी. पर देखा है कि माघ के महीने की हाड़कँपा देने वाली ठंड में, गंगा किनारे प्रयाग में, न जाने कितने भारतीय पूरे एक मास अपनी साधना में रहते हैं, मुझे तो इसके स्मरण मात्र से ही सिहरन होती है, पता नहीं कौन सा सुख है जिसके पीछे ये लोग पागल रहते हैं जबकि इतनी ठंड में सामान्य जन, कमरों में बंद, हीटर जलाए, लिहाफ में दुबके, चाय की चुस्कियों के साथ सर्दी से लड़ते रहते हैं और ये खुले आकाश के नीचे, गंगा-जमुना के जल से नहा कर आती हुई शीतल, दाँतों की किटकिटी बजा देने वाले हवाओं

के झोंकों को झेलते हुए, रेत पर पुआल बिछाए, अपनी झोंपड़ियों में, एक-दो दिन नहीं पूरे एक महीने का कल्पवास करते हैं। कहाँ से आ जाती है इनमें इतनी सहिष्णुता? कोई निर्धन, ऋषि तुल्य भारतीय ही हो सकता है इतना सहिष्णु। सावन के महीने में, उत्तरी भारत तो, काँवड़मय हो जाता है। हरिद्वार के चारों ओर से, नंगे पैर, काँवड़ियों की कतारें लग जाती हैं, 'बोल बम', 'बम भोले' के उच्चघोष के साथ, गंगा जल से भरी काँवड़, कंधे पर लटकाए, मस्ती में झूमते काँवड़िये चलते रहते हैं, पाँवों में छाले पड़ जाते हैं तो क्या, कोई चिंता नहीं, कोई कष्ट नहीं, वे चलते रहते हैं, चलते रहते हैं और अपने-अपने मंदिरों में जाकर इष्टदेव भगवान शंकर का उसी जल से अभिषेक करते हैं, कैसी अद्भुत निष्ठा, कैसा पराक्रम? कहाँ से आ जाती है ऐसी आत्मशक्ति? क्या कहें उस सुख को? वह अनिवर्चनीय है।"

फिर मुझसे पूछती है, "तुममें है इतनी शक्ति? नहीं है न, लेकिन मैं एक बार जरूर कल्पवास करूँगी, एक बार काँवड़ जरूर लाऊँगी, जिस सुख को इतनी जनता लूटती है, मैं उससे वंचित क्यों रहूँ, तुम तो नास्तिक हो नास्तिक।" तुम यकीन करो माँ, इस दृष्टि से मैं बहुत सुखी हूँ। मैं अक्सर आश्चर्य चकित होता हूँ कि एक विदेशी लड़की, जिसका हिन्दू संस्कारों से दूर-दूर तक कोई वास्ता नहीं, वह साड़ी पहनना चाहती है, बिंदी लगाना चाहती है, हाथ जोड़कर भगवान की आराधना करती है, पूजा करती है। दूसरी ओर मैं यहाँ ऐसी भारतीय पत्नियों को देखता हूँ जो किसी भी एंगिल से भारतीय नहीं लगती—न वेशभूषा से, न खानपान से, न रहन-सहन से। इसके विपरीत मैं इसे तुम्हारा आशीर्वाद ही मानता हूँ कि एक ऐसी समर्पित पत्नी मुझे मिली जो हर समय मेरा ध्यान रखती है, मुझे इसमें प्रायः तेरी झलक नजर आती है—"अरे यह मत कर, वह मत कर, इससे तुझे नुकसान होगा, ठंड से बचाकर, खान-पान का ध्यान रखा कर, आदि-आदि।"

यह भी वैसा ही ध्यान रखती है, मुझे कोई परेशानी नहीं उठाने देती। शनिवार, रविवार यहाँ छुट्टी रहती है। शनि की प्रातः हम लोग, गाड़ी में खाने-पीने का सामान, दो फोल्डिंग कुर्सियाँ, एक कमरे का रूप देने वाले टैंट को रखा और कहीं भी निकल जाते हैं, जहाँ कुछ अच्छा सा दृश्य दिखाई दिया, वहाँ टैंट गाड़ लिया, भीतर बिस्तर लगाया, बाहर खुले में

कुर्सियाँ डाल ली और रात बिता दी। यहाँ किसी बात का डर नहीं, स्थान-स्थान पर सिक्योरिटी का इंतजाम है, लोग-बाग ऐसे ही निर्भय हांकर रात बिता देते हैं, शहरी चकाचौंध से दूर, प्रकृति की सुषमा लूटते हैं। तुम्हारे सामने तो दिल्ली रहती है जहाँ दिन में भी व्यक्ति सुरक्षित नहीं, यहाँ ऐसा कुछ नहीं—निर्द्वन्द्व पैर फैलाकर सोओ, मटरगश्ती करो—तुम तो सुबह उठते ही अखबार में हत्याओं, बलात्कारों, चेन स्नैचिंग, लूटपाट, डाकेजनी, चाकू, छुरी, रिवाल्वर के समाचार पढ़ती हो, तो तुम अधिक परेशान हो उठती हो, क्योंकि ऐसी सब घटनाएँ तेरे आस-पास ही घटती हैं, पर निश्चिंत रह, तेरी दिल्ली की तुलना में यहाँ ऐसा कुछ नहीं है। इसीलिए कभी-कभी मैं सोचता हूँ कि तुम लोग यहाँ आकर चैन से रहो। सोफिया भी यही चाहती है कि सब साथ रहें। हर समय कहती रहती है कि साथ रहेंगे। मुझे आश्चर्य होता है कि आज के जमाने में यह सास ससुर को लपेटना चाहती है, इनके यहाँ कोई नहीं चाहता साथ रहना, इनके यहाँ ही क्यों, हम भारतीय भी तो अब साथ रहने की भावना से दूर छिटकते जा रहे हैं।

इस बात को लेकर मेरे कई मित्रों से मेरी झड़प तक हो जाती है। शाश्वत अक्सर मेरे यहाँ आता रहता है, अपनी देसी पत्नी के साथ। देखकर मैं हैरान रह जाता हूँ कि यह भारतीय बहू है? अधुखला वक्ष, घुटनों तक की जीन्स, आँखों पर महज फैशन के लिए गॉगल्स, हाई हील्स, सँभल, सँभल कर डगमगाती-सी चलना, भयाक्रांत कि कहीं गिर न पड़े और टाँग न तुड़वा बैठे, कभी जरूरत पड़ जाए तो तेज चाल न चल सके, कंधे पर झूलती केश-राशि, कुल मिलाकर ऐसा लगता है कि कोई स्प्रिंगदार गुड़िया ठुमक-ठुमक कर चली जा रही है, हर वक्त ऐसा लगता है जैसे किसी पार्टी में जा रही हो। इस फैशन को मैं स्वीकार कर लेता हूँ क्योंकि यह यहाँ का कैजुअल पहनावा है। तुम्हारी बहू तो जन्म से ही इस फैशन में पली-बढ़ी है, यही इनकी जीवनशैली है, फिर भी सोफिया, साड़ी पहनना पसंद करती है, बिंदी लगाना, मेंहदी रचाना इसके शौक हैं। इसकी दिनचर्या देखकर मुझे अक्सर शर्मिंदगी उठानी पड़ती है। मैं पड़ा सोता रहता हूँ और यह नहा-धोकर, भगवान जी की पूजा-अर्चना कर, चाय का प्याला लिए खड़ी होती है, कहती है, "उठिए जनाब, बाहर देखिए, कब से सूर्य भगवान बाहर खड़े तुम्हारे दरवाजे पर दस्तक दे रहे

हैं, स्वयं तुम्हारे दर पर आए हैं तुम्हें दर्शन देने, उठो, सूर्यदेव तुम्हें निहार रहे हैं।" मैं झेंपता सा उठ खड़ा होता हूँ।

दूसरी ओर शाश्वत बता रहा था, कि भई हम दोनों में बहुत बढ़िया ताल-मेल है—सुबह की चाय मैं बनाता हूँ, इसे उठाता हूँ, फिर यह मेरे जाने का प्रबंध करती है। मैंने कहा, "वेरी गुड, इतना सहयोग तो तुम्हें देना ही चाहिए। एक मेरी मिसेज हैं, महारानी पता नहीं पहले जन्म में किसी भारतीय गाँव में पैदा हुई होगी, यह मेरा विश्वास है। मुझे कुछ नहीं करने देती, कहती है, "तुम कुछ करते हो तो मुझे महसूस होता है कि तुम मेरे हिस्से के सुख का अपहरण कर रहे हो, मैं जहाँ घर के इतने काम करती हूँ, एक कप चाय बनाकर देने में कौन सी आफत आ जाएगी, मैं अपने स्वास्थ्य को चुस्त-दुरुस्त रखने के लिए योगासन आदि में समय लगाती हूँ उसमें से दो-चार मिनट निकाल, तुम्हारे लिए चाय बना देने में खर्च कर देने से मैं दुबली हो जाऊँगी? बल्कि इसके विपरीत मुझे घर के कामों में योग-साधना का सा आनंद आता है और वास्तव में गृहकार्य भी तो योग-साधना ही है। तुम्हारे आफिस चले जाने के बाद मैं घर के सारे काम निपटा लेने के बाद, जब मैं अपने घर को देखती हूँ तो मुझे ऐसा लगता है जैसे मेरा घर तपोवन है, मैं यहाँ योग-साधना कर रही हूँ, विश्राम लेने मैं पलंग पर लेट जाती हूँ तो मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं उस शवासन में लेट गई हूँ जो दिन की योग-साधना के पश्चात् विश्राम हेतु किया जाता है, थोड़ी देर में फिर तरोताजा हो जाती हूँ और फिर अपनी कुटिया को सजाने-सँवारने में लग जाती हूँ।"

सच माँ, मुझे अपना घर वास्तव में एक तपोवन जैसा सात्विक सुख देता है। मैं कहता हूँ कि मुझे भी तो कुछ करना चाहिए, तुम्हारे काम में हाथ बँटा कर तुम्हारे कष्ट को कुछ कम करना चाहिए।" यह एकदम उबल सी पड़ती है, कहती है, "कष्ट? कैसा कष्ट? बताइए एक माँ को अपने बच्चे की नैपी बदलने में, उसे नहलाने-धुलाने में, सारे दिन उसके काम में लगे रहने में, क्या कष्ट होता है?"

"तो आप मेरी माँ हैं क्या?" मेरे मुँह से बरबस निकल पड़ा।

वह बोली, "माँ का शरीर मत देखो, उसका मन, उसकी आत्मा देखोगे तो तुम मुझे अपनी माँ ही समझोगे, जिस दिन माँ को महसूस होने लगेगा कि वह बेटे की नौकरानी है, मैं इसके लिए खटती रहती हूँ, उस

दिन वह माँ के खोल से बाहर आ जाएगी। मुझे घर के सभी काम करने में आत्मतृप्ति होती है। मैं इसे योग-साधना से कम नहीं मानती। योग से तन, मन आत्मा सभी को पोषण मिलता है। इसलिए सुनिए मिस्टर, मैं कोई अहसान नहीं कर रही तुम पर, यह तो मेरा स्वार्थ है, समझ लो मैं पक्की स्वार्थी हूँ।'' मैं कहता हूँ, ''पर मुझे भी तो कुछ करना चाहिए।''

तो वह कहती है, ''अरे करते क्यों नहीं कुछ? आफिस जाते हैं, वहाँ कितना परिश्रम करना पड़ता है, मुझे इसका अनुभव है, बस, बाहर आपका, घर मेरा, मेरा घर-संसार। कमाएँगे आप और घर सँभालूँगी मैं– प्लीज, मेरे घर-मंदिर के अधिकार में टाँग मत अड़ाओ। हाँ एक वायदा करती हूँ, जिस दिन मुझे, सो कॉल्ड, तुम्हारे काम करने में तकलीफ महसूस होने लगेगी, उस दिन निःसंकोच तुम्हारी सहायता लेनी शुरू कर दूँगी। तुम्हारे द्वारा काम किए जाने से मुझे ग्लानि होती है, क्योंकि इन्हें मैं तुम्हारे काम नहीं समझती, ये सब मेरी साधना के छोटे-छोटे अंग हैं, मेरे कर्म-यज्ञ में ये आहुतियाँ हैं।'' और मैं हाथ जोड़कर कह देता हूँ, ''अच्छा अब बस भी कर मेरी माँ।'' उत्तर में यह मुस्कराती है, कहती है, ''गुड, वेरी गुड, सो नाइस ऑव यू, यू आर वेरी प्रिटी।''

एक दिन किसी बात पर बहस छिड़ गई, यह बोली, ''देखिए जनाब, मुझे यह मत महसूस होने दीजिए कि आप में समझ कुछ कम है, आप किसी का चेहरा पढ़ने की योग्यता नहीं रखते, आप किसी को देखकर, उसके हाव-भाव से यह तक अनुमान नहीं लगा सकते कि यह प्रसन्न है या नाराज, सुखी है या दुखी, तो मुझे बहुत कष्ट होगा। लगता है आपने साहित्य नहीं पढ़ा। मॉम तो साहित्य की प्रोफेसर हैं, क्या उनके कोई संस्कार आप में नहीं आए? क्या आप मेरे उस चेहरे को नहीं पढ़ पाएँगे कि अब यह मेरे कामों से ऊब रही है, जरूर पढ़ पाएँगे और मैं वायदा करती हूँ कि मैं ऐसी नौबत नहीं आने दूँगी कि आपको मेरे दिल की बात, मेरे चेहरे से पढ़नी पड़े, मैं स्वयं तुमसे साफ-साफ कह दूँगी कि भई अब बस, अब मुझे आपका काम करने में आनंद नहीं आता। मैं कह चुकी हूँ, फिर दोहराती हूँ कि बाहर आपका, और घर, घरवाली का। अरे घर का सुख पाने के लिए ही तो मैंने नौकरी छोड़ दी है।'' मेरे पास चुप हो जाने के अलावा और क्या चारा था।

एक दिन तो तुम्हारी बहू ने माँ, शाश्वत को डाँट दिया था। बातों-

बातों में पेरेंट्स पर चर्चा चल पड़ी। सोफिया शाश्वत से बोली, ''भाई साहब, आपके मॉम डैड जल्दी इंडिया लौट गए, वे तो एक साल के वीज़ा पर आए थे, दो ही महीनों में लौट गए।''

शाश्वत बोला, ''भाभी, उनका यहाँ मन नहीं लगा।'' इस पर सोफिया ने आँखें फाड़कर कहा, ''मन नहीं लगा? माँ-बाप का अपने बच्चों के साथ मन नहीं लगा? स्ट्रेंज, हाउ इज इट? मैं नहीं मानती।''

''हाँ भाभी हमने बहुत कहा, रुक जाइए, पर वे रुके नहीं, बड़े जिद्दी हैं मेरे पेरेंट्स भाभी, जो ठान लिया सो ठान लिया, उसे करके ही मानते हैं।''

''मैं नहीं मानती कि माँ-बाप का मन अपने बच्चों के साथ नहीं लगे, कोई न कोई बात जरूर रही होगी, कुछ कमी देखी होगी आप लोगों में।''

''हमने तो भाभी उन्हें हर तरह की सुविधा दी, पर उन्हें हमारे रंग-ढंग, तौर-तरीके पसंद नहीं आए, माँ कहती थी, ये भी कोई भारतीय नारी के लक्षण हैं, सुबह आठ बजे तक पड़े सोते रहो, फिर भाग-भाग कर ऑफिस जाने की तैयारी करो, भागते-भागते जूते पहनो, हाथ में टोस्ट पकड़े-पकड़े माँ-बाप को बॉय कर, रास्ते में टोस्ट चबाते स्टेशन की ओर गाड़ी पकड़ने के लिए भागो, अरे जानवर भी एक जगह बैठ, खड़ा होकर अपना पेट भरता है और ये भागते-भागते नाश्ता करते हैं।'' माँ-बाप पार्कों में बैठ-बैठकर दिन काटें, ये शाम को थके-माँदे आकर अपने कमरे में घुस जाते हैं, माँ-बाप इस इंतजार में रहते हैं कि ये दोनों हमारे पास आकर बैठें, और बेटा है कि आता है, दरवाजे पर खड़ा कहता है कि ''कहो माँ ठीक?'' ''सब ठीक है बेटा।'' और बात पूछकर अपने कमरे में चला जाता है। मानता हूँ कि बेटे की लाचारी है, वह अपने आराम के लिए समय चुराता फिरता है, एक-दो मिनट भी उसे मिलते हैं तो वह उसमें आराम ले लेना चाहता है, माँ-बाप उस मजबूरी को नहीं समझते, बेटे से कुछ वार्तालाप होता है तो डिनर पर, खाते समय होता है, सुबह बेटा आफिस के लिए निकलता है तो बस ''अच्छा माँ, मैं चलता हूँ'' कह देता है, बहू तो यह भी नहीं कहती, बस तैयार हुई और चली जाती है, उसे जो थोड़ा बहुत समय मिलता है उसे वह अपनी टीप-टाप में खर्च करती है, ऐसे में कैसे लगे माँ-बाप का दिल?'' तुम लोगों ने ही उन्हें बर्दाश्त नहीं किया होगा, तुम्हारी प्रायवेसी में शायद उनके कारण व्यवधान पड़ता होगा।''

इस पर शाश्वत ने कहा, "नहीं भाभी, हम क्यूँ नहीं करते उन्हें बर्दाश्त, हमारे लिए तो वे काफी सहायक थे—बच्चे को स्कूल छोड़ आया करते थे, उसे घुमाने ले जाया करते थे, हम दोनों थके-माँदे आफिस से घर लौटते थे तो हमें गरमा-गरम चाय मिल जाया करती थी, इसे आटा मँडा-मँडाया तैयार मिलता था, सब्जी कटी-कटाई मिलती थी, बस इसे तो सब्जी छोंकना और फुलके बनाना, बस ये दो काम रहते थे, यहाँ तक कि बर्तन भी माँज दिया करते थे, हम तो बहुत मना करते थे, कि माँ बरतन मत माँजा करो, पर वह मानती ही नहीं थी। फिर हमारे बेटे को उनसे प्यार मिलता था कि आज भी वह दादा-दादी को बहुत मिस करता है, करे भी क्यूँ नहीं, उसकी हर इच्छा जो पूरी करते थे, उसे चॉकलेट दिलाते थे, अब वह चॉकलेट का आदी हो चुका है, उनके लाड़-प्यार में हमारा बेटा सचमुच बड़ा ही जिद्दी हो गया है, हमने तो कभी इसे भी माइंड नहीं किया कि ये अपने लाड़-प्यार से उसे बिगाड़ रहे हैं।"

बीच में ही बात काटकर शाश्वत की पत्नी बोली, "अब हमें भुगतना पड़ रहा है इसे, यह हरदम दादाजी, दादीजी की रट लगाए रहता है, तबसे इसका पढ़ाई में भी मन नहीं लगता, बताइए भाई साहब, इतना सब कुछ होने पर भी हमने कभी बुरा नहीं माना, अब भुगतना हमें पड़ रहा है, कभी-कभी तो इसे मेरे थप्पड़ भी पड़ जाते हैं जब मैं देखती हूँ कि यह मेरी सुनता ही नहीं, क्रोध में इसने अपनी कापी फाड़ दी और बोला, "आप बहुत बुरे हैं, आप मुझे प्यार नहीं करते, मारते हैं, दादाजी ने कभी नहीं मारा, मुझे अपने पेट पर लिटाते थे, चॉकलेट दिलाते थे।" मैंने कहा, "चॉकलेट खाने से दाँत खराब हो जाते हैं?" तो उल्टी-सीधी बहस करता है, "सब बच्चे खाते हैं, मैं भी खाऊँगा, मैं दादाजी के पास जाऊँगा, मैं यहाँ नहीं रहूँगा।" उसकी इस तरह की जिद मैं कैसे बर्दाश्त करती, मैंने इसकी पिटाई कर दी, "बोल जाएगा इंडिया?" "जाऊँगा।" मैंने एक चाँटा दिया इसके मुँह पर खींचकर, मैंने फिर एक और मारा, बोली, "जाएगा दादाजी के पास?" "जाऊँगा-जाऊँगा, जाऊँगा।" बताइए भाई साहब मुझे गुस्सा नहीं आएगा इसकी इस हरकत पर? मेरा क्रोध भी बढ़ता गया, इसकी बराबर पिटाई होती रही, पर यह पिटता रहा, टस से मस नहीं हुआ। आखिर मुझे ही हार माननी पड़ी और मैंने इसे धक्का देते हुए कहा, "जा मर," उस दिन मैं भाई साहब खूब रोई, बराबर सोचती

रही कि अभी से इसकी यह हालत रही, तो आगे क्या होगा?''

इस पर सोफिया भड़क उठी, बोली, ''माफ कीजिए भाभी, अब बस मेरी सब समझ में आ गया, ठीक ही चले गए आपके पेरेंट्स, उन्हें ऐसे बच्चों के साथ रहना भी नहीं चाहिए जो खुद को अपने माँ-बाप से भी अक्लमंद समझने लगें और यह सोचने लगें कि ये हमारे बेटे को बिगाड़ रहे हैं, अरे दादा, दादी क्या अपने पोते को कभी बिगाड़ सकते हैं? बच्चे को तो प्यार चाहिए, आपके पास फुर्सत नहीं उसे प्यार देने की, हफ्ते में दो दिन आपको मिलते हैं, उसमें भी आप लोग अपने शॉपिंग, घर की, रसोई की चीजों की खरीद-फरोख्त में बिता देते हैं, बच्चे के लिए आपके पास टाइम ही नहीं। मैं आपसे पूछती हूँ कि बच्चा क्यूँ याद करता है अपने दादा-दादी को? आपसे दूर क्यों जाना चाहता है? बात साफ है, आपके पास समय नहीं है उसे देने के लिए, आपके पास अगर थोड़ा बहुत समय है तो वह अपने लिए है, न अपने बेटे के लिए, न अपने माँ-बाप के लिए, बस थोड़ा बहुत दिखावा करके उधार-सा उतार कर आप समझते हैं कि आपका कर्तव्य पूरा हो गया। ऐसे बच्चों के पास माँ-बाप कैसे खुश रह सकते हैं, वे सोचते हैं हम यहाँ अकेले हैं, इंडिया में भी अकेले, तो फिर यहीं क्यूँ रहें? क्यूँ वह बेटे-बहू की बातें सुनें कि ये हमारे बेटे को बिगाड़ रहे हैं, उसे जिद्दी बना रहे हैं, ठीक ही किया, उन्होंने। और मैं भविष्यवाणी करती हूँ भाई साहब, इस दर्द का अहसास आपको तब होगा, जब आप बूढ़े बाप की श्रेणी में आ जाओगे। तब आपको इसके भीतर की सच्चाई का पता चलेगा, गलती आप दोनों की है।''

इसे सुनते ही माँ, शाश्वत मुँह बनाकर चला गया और अब काफी दिनों से नहीं आया। उस दिन आवेश में सोफिया ने एक ऐसी कड़वी बात कह दी जो उसे नहीं कहनी चाहिए थी। शाश्वत ने सोफिया से कहा, ''देखो भाभी, हमने उनकी सुख-सुविधा के लिए कोई कसर नहीं रख छोड़ी थी। आप जानती हैं, बिजली यहाँ कितनी महँगी है, हमने कभी नहीं चाहा कि वे कष्ट में रहें, उनके कमरे में हमने हीटर लगवा दिया, बराबर उनसे कहते थे कि आप लोग हीटर चला लिया करें, पर वे बहुत कम चलाते थे, बताइए इसमें हमारी क्या गलती थी, हमने कभी कंजूसी नहीं बरती उनके लिए।''

इसे सुनते ही माँ तुम्हारी विदेशी, विधर्मी बहू भड़क उठी और व्यंग्य

में बोली, "हाँ भाई साहब, यहाँ के लोग अपने कुत्तों पर इससे भी अधिक खर्च करते हैं।" सुनते ही शाश्वत का मुँह लाल हो उठा, बोला तो वह कुछ नहीं पर मुँह बनाकर चला गया। यह है तुम्हारी बहू का पूरा स्कैच। बहू कैसी है, इसका अनुमान तुम लगा सको, इसीलिए मैंने सोफिया के विषय में इतना विस्तारपूर्वक लिखा है।

तुझे इस बात की कसक है माँ कि मेरे विवाह की रस्में नहीं हुई। मुझे आश्चर्य होता है आप पर कि यूनिवर्सिटी की प्रोफेसर होते हुए भी आप इन फिजूल की बेसिर-पैर की बातों से चिपकी पड़ी हैं, अभी तक भी अपना पीछा नहीं छुड़ा पाई इन चीजों से? तूने लिखा माँ कि मेरी घुड़चढ़ी नहीं हुई। पता नहीं कैसे पचा लेती हो तुम इस तरह की बातों को कि बेटा जोकर बनकर, फेंट पर तलवार कसकर घोड़ी पर बैठे, बैंड बाजे वाले उल्टी-सीधी कान फोड़ने वाली आवाजें निकालते रहें, घोड़ी बार-बार चमकती रहे, लड़का उस पर बैठा-बैठा डर से काँपता रहे कि कहीं पटकनी मार दी तो कैसी हास्यास्पद स्थिति बन जाएगी। बताइए ऐसी रस्म से क्या फायदा? आज घोड़ी की सवारी का जमाना है? ऐसी बात नहीं कि यहाँ मैं दूल्हे के वेश में सजा नहीं, बहुत बढ़िया डिजाइनर सूट पहना था मैंने, घोड़ी पर तो नहीं, पर अपनी फूलों से सजी बी.एम. डब्ल्यू. पर बैठा था, गाड़ी की छत ऊपर से खुली थी, गाड़ी धीरे-धीरे रेंग रही थी, जैसे नाव में बैठे सैर कर रहे हों, पहले मैं मंदिर गया, फिर सोफिया के घर, उसे लेकर फिर हम कुछ साथी लोग, सोफिया के पेरेंट्स आदि कोर्ट गए, वहाँ मैरिज रजिस्टर कराई, तुझे आश्चर्य होगा कि सोफिया साड़ी बिंदी में थी। फिर हम मंदिर गए, वहाँ दोनों ने भगवान जी का स्मरण किया, पुजारी से आशीर्वाद लिया और फिर चर्च गए, वहाँ भी प्रभु का आशीर्वाद लिया--न कोई शोर-शराबा, न हल्ला-गुल्ला, सब शांतिपूर्वक सम्पन्न हो गया।

एक और गम है तुझे माँ, कि तेरे बेटे के विवाह में भात की रस्म नहीं हुई। मुझे खूब स्मरण है माँ, मैंने बहुत नजदीक से देखा है, मामा जी के बड़े बेटे, शांतनु भैया के विवाह में वह सब फूहड़पन देखा था, तू भी उन स्त्रियों में साड़ी पहने गीत गाती औरतों के झुंड में स्वर में स्वर मिला रही थी। दरवाजे पर औरतों की भीड़ इकट्ठी होकर गा रही थी–

"रे भैया रघुवीर, भात सवेरा लाइयो"–साँझ हो चुकी थी, सूर्य

अस्त होने वाला था और मामी जी के मधुकर भैया दरवाजे के बाहर एक चौकी पर खड़े थे, मामीजी आरती उतार रही थी, और स्त्रियाँ गा रही थी—"रे भैया रघुवीर", भैया का नाम तो मधुकर है, पर वे पुकार रही हैं रघुवीर को, हर भात में रघुवीर ही आता है, अपने भैया के घर हर स्त्री भात न्यौतने जाती है, पर जब भैया भात लेकर पहुँच ही गया है तो फिर आग्रह कैसा कि सवेरे सवेरे ही आ जाना। इसके अलावा एक और मूर्खता भरा गीत—"मत बरसो इंदर राजा रे मेरी माँ का जाया भीजै", आसमान साफ है, कहीं बादल का नाम निशान नहीं और मामी, औरतों के साथ मिलकर इंद्रदेव से प्रार्थना कर रही थी कि तू बरसना मत, कहीं मेरी माँ का जाया, मेरा सहोदर भीग न जाए। सब एब्सर्ड। फिर गाती है, "मेरे माथे को झूमर लाइयो, गले को लाइयो जंजीर, रे भैया रघुवीर। खाली एक-दो चीज से बहन का काम नहीं चलेगा, उसे तो पैरों में पायल, हाथ में कंगन, कमर में तगड़ी, पैरों में बिछुए—मतलब जितने भी गहने हैं, सभी लाने की माँग करती है, भले ही उसके भैया का दिवाला पिट जाए। अरे कहीं तो कोई तुक हो, कहीं भी अक्ल का दखल नहीं दिखाई पड़ता—किसी के भी भात की रस्म देख लो—सभी जगह भैया रघुवीर ही होगा, अपने भाई तक का नाम नहीं लेती, बारिश के कोई आसार नहीं फिर भी इंद्र देव से प्रार्थना करेंगी कि तू बरसना मत, वे ही घिसे-पिटे गाने गाएँगी—गाने के स्वरों में कोई आरोह-अवरोह नहीं, सभी गीतों के सुर एक से ही। मुझे माँ इन सब रस्मों में मूर्खता ही नजर आती है और जब मैं देखता हूँ कि मेरी पढ़ी-लिखी माँ उन फूहड़ औरतों के स्वरों में स्वर मिलाकर एक गुहार लगा रही हैं, तो क्या बताऊँ कैसा लगता है, बस कुछ कह नहीं सकता महसूस ही कर सकता हूँ, मुझे शर्म आती है यह महसूस करते हुए कि कोई क्या कहेगा, "इतनी गँवार है मेरी माँ। सो माँ ऐसी रस्म के न होने का तुझे अफसोस नहीं होना चाहिए।"

इससे भी बेहूदी रस्म मुझे वह लगती है जब दूल्हा घर से बहू लेने के लिए घोड़ी पर बैठकर शान से तलवार लटकाए निकलता है मानो संग्राम विजय करने जा रहा हो और उसे खबर लगती है कि दूल्हे राजा, रुको, तुम्हारी माँ तो कुएँ में पैर लटकाए उसमें कूद पड़ने को तैयार बैठी है, दूल्हा भाग कर माँ के पास पहुँचता है, माँ से पूछता है कि क्या हुआ माँ? माँ एक्टिंग करती है—उसका आशय यह है कि "बेटा, तू काले सिर

वाली लेने जा रहा है, मैंने तुझे जन्म दिया है, पाला-पोसा है, पढ़ाया-लिखाया है, मेरा बुढ़ापा आ गया है, मुझे अब जब तेरे सहारे की आवश्यकता है, कोई लड़की तुझे मुझसे छीन कर ले जाएगी।"

बेटा कहता है, "माँ फिकर न कर, तेरा बेटा इतना कमजोर नहीं कि कोई उसे तुझसे हर कर ले जाए, कसम धरम खाकर वह माँ को यकीन दिलाता है कि माँ मैंने तेरा दूध पिया है, दूध की लाज मैं अवश्य रखूँगा तू बेफिकर रह।" और तू देखती रहती है, मैं भी देख रहा हूँ कि बेटे किस तरह दूध की लाज रखते हैं, रोज अखबारों में तरह-तरह की घटनाएँ पढ़ते हैं—जिनका लब्बो लुआब यही होता है कि बहू के आते ही, माँ-बाप के सब अधिकार खत्म, मालकिन बन जाती है, दो-चार घंटे पहले ही आई हुई एक अनजान लड़की, जो कल तक मालिक थे, तुरंत ही बेदखल होकर, बिना तनख्वाह के नौकर बन जाते हैं और बिना तनख्वाह के नौकर, ट्रस्टी भी, नई नवेली को बर्दाश्त नहीं होते, उनकी चारपाई कोठी के एक छोटे से पिछले कमरे में डाल दी जाती है, शनैः-शनैः चारपाई समेत उन्हें घर से बाहर धकिया दिया जाता है, कुछ ही बेशर्म माँ-बाप ऐसे होते हैं, जो कानून से अपना संरक्षण माँगते हैं वरना, यूँही घुट-घुट कर मर जाते हैं—मैं इसमें, लड़की की तुलना में, लड़के को ज्यादा दोषी ठहराता हूँ।

तो ऐसी रस्म तुम भी निभाना चाहती थी माँ। तुमने सोचा कभी, कि दिल्ली में कहीं तुझे कुआँ नजर आएगा जो तू कुआँ-पूजन की रस्म को निभाएगी? मैं जानता हूँ तू कुआँ भी जरूर पूजना या पुजवाना चाहेगी—पर कैसे? पहली बात तो कुआँ कहाँ से लाएगी? दूसरी बात किसी कॉलोनी के आसपास गाँव में कुआँ अगर मिल भी गया तो उसमें डूबने लायक भी पानी होगा? और यदि होगा भी तो क्या उसका पानी पीने योग्य होगा? यदि उसका पानी पी लिया तो एम्स में भरती होना पड़ेगा। आश्चर्य है मुझे माँ कि साहित्य की प्रोफेसर होकर भी तुम ऐसी-ऐसी बेसिर-पैर की रस्मों से जकड़ी हुई हो। एक गीत सुना है मैंने—"समधन तेरी घोड़ी चने के खेत में।" बताइए समधन की घोड़ी होगी और वह घोड़ी नाचेगी? और वह भी चने के खेत में। दिल्ली में दिखाई देते हैं कहीं चने के खेत, समधन की घोड़ी जिसमें नाच सके, सुन-सुनकर मुझे तो हँसी आती है। तू समझती है कि ससुराल जाकर

सालियों के सामने, मैं ''छन पकैया, छन पकैया, छन के ऊपर बाजा, सास हमारी महारानी है, ससुर हमारा राजा'' गाता? एक ओर तो सारे राजा-महाराजा गद्दी से उतार फेंके गए हैं, दूसरी ओर हम उन्हें राजा-महाराजा बनाए जा रहे हैं। फिर वे सालियाँ, सलहजें मेरा इस बहाने इम्तहान लेती कि जीजाजी तोतले, हकले तो नहीं। आजकल क्या शादी से पहले अच्छी तरह लड़के को ठोक बजाकर नहीं देख लिया जाता?''

मैं रोज एक से एक बढ़िया शैम्पू, हेयर ऑयल इस्तेमाल करता हूँ, क्या तू समझती है कि तेरा बेटा, बान तेल की बेहूदी रस्मों का पालन करता? हो सकता है उस जमाने में तेल साबुन न होते हों और लड़के को उबटन लगाकर निखारा जाता हो, उसे सुंदर बनाया जाता हो, काजल लगाया जाता हो, आजकल कौन लड़का काजल लगाता है? सब फूहड़पन, भेड़-चाल है, कहीं भी तो अक्ल का दखल नहीं।

इतना सब कुछ लिख गया हूँ माँ, कदाचित् तुझे बुरा लगा हो, पर माँ क्या मैं गलत कह रहा हूँ, सैंकड़ों सालों से हम क्यूँ इन परंपराओं का, रस्मों का, आँखें बंद किए पालन किए जा रहे हैं? क्यूँ नहीं अपनी बुद्धि का इस्तेमाल करते? क्यूँ नहीं हम विकास की दौड़ में अक्ल के साथ शामिल होते?

माँ मेरी ओर से चिंता मत करो, मैं कह चुका हूँ कि मैं सच्चा गृहस्थ सुख भोग रहा हूँ, उसी प्रकार का जिस प्रकार का तुम चाहती थी, जिसे तुम आदर्श मानती हो, वैसा ही मुझे इस विधर्मी विदेशी सोफिया से मिल रहा है, देसी बहू से मिलता या नहीं, यह तो परमात्मा को पता है, लेकिन इस मामले में मैं परमात्मा का शुक्रगुजार हूँ। अब बस माँ, प्रणाम, सोफिया तुम्हें चरण स्पर्श कहती है। शायद हम जल्दी ही इंडिया आए मुझे सोफिया की इस भावना की कद्र करनी चाहिए। पत्र डालती रहा करो।

तुम्हारा बेटा

पत्रोत्तर

(पिता, पुत्र का पत्राचार)

डालमपुर
मेरठ
12.12.09

आयुष्मान् बेटे!

यावत् जीवेत् सुखं जीवेत्। मैं, तेरी माँ, भले चंगे हैं। प्रभु करे, तू अपने जीवन से सन्तुष्ट रहे। तेरा पत्र मिला, एज़ इट इज़ पढ़ता हूँ–

"लॉस एंजिलेस, यू.एस.
15-11-09

पूज्य पिताजी!

प्रणाम!

आशा है आप और माँ ठीक होंगे। इधर मैं, आपकी बहू, आपका पोता ठीक हैं। वह तो अब फटाफट इंग्लिश बोलने लगा है। लगता है, मुझे इससे अंग्रेजी बोलनी, सीखना पड़ेगा। यहाँ का जीवन बड़ी भागमभाग का है। पर अब मुझे पैसे की ओर से बेफिक्री है। मैं कई बार कह चुका हूँ कि आप, माँ को लेकर यहाँ आ जाइए, अब तो आराम से ज़िन्दगी बिता लीजिए। आपका मन नहीं करता, बेटे, पोते और बहू से मिलने का? आप आइए तो, फिर देखिए, आपका बेटा, आपको आपके मनोनुकूल सुख सुविधा देता है कि नहीं, अथवा आपको यकीन ही नहीं रहा अपने बेटे में?

आपका तो वही ढर्रा है, वही धोती-कुरता, वही बीस वर्ष पुराना चश्मा, वही ग्रामीण वातावरण, वही कुपढ़्ढे लोगों के बीच अपना समय काटना, वही ठंडा, गर्म, गीला मौसम–इस सबके बीच रहना आपको

किस प्रकार अच्छा लगता है? आपको मेरी इज्जत का ज़रा भी ख़्याल नहीं। कोई क्या थूकेगा मेरे मुँह पर कि बेटा सात समुन्दर पार कारों में घूमता फिरता है और बाप, जीवन की आखिरी साँस लेते से छकड़ा स्कूटर में किक पर किक मारकर पसीने-पसीने हुआ जा रहा है, नहीं स्टार्ट हुआ तो, बस पर लटक गए, ऑलरेडी पैसेंजरों से ठूँसमठूँस बस में, बस का कंडक्टर आपको पीछे से आगे धकिया देता है। उफ! मैं तो कल्पना भी नहीं कर सकता—बस न हुई आलूभरी बोरी हो गई!

आपको क्या मिलता है, इस प्रकार बच्चों को घेरकर पढ़ाना और वह भी बिना पैसे, एकदम मुफ़्त! पिताजी, जीवन में पैसा ही सब कुछ है। जरा पीछे मुड़कर अपने लम्बे अतीत में झाँककर तो देखिए एक बार—सारी जिन्दगी हाड़गोड़ तुड़ाने के बाद क्या कुछ है आपके पास? बस, एक टूटा-फूटा घर, जिसे मैं तो झोंपड़ी ही कहूँगा, सुदामा जैसा जीवन-निर्वाह, माँ के पास गिने-चुने कपड़े, गहने किस चिड़िया का नाम है, उन्हें पता नहीं! आपको नहीं तो, माँ को तो चाहिए सब कुछ। मैं कुछ भेजता हूँ तो आप कहते हैं—ना भाई ना, मुझे नहीं चाहिए, यह सब, अब मेरी उम्र बाबू बनने की है? आखिरी वक़्त में क्या ख़ाक मुसलमाँ होंगे।'' यही सब सोचते हुए मैंने आपके लिए, द्वारका दिल्ली में एक ए/सी फ्लैट खरीद दिया था कि आप और माँ वहाँ आराम से ऐश करें। लेकिन आप वहाँ सालभर भी न रहे और बतर्ज—'राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं', गाँव लौट गए। ख़ैर, हम सबका आग्रह है कि आप यहाँ आ जाइए, मैं टिकिट, इंश्योरेंस आदि सबका इन्तजाम किए देता हूँ। मैं आपको, आपके मनोनुकूल सब सुख-सुविधाएँ दूँगा। आपको आदेश तो मैं दे नहीं सकता, जिद ही कर सकता हूँ। आप आइए प्लीज़! बहू आपको, माँ को चरण-स्पर्श कहती है, आपका पोता कहता है, डियर ग्रैंड पा, प्लीज़ डू कम, ब्लैस अस। मेरी नहीं तो पोते की ही बात मान जाइए। हमसे कुछ नाराज़गी हो तो हम क्षमाप्रार्थी हैं। उत्तर दीजिएगा, आपका बेटा।''

बेटा, तेरा पत्र मेरे सामने रखा है, एक बार नहीं, कई बार पढ़ गया इसे। तेरे पत्र की हर बात के साथ, मेरे मन-सागर की तरंगों पर मेरी भाव-नौका ऊपर-नीचे, उठती-गिरती रही। तू चिन्ता क्यों करता है रे, यकीन मान बेटा, मैं और तेरी माँ बिलकुल ठीक हैं। मुझे तो पता ही नहीं चलता कि टाइम, हाथ से कैसे फिसल जाता है और तेरी माँ, तेरी अलबम

के साथ कभी मुस्कराती, कभी धोती के पल्लू से आँखें पोंछती, बिता देती है। वह कुप्पा-सी फूलकर कहती है, मैं किसी महारानी से कम नहीं, बेटा राज भोग रहा है। सन्तोष हुआ यह जानकर कि तू सन्तुष्ट है। बेटे, सन्तुष्टि का कोई पैमाना नहीं होता, बमुश्किल दो वक्त की रोटी का जुगाड़ कर, सन्तुष्ट रहने वाले देखे हैं मैंने और धन्नासेठों को भी असन्तुष्ट देखा है। कैसी विडम्बना है, एक मोटी-सी बात समझ नहीं आती इस पीढ़ी को कि सुख, उसके भीतर विद्यमान है और वह इसे खोजने के लिए बावला हुआ संसार भर की खाक छानता फिरता है—बगल में छोरा नगर में ढिंढोरा। अरे...यह तो मैं उपदेश देने लगा, ध्यान ही नहीं रहा कि तू अब बच्चा नहीं रह गया है, बच्चे वाला हो गया है।

बकौल तेरे, तू मुझे हर सुख-सुविधा, मेरे मनोनुकूल दे सकता है, जानकर खुशी हुई। पर मेरी खुशी की हिज्जे भी तुझे आती है? हर व्यक्ति की अपनी अलग खुशी होती है—मैं तेरी खुशी में खुश हो सकता हूँ, पर तू मेरी खुशी में खुश नहीं हो सकता, क्यों? क्योंकि पुत्र, पिता का अंश होता है, पिता, पुत्र का नहीं। इसीलिए मुझे तेरी कोई बात बुरी नहीं लगती, पर तुझे मेरी बातें रुचिकर नहीं लगतीं...नो प्रॉब्लम। ब्यौरेवार तेरी बातों का उत्तर देता हूँ।

मैं मानता हूँ मनुष्य को दानशील होना चाहिए, दानार्थ पैसा तो है नहीं, अतः विद्यादान करता हूँ—विद्यादानं सर्वश्रेष्ठदानम्। तुझे मेरे फटीचरपने पर शर्म आती है। फटीचर हूँ, तो हूँ—इसका उत्तर मात्र यह है कि तेरे फार्मूले से चला होता तो आज तुझे इस लायक न देखता कि तू हर सुविधा मुझे मेरे अनुकूल दे सकता है। कक्षा 'अ' से लेकर पी-एच.डी. तक, कुल मिलाकर—इन टोटो—जितनी फ़ीस मेरे पिताजी ने मेरी शिक्षा पर खर्च की, उतनी तो तेरे नर्सरी के एडमीशन में खर्च हो गई थी। मेरे सामने दो विकल्प थे—अपनी ज़िन्दगी अपने लिए जिऊँ या पुत्र के लिए। चूँकि मेरे पिता ने, अपनी हर सुख-सुविधा पर मुझे तरजीह दी थी, तो वे संस्कार, कुछ-न-कुछ, मुझमें आने ही थे। मेरी मानस-स्क्रीन पर मेरे माँ-बाप की दारिद्र्य-फिल्म निरन्तर चलती रहती है। अतः मैंने भी पुत्र को तरजीह दी। वरना तू भी आज मामूली-सी मास्टरी कर रहा होता तो अपने वेतन का काफी अंश कॉलिज-मैनेजमेंट को देता रहता क्योंकि नियुक्ति-पत्र

देने से पूर्व ही वे तेरा त्याग-पत्र ले चुके होते जिसकी तलवार हर समय तेरे सिर पर लटकती रहती और फिर एक दिन तेरा बेटा तुझसे वही सवाल पूछता, जो तू आज मुझसे पूछ रहा है। अस्तु,

मेरी सुख-सुविधा के लिए तूने एक बढ़िया फ्लैट खरीद दिया, बस इतना ही समझा है तू तेरे टेस्ट को। समझा है तो बस इतना—जो तुझमें कहने की हिम्मत नहीं हुई कि मैं एक पढ़ा-लिखा गँवार हूँ। हाँ भई, मैं क्यों शर्म करूँ इसमें, हूँ तो बस हूँ, मेरी जीवन-शैली युगानुसार नहीं, अभ्यागत को—पड़ोसी से चुपचाप प्याला मँगाकर—उसमें चाय नहीं देता। अपने फटेहाल पर पर्दा डालने में यकीन नहीं है मेरा। ''काहू की बेटी से बेटा न ब्याहना'', और बेटा ब्याहना भी हो तो भी मैं जिस हाल में हूँ, उसी में रहूँगा। बस यही तो एक गड़बड़ है आजकल के बच्चों के साथ—बेटा चाहता है कि बाप अपने उस जीवन को एकदम बदल डाले जिसे उसने बचपन से अपने ढंग से सींचा है। आखिर क्यों नहीं समझ पाते ये बच्चे कि कितना अन्नैचुरल, अनैतिक हक वे जता रहे हैं अपने बाप पर—बाप तो 65-70 वर्षों की आदतों को एक झटके में ही बदल डाले और वे अपनी 15-20 वर्ष की आदतों को छोड़ने के लिए टस-से-मस तक न हों। बस, बाप उनके अनुसार चले और वे अपनी आदतों के ही गुलाम बने रहें। हाँ, तो मैं कह रहा था तेरे द्वारका वाले फ्लैट के बारे में।

लगभग साल भर तक मैं द्वारका रहा। वहाँ ए/सी कमरे में मेरा दम घुटता था। बाहर खुली हवा में अपना सुख बीनने चला जाता था। बाहर जाकर मुझे और भी घुटन होती थी—चौड़ी-चौड़ी, साफ-सुथरी दिखाई पड़ने वाली सड़कें, पैट्रोल, डीजल के धुएँ में आकंठ डूबी हुई, हार्नों की बेवजह कानफोड़ू आवाज़, एक-दूसरे को पीछे धकिया देने की होड़, किसी को भी किसी के नफे-नुकसान से कोई सरोकार नहीं और शान्ति वह तो जैसे ब्याह होते ही राँड हो गई हो। लब्बो लुआब यह है कि बाहर भी मेरा दम घुटता था और भीतर की तो पूछो ही मत। अमेरिका की तो क्या कहूँ, यहाँ भी मुझे, सो कॉल्ड, इंडियन्स भी उससे दो कदम आगे दिखाई पड़े। मेरे गले यह बात कभी नहीं उतर सकती कि एक फ्लोर पर चार फ्लैट और एक फ्लैट में रहने वाला, पूरे एक साल में यह भी न जान सके कि बराबर वाले फ्लैट में कौन रह रहा है? एक अजीब विरोधाभास—घर ऐसा ढका-ढका कि बाहर से उसकी कोई एक झलक तक भी न पा

सके–पर्दों, बन्द खिड़कियों से ढका हुआ और बाहर निकलती लड़कियाँ, नारियाँ–सब खिड़की, दरवाज़े, पर्दे खुले हुए–जी भर देखने का, निःशुल्क खुला निमन्त्रण!

एक रात तेरी माँ की तबियत अचानक खराब हो गई। मैं घबरा गया कि क्या करूँ? आधी रात किसी के फ्लैट की कॉलबैल बजाने की हिम्मत नहीं। साहस बटोर मैंने बगल वाले फ्लैट की घंटी का बटन दबाया। भीतर से भारी-सी आवाज़ आई, "हू इज़ देयर, कौन है?" "जी, मैं बराबर के फ्लैट वाला।" उन्होंने दरवाजे की मैजिक आई से मुझे देखा, फिर जंजीर बँधे दरवाजे थोड़े, बात करने लायक खुले–"कौन आफत आई, इस वक्त रात के दो बजे?" "मेरी पत्नी की तबियत अचानक खराब हो गई...आगे मैं कुछ कहता...इससे पहले ही वे बोल पड़े, "किसी अस्पताल ले जाइए, मैं क्या कर सकता हूँ?" और खटाक्, दरवाज़ा बन्द। मैंने हाथ जोड़कर कहा, "जी, शुक्रिया, बहुत-बहुत धन्यवाद आपकी इस सहायता का, थैंक्स।"

मुझे बरबस याद आ गई गाँव पें अपनी बीमारी की, जब एक रात मेरी तबियत खराब हो गई थी। मुझे तड़पता देख, तेरी माँ रोने लगी थी–पूस की रात, दाँतों की किटकिटी बजा देने वाली ठंड–रजाई, खेस, चादर आदि लपेटे कई लोग इकट्ठे हो गए थे। एक लड़का तेरी माँ रो बोला, 'चाच्ची, फिकर क्यूँ करै, भइया अमरिक्का बैठ्या है तो के हुया, मैं तेरा बेट्टा नहीं? हम सब तेरे बेट्टे हैं।" लड़कों की तरफ उँगली उठाते वह बोला। घर के बाहर इकट्ठी हुई तीन-चार बैलगाड़ियों में से किसमें चलूँ, यह छाँटना मेरे लिए धर्मसंकट बन गया था। और यहाँ राजधानी में–मुझे महसूस हुआ–संवेदना तलाशना भूसे के ढेर में सुई तलाशने जैसा बेवकूफ़ी भरा काम है। इतनी फैशनकोटेड, रंग-बिरंगी, मनमोहक दिखने वाली सभ्यता मुझे उस पुस्तक के समान लगी जिसका टाइटिल कवर इतना आकर्षक हो कि पाठक उसके खरीदने का लोभ संवरण न कर सके और पृष्ठों पर नज़र डालते ही वह अपना माथा पीटकर रह जाए। बेटा, ऐसी भव्य सभ्यता मुझे हजम नहीं हुई और मैं भागा जेवड़ा तुड़ाकर। साल भर बाद मैं तेरी माँ के साथ गाँव लौटा तो लड़के-लड़कियाँ, बड़े-बूढ़े हमें बीच में ही घेरकर खड़े हो गए–बरबस ही मेरे भीतर फिल्मी-सा सीन उभर गया–उद्धव, कृष्ण से मिलकर आए हैं, गोपियाँ उन्हें घेरकर खड़ी हो जाती हैं और उचक-उचककर

पूछती हैं—हमको लिख्यो है कहा, हमको लिख्यो है कहा?''

मैं अमेरिका चला आता हूँ। वहाँ तेरे पास कोई ऐसा तालाब है जिसके किनारे एक विशाल वटवृक्ष हो जैसे तेरे नहीं, मेरे गाँव में है, जिसमें गर्मी से व्याकुल कई भैंसें डुबकी लगा-लगाकर आनन्दमग्न अपनी तपिश मिटा रही हों। काफ़ी देर हो जाने के बाद भी वे बाहर नहीं आतीं, भैंस मालिक उन्हें लालच देता है—हाथ में ज्वार बाजरे की हरी-हरी टहनियाँ पकड़कर उन्हें हिलाता है, जोर से आवाज़ लगाता है, आले, आले, स्वादेन्द्रिय के वशीभूत भैंसें बाहर निकल आती हैं—क्या हम लोग भी बच्चों के साथ उन्हें टॉफी दिखाकर वैसा ही व्यवहार नहीं करते? यदि कोई ऐसा तालाब है तो क्या गर्मी की दोपहरी में विशाल बरगद के पेड़ के नीचे खुरेड़ी खाट पर, कुर्ता उतारकर नंगी पीठ लेटकर दोपहरी बिता सकता हूँ?

तुझे पता है मेरा रूटीन क्या है—दोपहर का भोजन करने के बाद मैं कुछ ग्रास लेकर दरवाजे के बाहर निकलता हूँ—एक गाय, जिसे मैं कपिला कहकर पुकारता हूँ और दो-तीन कुत्ते, इस इन्तजार में चुपचाप खड़े होते हैं कि पंडित अब हमें प्रसाद देगा। पहला ग्रास मैं कपिला को देता हूँ, ग्रास लेकर वह गर्दन उठाकर मेरी ओर देखती है, मैं उसकी गर्दन के नीचे खुजाता हूँ, वह चाहती है कि मैं बस खुजाता रहूँ, हारकर मैं कहता हूँ, अब बस भी कर मेरी माँ, मुझे कुछ और काम नहीं है क्या? कुत्ते पूँछ हिलाते हुए, अपने सारे शरीर में लहरिया पैदा करते हुए, मेरी टाँगों से लिपट जाते हैं, जीभ लपलपाते हुए इंसानों की तरह अपनी बेसब्री का परिचय देते हैं, उन्हें भी एक-एक ग्रास देता हूँ, सामने छत पर एक कौवा काँव-काँव करता है, मैं कहता हूँ, देता हूँ भाई, तुझे कैसे भूल सकता हूँ काक महाशय, 'यह लो' और एक टुकड़ा उसे भी फेंकता हूँ। सब चले जाते हैं। उन्हें टाइम का पता होता है, किसी दिन जल्दी भोजन कर लेता हूँ, वे बाहर नहीं दिखते, बस एक आवाज़ लगाता हूँ, कपिला, ओ कपिला, वह भागी चली आती है, तब उसकी आँखों की चमक देखते ही बनती है। कुत्तों को, जहाँ एक बार आवाज़ दी नहीं—आतुले, तुले, वे ऐसे भागते चले आते हैं जैसे हर कोई इस रेस में अव्वल आना चाहता हो। अपनी छत पर कबूतरों की गुटर गूँ सुनता हूँ, उन्हें नाचते देखता हूँ, मैं उन्हें दाना फेंकता हूँ, उन्हें उत्साहपूर्वक दाना चुगते देख मैं आनन्द

विभोर हो जाता हूँ। मेरा विश्वास है, अखंड विश्वास, ये सब अपनी-अपनी जुबान में कहते हैं, "जिओ पंडित, तेरा बेटा जीए, सुख से जीए।" मैं महसूस करता हूँ कि परमपिता अपने मैसेंजरों द्वारा मुझे आशीर्वाद की पाती भेजता है। मुझे लगता है, आज तू जो कुछ है प्रभु का प्रसाद है, तेरा प्रासाद, उसी का प्रसाद है। चवन्नी का बीज डालकर सैंकड़ों रुपए की फसल प्राप्त करना कितने लाभ का सौदा है। मैं मानता हूँ कि परमात्मा ने, मानव को बस मूल प्रकृति दे दी और कहा, "यह ले बेटा आधार भूमि, मैं देता हूँ, आगे तू जाने तेरा काम। इंसान ठहरा स्वार्थी, अपनी स्वार्थपूर्ति हेतु जुट गया वह प्लानिंग में, जिसे उसने विकास का खिताब दिया, फलतः मूल प्रकृति के अतिरिक्त शेष सृष्टि मानव की स्वार्थपूर्ति का ही तो प्रतिफल है। मेरे मानस में परमपिता की ईमानदारी का एक खाका है—इन पशु-पक्षियों के रूप में, मैं उन क्रेडिट रसीदों के दर्शन करता हूँ, जिनकी एन्ट्री 'चीफ अकांटेंट' ने मेरे चालू खाते में की है। वह हर व्यक्ति का ओवरड्राफ्टिंग सहित क्रेडिट-डेबिट मेंटेन करता है। व्यक्ति के गैर जमानती वारंट कटते ही उसका खाता क्लोज़ कर स्टेटमैंट अपने प्रमुख न्यायाधीश चित्रगुप्त को भेज देता है, जो तदनुसार ओवरड्राफ्टिंग की रकम, मयदंड ब्याज, व्यक्ति से वसूलता है। व्यक्ति को मार जूतों भुगतान करना ही होता है। वहाँ कोई अपील नहीं, कोई कर्ज़माफ़ी नहीं। मैं इस बात से भली-भाँति भिज्ञ हूँ कि मेरा तो सदा ओवरड्राफ्टिंग ही रहा है। इसीलिए अपने कर्ज की रकम को थोड़ा बहुत कम करते रहने के तहत, उसमें कुछ-न-कुछ जमा करता रहता हूँ।

तेरी माँ मेरे लिए भोजन तैयार करती है। वह जानती है मेरे टेस्ट को। पानी के हाथ की, गेही की सिकी हुई मिस्सी, मक्का की रोटी, ढुँगार लगा मट्ठा, सर्दियों-सर्दियों उपलों से भरे हारे में कई घंटों में तैयार होने वाला सरसों, बथुआ, चने का साग, उस पर पड़ा हुआ जीरे हींग का शुद्ध घी का छोंक, गुड़ की एक डली—ये खास हैं मेरे भोजन के अंग। गाय-गोबर से लिपे चूल्हे पर बना भोजन मुझे रस प्रदान करता है। इस बात से भी मैं अनभिज्ञ नहीं रहता कि चूल्हा फूँकते-फूँकते उसकी आँखें लाल रहती हैं, उसकी आँख-नाक से पानी बहता रहता है, धोती के पल्लू से वह उन्हें पोंछती रहती है। इसका कोई विकल्प उसके सामने रखता भी हूँ तो कहती है, थोड़ी देर का ही तो कष्ट है, आपके

मनोनुकूल तो यही है, किसी भी तरह मानती ही नहीं—कोई गिला नहीं, कोई शिकवा नहीं, कोई शिकायत नहीं, कोई क्लेश नहीं, कोई ताने नहीं, बस मुख पर मनस्तोष की दीप्ति।

तुझे याद होगा अपना आमवाला खेत—ढोल-ढपाड़े पीटते बादल आए, दिल खोल वर्षा रानी छमाछम बरसी, इन्द्रदेव ने सूखे-सूखे खेतों पर अपनी इत्रदानी से रिमझिम-रिमझिम फुहारें बरसाईं, धरती माँ तृप्त हुई और उसी रिमझिम में सूर्यदेव ने उसे इन्द्रधनुष का हार पहना दिया—तू अपने खेत की ओर भागा, वर्षा-जल से भरा हुआ खेत, पेड़ों से टपके हुए आम, उन्हें पानी से चुन-चुनकर तेरा उन्हें निकालना, घर आकर उन्हें पानी भरी बाल्टी में डाल देना, जी भर आम चूसना—ऊपर से तेरी माँ का दिया गया दूध से भरा गिलास—कैसा आनन्द, बस आनन्द ही आनन्द, सन्तोष ही सन्तोष! तुझे कभी याद तो आता होगा सब कुछ! तुम लोग एक-दो आम काटकर चम्मच से खाते हो, हम आम चूसते हैं। आम खाने और आम चूसने में मुझे ज़मीन-आसमान का फर्क दिखाई पड़ता है।

खास तौर से, गर्मी के मौसम में, तालाब के किनारे वट-वृक्ष की छाया तले चारपाई पर बैठे हुए, गोधूलि के समय, जंगल से घर लौटते हुए पशुओं की चाल में, जब मैं बिजली जैसी तीव्रता देखता हूँ तो मुझे देर से अपने घर पहुँचने की ललक के दर्शन होते हैं—गउओं के विस्फारित नेत्र, अपने बच्चों से मिलने की छटपटाहट—म्हाँ कहकर रंभाना, मानो उसने अपने बच्चे का सेलफोन रिसीव किया है—"माँ, जल्दी आओ, भूख लगी है", और माता बच्चे तक अपना सन्देश पहुँचाने हेतु जोर से चिंघाड़कर कहती है—"म्हाँ, आई बेटा", और उसकी चाल और तेज हो जाती है, ममता उसके नेत्रों से फूट-फूट पड़ती है—"केशव!...देखत तब रचना विचित्र अति समुझि मनहिं मन रहिए।" इस गूँगे के गुड़ की मिठास वर्णनातीत है—कौन महाकवि, महालेखक उसे लिपिबद्ध कर सका है, रविवर्मा, पिकासो, हुसैन जैसा चित्रकार भी क्या उसका चित्रांकन कर सका है? निराकार परमात्मा और निराकार वायु की भाँति इसे बस महसूस किया जा सकता है। खिली-खिली, फूली-फूली सरसों को देखकर लगता है जैसे हनीमून के लिए सजाया हुआ भूदेवी के कक्ष का डबलबैड, उस पर हरे रंग का मोटा-मोटा मैट्रेस, जिस पर बिछी है पीले फूलों वाली रेशमी चादर। ऐसा वातावरण तू मुझे दे सकता है तो अमेरिका चला आता हूँ।

सच्ची-सच्ची बताना, जब से तू यहाँ से गया है, तूने एक बार भी कोयल की कूक सुनी है? बरसात की रात में, वर्षा थम जाने के बाद मेंढकों का सहगान तूने सुना था! जब तू छोटा-सा था, बड़ा जिज्ञासु था, तेरी जिज्ञासाओं का उत्तर देते-देते मैं झुँझला भी पड़ता था। तुझे याद होगा, तू मेरे साथ सोया करता था, रात में वर्षा थम जाने के बाद जब मेंढक एक स्वर में बोलते थे, तो तू पूछा करता था, "पिताजी, ये मेंढक क्या कह रहे हैं?" मैं उत्तर देता, 'सो जा, कुछ नहीं कहते।" तू फिर कहता, "बताइए ना, क्या कह रहे हैं?" हारकर मैं तुझे समझाता था—"बेटा, मेंढकों के यहाँ शादी-ब्याह का मौसम है, इनके यहाँ घोड़ी, बन्ने गाये जा रहे हैं, खुशियाँ मनाई जा रही हैं। सब एक साथ कहते हैं—चलो बरात, चलो बरात, चलो बरात—फिर कुछ मेंढक कहते हैं—कौन? ...कौन?...कौन? उनमें से चौधरी बना एक मेंढक कहता है—हम तौं... हम तौं...हम तौं...अर्थात् सब मेंढक मिलकर कहते हैं, चलो बरात में चलिए", कुछ पूछते हैं...अरे भई कौन-कौन चलेगा? सरपंच मजाक में उत्तर देता है, अरे और कौन चलेगा, मैं और तुम!" और भोर होने तक यह समवेत गान चलता रहता था। मैं तुझे समझाता रहता था, मुझे पता ही नहीं चलता था कि तू कब का सो गया था।

अक्सर ग्रीष्मागमन से पूर्व मेरे नेत्रों के समक्ष एक दृश्य उभर आता है—सरसों, गेहूँ, चने के खेतों की पकी-पकाई तैयार फ़सल, रात में आए प्रचंड झंझावात, रोंगटे खड़े कर देने वाली बिजली की कड़क के साथ ओलावृष्टि और किसानों के धड़कते दिलों के बीच एक महासंग्राम मचता है। प्रकृति कोप के समक्ष वे सभी अपनी पराजय स्वीकार कर भूलुंठित हो जाते हैं—किन्तु अगले दिन ढलते-ढलते सूर्यदेव के सहारे से वे सीना तानकर फिर उठ खड़े होते हैं—मुझे जिजीविषा का सटीक उदाहरण-सा महसूस होता है। एक ओर इन खेतों को देखता हूँ, दूसरी ओर विशालकाय वृक्षों को जड़ समेत उखड़ा हुआ देखता हूँ तो मुझे यह गांधीजी के अहिंसा-आन्दोलन के मर्म की, विस्तार सहित व्याख्या लगती है।

इतना कुछ लिख गया हूँ, पता नहीं इस सबको पढ़ने के लिए तेरे पास समय है भी या नहीं। अन्त में बस इतना ही कह सकता हूँ कि मुझे तेरे प्रति कोई नाराज़गी नहीं, तुझे अपना स्वभाव बताया बस! हाँ एक कसक ज़रूर है मन में, जो हर बार भोजन करते समय, मेरे कलेजे को

सालती रहती है। तब मुझे लगता है कि तू भूखा मर रहा है, तुझे भोजन नसीब नहीं और मैं आराम से भोजन का स्वाद चख रहा हूँ, एक हूक-सी उठती है मेरे अन्तर में। पेट की आग बुझाना और बात है पवित्र भोजन से तृप्ति महसूस करना और बात। दोनों के अन्तर को तू कहाँ से समझे, रसोई और भोजन की शुचिता की महत्ता के भाव को तू किस प्रकार पोषित करे? तेरी लाचारी समझता हूँ बेटे? किंकर्त्तव्यविमूढ़ हूँ।

ठीक है, मेरा कोई पूर्वाग्रह नहीं, मैं तो बेटा ममता के हाथों पराजित हूँ, इस मोह पर विजय प्राप्त कर सका होता तो परमहंस न बन जाता, परमात्मा की दी हुई चादर को जतन से ओढ़कर ज्यूँ-की-त्यूँ न धर देता! खैर,

तू टिकिट बीमे आदि का प्रबन्ध कर, इधर मैं वीज़ा का प्रबन्ध करता हूँ, मैं तेरी माँ को लेकर यू.एस. चला आता हूँ। यशस्वी भव, सौ. बहू को, चि. पोते को शुभाशीष, तेरा पिता–

●

रामप्यारी और उसकी बहू
फिल्म की संक्षिप्त पटकथा
(नगरों के बाद अब गाँवों में भी धूम मचाने को तैयार)

50 वर्षीया रामप्यारी आज बहुत प्रसन्न थी, उसके बेटे की शादी जो हुई है आज। और बहू भी उसे कैसी मिली, यह रामप्यारी, दूसरों से सुन रही थी—"बहू तो चाँद का टुकड़ा है", "भई वाह, क्या बहू छाँट कर लाई है रामप्यारी", "हमारे खानदान में तो ऐसी बहू आई न थी आज तक", "कितनी सोहणी है, नाक सुआ सी, मुँह बटुआ सा", "गोरी चिट्टी छरहरी, पढ़ी-लिखी लाखों में एक" आदि आदि सूक्तियाँ उसके कानों में अमृत घोल रही थीं।

पता नहीं रामप्यारी में इतनी जान कहाँ से आ गई थी, अस्वस्थ थी, इधर-उधर दौड़ी-दौड़ी फिर रही थी, कई दिनों से उसे आराम भी नहीं मिला था, फिर भी रामप्यारी फिरकी सी घूम रही थी। रामप्यारी पढ़ी-लिखी थी। उसने देखा था कि नई बहू को ससुराल का नाम उपहार स्वरूप दिया जाता है। यह कोई नया फैशन नहीं है, उसकी गाँव की चाची का नाम ससुराल पहुँचते ही बदल दिया गया था, परसन्नी से महको कर दिया गया था। परसन्नी हर वक्त घर में महकती फिरती थी—स्वयं प्रसन्न रहने वाली, औरों को भी प्रसन्न रखने वाली, यथा नाम तथा गुण। उसकी सास ने बड़ी सोच-समझ कर उसका नाम महको रखा था। हर वक्त उससे सारा घर आँगन, आस-पड़ोस महका-महका रहता था।

रामप्यारी ने भी परंपरा का पालन किया। उसने सोच रखा था कि वह भी अपनी बहू का बढ़िया सा नाम रखेगी क्योंकि नाम का असर व्यक्ति पर पड़ता ही है पर यह जरूरी भी नहीं—उसने करोड़ीमल को भीख माँगते देखा था, लखपत को पलिया ढोते देखा था, जालिम सिंह को बड़ा

परोपकारी देखा था, बुद्धिप्रकाश को सदा कक्षा में फेल होते देखा था, चिंतामणि को सदा रोते-झींकते देखा था, हरेक को मनोहर से, नाक-भौं सिकोड़ते देखा था, बलजोर सिंह को सदा पत्नी के सामने मुर्ग़ा बने देखा था, जिले सिंह, सूबेदार सिंह, देशराज सिंह को झुग्गी-झोंपड़ी में रहते देखा था, विश्व प्रकाश को घर का टिमटिमाता दीपक भी न बनते देखा था। हलधर को हल चलाते देखा था, चलो यह तो कुछ-कुछ ठीक था, आदि आदि अनेक उदाहरण थे रामप्यारी के सामने कि आवश्यक नहीं कि व्यक्ति यथा नाम तथा गुण सिद्ध हो, फिर भी रामप्यारी अपनी नववधू के नाम परिवर्तन का लोभ संवरण न कर सकी। बहू का मैके का नाम शांति था। उसने अधिक हेरफेर उचित नहीं समझा, उसने बहू का नाम शांति से कांति कर दिया—'श' के ऊपर 'क' चस्पा कर दिया। इस प्रकार दोनों घरों की लाज रख ली।

नववधू को पता चला कि ससुराल की देहली पर पैर रखने से पूर्व ही, मेरी सासू माँ ने, मेरी माँ के दिए नाम को ही मिटा दिया, तो इस पर उसकी विपरीत प्रतिक्रिया हुई। वह सोचने लगी कि सासू माँ के जीव ने, तो अभी से अपना असली रूप दिखाना शुरू कर दिया, यह तो मेरे पर कैंच करना चाहती है, उसे न जाने क्या करंट सा लगा कि उसने मन ही मन संकल्प सा कर डाला, "मैं भी कसम खाती हूँ अपनी माँ की कि मैंने भी अगर कांति को क्रांति में न बदल दिया तो मेरा भी नाम शांति नहीं।" शांति ग्रामीण पृष्ठभूमि की, पढ़ी-लिखी, बी.ए. पास थी। उसकी माँ ने सिखा दिया था कि सास के पैर छूना नहीं, दबाना है।

पैर दबाने की प्रथा के कई उद्देश्य होते हैं। मेरी माँ थी तो अनपढ़, लेकिन उसके भीतर ज्ञान का भंडार था। एक दिन मैंने पूछा था कि माँ, ग्रामीण महिलाओं में पैर दबाने की प्रथा का कोई मतलब भी है? मेरी समझ में नहीं आता कि पैर तो छुए जाते हैं, चरण स्पर्श होता है, ये पैर दबाने के पीछे क्या रहस्य है?"

माँ ने बतलाया था, "बेटा, हमारे बड़े-बूढ़ों ने कोई भी रीति-रिवाज आँख बंद कर नहीं बनाया, बड़ी सोच-समझ कर बनाए गए हैं ये रीति रिवाज। पैर दबाने का मतलब पैरों को दाब देने से नहीं है, यह तो औरतों का अपनी ससुराल वालियों के पैर छूने का एक तरीका है, वे दोनों हाथों से उनकी पिंडलियों को अच्छी तरह, ऊपर नीचे मुट्ठी से भींचती हैं।

इसका सबसे बड़ा फायदा तो यह होता है कि बड़ी-बूढ़ियों की थकान मिट जाती है, दूसरे इससे औरतों में सेवा-भाव बना रहता है, तीसरे बहू को सिर झुकाए रखने की आदत पड़ी रहती है। बहू को झुकी-झुकी रहना चाहिए।'' माँ की यह व्याख्या मेरी समझ में आ गई। मैं देखता रहता था कि दसियों स्त्रियाँ सुबह से शाम तक किसी न किसी कामवश, माँ से मिलती रहती थीं, ''पैरों पड़ूँ दाद्दी।'' कहकर माँ के पैर दबाती रहती और ''तेरा सुहाग बना रहे, दूधो नहाओ, पूतो फलो'' का आशीर्वाद ग्रहण करती रहती। शांति की माँ ने उसे समझा दिया था कि बेटी, सास के पैर अच्छी तरह दबाना।

रामप्यारी की बहू की डोली (कार) उसके दरवाजे पर पहुँच गई। उसमें एक नवीन उत्साह भर गया, ''चलो चलो, बहू को उतारो''—कहती हुई रामप्यारी बाहर गेट पर पहुँची। कार से बहू तब तक नहीं उतरती, जब तक कोई आकर, कार का दरवाजा न खोले और बहू को हाथ पकड़कर न उतारे। रिश्ते में बहू का देवर लगने वाला एक लड़का, भागकर कार के पास पहुँचा ओर हैंडल पकड़ कर खड़ा हो गया। ''दरवाजा क्यों नहीं खोलता रे महेश?'' किसी ने आवाज लगाई, शायद बहू की कोई ननद थी। महेश बोला, ''ऐसे कैसे खोल दूँ, दरवाजा मुफ्त में? पहले दरवाजा खुलाई दो। इस प्रकार के नेगों का चलन हमारे यहाँ काफी संख्या में है, इसका अनुभव मुझे अपना मकान बनवाते समय हुआ, पहले भूमि पूजन, फिर नींव खुदाई और भूमि में पहला फावड़ा लगाने की लड्डू बँटाई, फिर राज महाराज की कन्नी में कलाबा बँधाई, फिर पहली ईंट रखाई, फिर चौखट रखाई, लिंटल डलवाई आदि आदि कितने नेग और प्रसाद के अवसर आते रहते हैं। 500/- रुपए की माँग करने वाले महेश ने जैसे तैसे 101/- में समझौता किया और दरवाजा खोल दिया। किसी बड़ी-बूढ़ी ने बहू को नीचे उतारा और उसे घर की चौखट पर ले आया गया। भगवान् जी की तो छोटी-मोटी आरती की जाती है, पर नववधू की आरता उतारा गया। एक थाली में धूप दीप, नैवेद्य रख, उसका आरता किया गया, मानो मन ही मन प्रार्थना की जा रही हो, हे देवी, इस घर में आपका स्वागत है, पधारो अपने इस नए घर में, संभालो अपना राजपाट और खुशी-खुशी राज करना शुरू करो।

बहू के द्वार के भीतर पैर रखने से पहले ही, तीनों ननदें दरवाजे के

बीच अड़ गईं, प्रवेश-द्वार बंद कर दिया। "हटो री लड़कियों, बहू को अन्दर आने दो।" किसी बूढ़ी ने कहा। एक ननद ने खिलखिलाते हुए कहा, "ऐसे कैसे आने दें दादी, हमारी द्वार रुकाई? हम नहीं हटेंगी, पहले हमारा नेग।" दूसरी ने दूल्हे की ओर अपनी तर्जनी उठाकर उसे अपनी ओर घुमाते हुए कहा, "निकालो भैया लाल-लाल नोट, हमारी द्वार-रुकाई। अब टनाटन से काम नहीं चलेगा, टनाटन का जमाना तो कभी का खत्म हुआ, हजार के नोट में भी हालाँकि कुछ काम नहीं चलता पर चलो आँसू पुछाई तो हो ही जाएगी।"

भैया ने कहा, "मैं क्यों दूँ? रुपए तो यह देगी, तुम्हारी भाभी, पहली बार भीतर तो इसे ही जाना है, मेरा तो यह अपना घर है, अपनों के लिए थोड़े ही होती है एंट्री फीस!" सुनकर नववधू मन ही मन बोली, "थोड़ा ठहर जाओ पति परमेश्वर, मैं बताऊँगी कि घर किसका है? इतना भी नहीं जानते कि घर, घरवाली का होता है?" ननदें एक-एक हजार के नोट के नेग से पीछे ही नहीं हट रही थी। इस पर भैया ने सौ रुपए का एक नोट जेब से निकाला और उसे बहनों की तरफ बढ़ाते हुए बोला, "लो भिखमंगियों, बाँट लो आपस में, छुट्टा नहीं है।" बहन बनावटी क्रोध से बोली, "हम भिखमंगी हैं, अच्छा तो फिर घुस के दिखा दो भीतर, हम तो सोच रही थी कि गरीब भैया को कुछ डिस्काउंट दे दें, पर ये तो ऐंठ दिखा रहे हैं।" इसी प्रकार हास-परिहास चलता रहा, मोल-भाव चलता रहा और आखिर में पाँच-पाँच सौ रुपए में सौदा पट गया। भैया ने पाँच-पाँच सौ के तीन नोट निकाले और कहा, "ये लो ब्लैकमेलरों, दफा हो।" बहू भीतर आ गई।

एक महिला ने सास से बहू का परिचय कराया, "बहूरानी, ये हैं तुम्हारी सासू माँ, इनके पैर छुओ।" अपनी माँ के उपदेशानुसार सासू माँ के पैरों की पिंडलियाँ उस पारंपरिक तरीके का सहारा लेकर; इतने जोर से भींची कि रामप्यारी की चीख़ निकलते-निकलते रह गई। रामप्यारी के मुँह से न चाहते हुए भी एक हल्की सी 'सी' निकली। बेटे ने 'आह' सुन ली, "क्या हुआ माँ?" "कुछ नहीं बेटा, पिंडलियों में भागमभाग के कारण गाँठें पड़ गईं, जरा से छूने मात्र से दर्द होता है।" रामप्यारी ने सोचा, "बच्ची है, इसे क्या पता पैर कैसे दबाए जाते हैं, सब सीख जाएगी।" और वह बहू के सत्कार में लग गई। रामप्यारी ने बहू को नाश्ता कराया,

अंदर कमरे में ले गई और पलंग पर बिठा दिया, "कांति बहू, थोड़ा आराम कर ले, थक गई होगी।" कहकर दरवाजा बंद कर बाहर आ गई। श्याम सुंदर, बहनों, भाभियों, चाचियों, ताइयों, दादियों, भतीजियों आदि से घिरा खड़ा था। उसके कुछ मित्र बाहर इस इंतजार में बैठे थे कि कब यह बाहर निकले और कब हम विदा हों। श्यामसुंदर बाहर आया, मित्रों ने कुछ चुटकियाँ ली, सबको नाश्ता-पानी कराया गया और वे हाथ मिलाकर चलते बने। इस सब में दो-एक घंटे बीत गए।

अब जरूरी रसम कंगना खिलाई होनी थी। "अरी कंगना खिलाई करो ना लड़कियों, दोपहर होने को आई, कब ये लोग नहाए धोएँगे, कब खाना-वाना खाएँगे, जल्दी करो।" कहते हुए रामप्यारी ने अपनी एक लड़की को आगे को धकेला। महिलाओं के आपसी बातचीत के वॉल्यूम से ध्वनि प्रदूषण हो रहा था, चिल्ल पौं मची हुई थी, सारे आँगन में स्त्रियों, बालक-बालिकाओं की ठूसम-ठूँस से किसी को किसी की बात समझ में नहीं आ रही थी, इसलिए हर किसी को अपनी बात दूसरे तक पहुँचाने के लिए चिल्लाकर बोलना पड़ रहा था—"आवरण स्वयं बनते जाते, है भीड़ लग रही दर्शन की" जैसा दृश्य उपस्थित हो रहा था।

एक पराँत में पानी भर दिया गया, उसमें थोड़ा सा लाल रंग डाल दिया गया, पानी में एक अँगूठी डाल दी गई जो रंगीन पानी के कारण दिखाई नहीं पड़ रही थी। पराँत के एक ओर पतिरूप रूपांतरित श्यामसुंदर बैठ गया दूसरी ओर नवनाम निर्मिता कांति वधू बिठा दी गई। एक लड़की बोली, "भाभी, पराँत के अंदर एक अँगूठी पड़ी हुई है, भैया और आप, पानी में हाथ डालकर, उसे ढूँढोगे।"

शांति उर्फ कांति के मन में विद्रोह का एक पलीता लग चुका था (फ्लैश बैक) (बहू अतीत में पहुँच गई) "बापू तू न तो दीन है, ना ही मैं तेरे खूँटे की वह गैया हूँ जिसका जेवड़ा तू किसी ऐरे-गैरे नत्थू खैरे के हाथ में थमा देगा और मैं "म्हाँ, म्हाँ" रंभाती "तावली (जल्दी) बुलाइए री माँ, जोड़ती सूँ हाथ" गीत सुनते-सुनते गिड़गिड़ाते चली जाऊँगी, ना ही मैं तेरे झाँवे की वह चिड़िया हूँ जिसे तू फुर्र से उड़ाकर किसी और के झाँवे पर बैठने को लाचार कर देगा। मैं तो बापू तेरे कलेजे का टुकड़ा हूँ, इतनी भारी थोड़े ही हूँ कि तू मुझे अपने दिल का बोझ समझकर जन्म लेते ही मुझे मेरे घर से बहिष्कृत करने की प्लानिंग करने लगे और मौका मिलते

ही मुझसे पिंड छुड़ाकर, गंगा नहा, पैर पसार कर सो जाए। बापू नई सदी में लौट आ, मुझे खुला आकाश दे, मेरे पर कैंच मत कर बापू, मुझे स्वयं उड़ान भरने दे।'' बापू कहता है, ''बिटिया, तू सच कहती है, तेरी सौगंध खाता हूँ लाड़ली, तू मेरा अंश है, तुझे अलग करते मेरा जिया किस तरह पीपल के पत्ते की भाँति काँप-काँप उठता है, इसका अंदाजा तू नहीं लगा सकती, मुझे ऐसा लग रहा है बेटी जैसे मैं अपनी ही छुरी से खुद अपने हाथ से, अपने जिगर के टुकड़े को काटकर फेंक रहा हूँ। तू मेरा दुख क्यों नहीं समझती बेटी, परमात्मा ने मुझे इतना सहिष्णु नहीं बनाया कि मैं लोकलाज के चाबुकों की पीड़ा झेल सकूँ, लोक निर्मित इस चारदीवारी को लाँघने का साहस कर सकूँ, बेटी तू सच है, मैं भी सच्चा हूँ, कहाँ से सँजोए इतना साहस यह कमजोर बाप?''

बापू फफक उठता है, उसके नेत्रों से अश्रुधारा फूट पड़ती है। बेटी सुबकते हुए कहती है, ''तू अपनी कायरता की रक्षा कर बापू, तू सारा दोष मेरे माथे ही क्यों नहीं मँढ देता? क्यूँ नहीं कह देता सबसे कि बेटी मेरा कहना नहीं मानती, शादी करने को तैयार नहीं? कहती है, जब मैं अपने पैरों पर खड़ी हो जाऊँगी, स्वयं अपने व्यक्तित्व का निर्माण कर लूँगी, किसी बैसाखी के सहारे न चल, खुद अपने पैरों से चलने में समर्थ हो जाऊँगी तब करूँगी शादी। पर तूने मेरी एक नहीं मानी।'' अचानक ही एक ननद की आवाज से कांति चौंक पड़ी, वह वर्तमान में लौट आई, ''जिस बात से मैं डर रही थी, वह नंगी होकर मेरे सामने प्रकट होने लगी है, ससुरालवालों की करतूतें तो मेरे घर में पैर रखने से पहले ही अपना रूप दिखाने लगीं, मेरी माँ के दिए नाम को ही ये सहन नहीं कर सके, इतनी नफरत? 'लव बिगेट्स लव' तो 'हेटरेड बिगेट्स हेटरेड', मेरे भीतर विद्रोह की चिंगारी इन्होंने ही भड़काई है, अब मैंने भी इस बुढ़िया की कांति को पलटी मार क्रांति न बना दिया तो मेरा नाम शांति नहीं। बापू ने मेरी एक न सुनी, अपनी मनमानी कर बैठा और मुझसे पिंड छुड़ा लिया और मैं भी कितनी कमजोर निकली, क्यूँ नहीं मैंने अपने बापू के सामने विद्रोह का बिगुल बजा दिया? पर अब क्या हो सकता है, जब चिड़िया चुग गई खेत?'' वह न जाने क्या-क्या उल्टा-सीधा सोचे जा रही थी।

''भाभी! ओ भाभी, सो गई क्या बैठी-बैठी? शुरू करो ना कँगना खिलाई।'' एक ननद की आवाज सुनकर कांति चौंक पड़ी।

दूसरी बोली, "भाभी हार मत जाना भैया से, भैया से पहले ही अँगूठी ढूँढ लेना, अब हार गई तो भैया से सदा हारी रहोगी।" कांति ने मन ही मन सोचा, "हारे मेरी जूती।" कांति को अपने देश के चलन का पूरा ज्ञान था, वह इस बात से अच्छी तरह परिचित थी कि "विवाहिता के सौ खून माफ" और विवाहित की किसी भी सच्ची बात को झूठ मानने का प्रावधान है हमारे लोकतंत्र में। वह रोज देखती थी कि किसी भी नारी के आँसुओं से तुरंत ही द्रवित रहने वाले, झुंड के झुंड, समूह के समूह, नारी-सुरक्षा की झंडा बरदारनियाँ, किसी भी ऐसे-वैसे, झूठे-सच्चे, नारी पीड़क समाचार को गपकने के लिए मुँह बाए खड़े रहते हैं और सच्चे दुखियों की कोई सुनने वाला नहीं।

कांति ने पानी में हाथ डुबोया, श्यामसुंदर ने भी वैसा ही किया, अँगूठी ढूँढने के बहाने कांति ने अपना पैना लंबा नाखून, पति देव की अँगूली में जोर से गड़ा दिया। पति के हाथ को करंट सा लगा, वह ऑटोमैटिकली पानी से बाहर निकल आया, अँगूठी बहू के हाथ में आ गई। "भाभी जीत गई, भाभी जीत गई।" ताली बजाती लड़कियाँ उछल पड़ी, हास-परिहास चलता रहा। रामप्यारी यह सब देख रही थी, मुस्करा रही थी...पर "भाभी जीत गई", की उल्लासमयी वाणी उसे कर्ण कटु सी लगी, वह सोचने लगी (फ्लैश बैक) पति से उसका काफी झगड़ा हुआ। पति ने विनम्रता के साथ कहा, "सुनो, कुछ पैसे दो, जेब खाली है बाजार जा रहा हूँ।" "अरे अभी तो परसों 500/- का नोट दिया था, क्या चाटते हो रुपए?" "तुम्हें याद नहीं है रामप्यारी, कि कल तुमने 100/- का नोट दिया था, 60/- की सब्जी, दूध ले आया था, दस रुपए के तुम्हारे लिए समोसे ले आया था।"

रामप्यारी को अपनी भूल का अहसास हुआ, बोली, "ठीक है, पर अभी भी तुम्हारे पास 30/- तो बचे हैं?" "हाँ वे तो हैं।" "फिर और किसलिए चाहिए?" "मोपेड़ में पेट्रोल डलवाना है।" "हाय राम पेट्रोल पीते हो, क्या करते हो?" "तुम्हें ध्यान नहीं रामप्यारी, पेट्रोल डलवाए तो 15 दिन हो गए, इतना इधर-उधर जाना पड़ता है।" "हाँ पैदल तो तुमसे चला नहीं जाता, लाट साहब के बच्चे हो, नवाब बने फिरते हो, इससे तो साइकिल ले लो, साइकिल चलाना सेहत के लिए भी अच्छा है, लोग बाग कहते हैं कि यदि साइकिल चलाते हो तो किसी और व्यायाम की जरूरत

नहीं।'' इस पर पतिदेव थोड़ा झल्ला उठे, ''रामप्यारी मैं इंसान हूँ या कोई तेली का बैल? हर वक्त तुम्हारे कामों में तेली के बैल की भाँति आँखों पर पट्टी बाँधे फिरता रहता हूँ।''

इस पर रामप्यारी बोली, ''और पट्टी खुलते ही तुम्हें क्या यह नहीं दिखाई पड़ता कि तुम बस वहीं एक छोटे से घेरे में घूम रहे थे, बस यही सोचते हो कि बहुत फासला तय कर लिया, कुल कितना चले, नौ दिन में अढाई कोस? उसके लिए भी तुम्हें सवारी चाहिए।'' कहते हुए रामप्यारी ने 100/- का एक नोट पर्स से निकाल कर पति की ओर फेंक दिया। पति को गुस्सा आ गया, ''क्या भीख दे रही हो, यही तमीज़ सीख कर आई थी तुम अपनी माँ से?''

''मेरी माँ तक पहुँच गए, यह तक नहीं सोचा कि तीन-तीन साँडनियाँ पैदा कर धर दी मेरी छाती पर, रामप्यारी कितना खटती रहती है हर वक्त, तुम्हारे बच्चों को पाल रही हूँ, रात दिन मुझे चैन नहीं, बस तुम्हें तो अपने आराम से मतलब, हर वक्त पलंग पर पड़े रहते हो, सुबह सबसे पहले उठती हूँ, हर वक्त फिरकनी सी फिरती रहती हूँ, दो बजने को आए, मेरे मुँह में अन्न का एक दाना तक नहीं गया, सुबह से एक प्याला चाय भी नसीब नहीं हुई, रामप्यारी न होती तो चल जाता आटे दाल के भाव का पता, वह तो मैं ही हूँ जिसने सारी जिंदगी दुख उठाते-उठाते तुम्हारी गिरहस्थी पाल दी और पहुँच गए मेरी माँ तक, सोचो अगर मैं भी तुम्हारी माँ तक पहुँच जाऊँ तो तुम्हें कैसा लगे?''

पति ने झुँझलाकर कहा, ''अच्छा हुआ वह मर गई, वरना बेटे पर तेरे अत्याचारों को देखती तो वह अपने सिर के बाल नोंच डालती।''

''अरे इतनी ही बुरी हूँ तो मेरे ऊपर मिट्टी का तेल छिड़क कर दियासलाई क्यों नहीं लगा देते, किस्सा खत्म हो, न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।'' कहते-कहते रामप्यारी माथा पीटने लगी। वह इतनी उग्र हो गई कि बौखला कर उठी और पति की ओर अँगुली उठाकर चीखकर बोली, ''तू क्या समझता है अपने आपको, भड़वे! दो पैसे क्या कमाकर ले आता है, मेरे माँ-बाप तक पहुँचने का साहस कर बैठा है, कान खोल कर सुन ले, फिर दोबारा मेरी माँ को गाली दी होगी तो सारी जिंदगी पछताएगा। क्षत्राणी का दूध पिया है मैंने, तूने अभी मेरा असली रूप नहीं देखा है।'' और माथा पीट-पीटकर चिल्लाती है, ''हे राम, अब बस ये ही सुख देखना

बाकी रह गया था मेरे भाग्य में, तू मुझे उठा क्यों नहीं लेता रामजी?" पति लाल-पीला होते बाहर निकल आया। वह न जाने क्या-क्या सोचता, सड़क पर चला जा रहा था, उसकी बुद्धि यह खोज कर रही थी कि क्लेश की इस रेस में क्या कोई दूसरी स्त्री है जो रामप्यारी को पछाड़ दे, उसने मन ही मन कहा, "सब झूठ है, बकवास है एकदम, भाँग पीकर लिखा है किसी ने 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी', किधर से अबला है? डेढ़ पसली की रामप्यारी, फूँक मारो तो छिटक कर दूर जा पड़े और मुझ छह फुटे हृष्ट-पुष्ट आदमी को इसने नाकों चने चबा रखे हैं। हर वक्त तानों के चाबुक मेरी पीठ पर मारती रहती है, कितनी निडर, कितनी निर्भीक, कितनी साहसी, मेरी तो उसके सामने 'शेर के सामने बकरी' जैसी स्थिति है--सब गलत कहते हैं, नारी जैसी सबला कोई नहीं...न जाने क्या-क्या बड़बड़ाता वह चला जा रहा था। लोक-लाज खाए जा रही थी उसे, पता नहीं इतनी सहिष्णुता कहाँ से आ गई थी उसमें?"

रामप्यारी को विधवा हुए अभी ज्यादा दिन नहीं हुए थे। अच्छा-खासा स्वस्थ था वह, बस एक दिन ऐसा सोया कि सोया ही रह गया था। रामप्यारी के भाग्य अच्छे थे कि पति की मृत्यु के उपरांत उसे करीब 50 लाख रुपए मिले थे। पति ने कभी अपने नाम कुछ नहीं रखा, एक प्लॉट लिया था, विवेक विहार में, उस पर कोठी बनवा ली थी, बाहर रामप्यारी के नाम का एक पत्थर लगवा दिया था। आर्थिक दृष्टि से रामप्यारी काफी ठीक थी, फिर लड़का भी अब दो ढाई लाख रुपया महीना कमा रहा था, मौज ही मौज थी, पर रामप्यारी को यही भय सताता रहता है कि कहीं मेरे लाडले पर कोई आफत आ गई तो क्या होगा, मेरे बुढ़ापे के लिए कहाँ से आएगा। वह पैसे को भगवान का दर्जा दिए हुए उसे हृदय में राम नाम की भाँति चिपकाए रहती थी। श्यामसुंदर का रिश्ता पति के सामने ही तय हो गया था। लड़की वाले श्यामसुंदर को देखने आए थे तो पतिदेव को तो जैसे मुँह खोलने की इजाजत ही नहीं थी, रामप्यारी ही बोलती रहती थी, सारी बातें रामप्यारी ने ही तय की थी। अपनी समधन समधी के सामने रामप्यारी ने कहा था, "देखो बहिन जी, हैं तो हम मामूली से आदमी, मैंने तो बस लड़के को काबिल बना दिया है, तीन लड़कियाँ हैं, इन्हें भी अच्छी शिक्षा दी है, इनके लिए भी मैंने इंतजाम कर लिया है, बहू आएगी उसके लिए जैसी भी है, यह मामूली सी एक कोठी है, ये ही कोई

दो ढाई करोड़ की होगी, बताओ बहिन जी, एक स्त्री इससे अधिक और क्या करती?" उसकी बातें सुन-सुनकर पतिदेव लाज से जमीन में गड़े जाते थे कि क्या कहते होंगे ये लड़की के माता-पिता? इसके बेहूदा अहंकार ने इसमें यह भी सोचने की शक्ति छीन ली है कि ये इसके विषय में क्या धारणा बनाएँगे।

रामप्यारी का यह स्वभाव था कि हर किसी से बात-बात में यह कहती थी, "अजी बस वह तो मैं ही हूँ जिसने इतना कुछ कर लिया वरना सत्यानाश करने में इन्होंने तो कुछ कसर नहीं छोड़ी थी, इन्हें तो नॉवेल पढ़ने, टी.वी. देखने और पलंग तोड़ने से ही फुर्सत नहीं। हाँ दफ्तर जाना तो इनकी मजबूरी थी, दफ्तर तो ये नियम से जाते हैं। जब भी पतिदेव कुछ बोलते तो रामप्यारी तुरंत उनकी बात काटकर अपनी बड़ाई करना शुरू कर दिया करती थी। हर किसी से रामप्यारी यह बताना नहीं भूलती थी, "अपने फर्जों से मैं कभी पीछे नहीं हटी। इनके परिवार में जब भी कोई कारज हुआ, मैंने इनके परिवार वालों के प्रति हर फर्ज का निर्वाह किया। वह दिन में दसियों बार पतिदेव के सामने आत्मगौरव का बखान करती थी, "राम जी जानते हैं, मैंने तो कभी भेदभाव किया नहीं, सदा अपना फर्ज निभाया है, तुम्हारे रिश्तेदार आंए दिन यहाँ आ धमकते हैं, मेरे से अपनी रोटी तो बनती नहीं पर उनकी आवभगत से मैं कभी पीछे नहीं हटी, बताओ मैं झूठ कहती हूँ?" पति उत्तर में कहता, "झूठ से तुम्हारा क्या मतलब, झूठ तो तुम कभी बोल ही नहीं सकती।" जब रामप्यारी के पति ने देखा कि मेरे घरवाले, सगे-संबंधी, यार-दोस्त जब भी यहाँ आते हैं, रामप्यारी उनके सत्कार में तो कोई कसर नहीं उठा छोड़ती पर उनके घर से बाहर निकलते ही रामप्यारी का क्लेश शुरू हो जाता था। "तुम्हीं बुलाते हो इन सब लोगों को अपने फोन नं. दे-देकर। मुझसे नहीं होती यह आवभगत।" इसी क्लेश से दुखी होकर वह अपने सगे-संबंधियों से कटता चला गया।

अचानक ही किसी के हाथ से प्लेट छूटकर नीचे गिर गई, एक जोर की आवाज हुई, प्लेट टूट गई, तभी रामप्यारी की तंद्रा भी टूट गई, वह चौंक कर उठी और बड़ी लड़की से जोर से बोली, अरी संटी खिलाई शुरू क्यों नहीं करती, एक बजने को आया कब ये लोग नहाए-धोएँगे, कब खाना खाएँगे, जल्दी करो।"

कोठी के बाहर शहतूत के पेड़ से दो संटियाँ तोड़कर ले आई गई, पतली सी संटी श्यामसुंदर को थमा दी गई, मोटी सी कांति के हाथ में पकड़ा दी गई। बड़ी लड़की बोली, "भैया भाभी को संटी मारेंगे, भाभी भैया को। रिश्ते में भाभी लगने वाली एक युवती ने कहा, "बस यही एक सुनहरी मौका है देवरानी जी, मत चूको, जड़ दो एक संटी, संकोच मत करो।" कांति ने एक संटी पति को जड़ दी, पति ने भी एक संटी धीरे से कांति को मार दी। धर्मपत्नी ने सोचा, "मत चूको चौहान"–सटाक् सटाक् दो बार संटी-फायर हुआ–"यह लो पति परमेश्वर, पहला चरण स्पर्श।" पति परमेश्वर की बाजू पर संटी की एक रेखा सी खिंच गई, एक संटी उसने भी पत्नी की पीठ पर जड़ दी लेकिन जरा हल्के से, पत्नी ने फिर दो मारी, पति ने एक लगाई और उसकी संटी टूट गई। पत्नी ने फिर एक संटी से ही संतोष कर लिया, तालियाँ बज उठी। हँसी के फौवारे छूट पड़े। श्यामसुंदर की एक भाभी ने हँसते हुए कहा, "क्यों देवर जी, आया मज़ा? दोनों हाथ ऊपर उठा, दिखा दी न सफेद झंडी, बस संभल कर रहना देवरजी, आज की संटियाँ याद रखना, बस यूँ ही सरेंडर करते रहोगे तो लाभ में रहोगे।"

दूसरी बोली, "ठीक है देवरानी, ये पति लोग ऐसे ही रास्ते पर रहते हैं।" बहू मन ही मन मुस्करा रही थी। उधर रामप्यारी एंज्वाय तो कर रही थी, पर बेटे का इस तरह पिटना उसे रास नहीं आ रहा था। वह जानती थी, पर समझती नहीं थी कि उसने अपने पति की लगाम कभी ढीली नहीं छोड़ी, उसे सदा अपनी लीक पर दौड़ाने में गर्वानुभूति करती रही, उसी में उसे एक मनस्तोष मिलता था, वह नहीं चाहती थी कि इस प्रकार का मनस्तोष मेरी बहू भी प्राप्त करे। उसने पति की हारी-बीमारी में कभी कोताई नहीं बरती जिसे वह हर समय याद रखती थी। हर किसी के सामने कहा करती थी, "मुझे हीरे जैसा अमूल्य रत्न भगवान ने दिया है, मैं तो इसे अपने पुण्य-प्रताप का ही फल मानती हूँ, भगवान साक्षी है मैंने कभी पति-सेवा से मुँह नहीं मोड़ा, मरते-मरते उनकी ही नहीं, उनके सारे खानदान की सेवा की, शायद इसी से खुश होकर भगवान ने मुझे ऐसा श्रवण कुमार दिया है। भगवान ऐसा बेटा सबको दे।" दूसरे ही क्षण वह सोचती मैंने इतना किया पर कभी उस शख्स ने अपने फूटे मुँह से प्यार के दो शब्द भी नहीं बोले, कभी यह तक नहीं कहा, "रामप्यारी तू कैसी

है, तूने कुछ खाया भी है या नहीं, सुबह से शाम तक रामप्यारी यूँ ही खटती रहती है, मेरे लिए, मेरे बच्चों के लिए।'' चलो जैसी परमात्मा की मर्जी, मेरी करनी मेरे साथ, उनकी करनी उनके साथ, मैं तो यही कहूँगी कि भगवान उनकी आत्मा को शांति दे। उसे रह-रहकर याद आ रहे थे अपने वे संवाद जिन्हें वह अक्सर पति के सामने दोहराया करती थी, ''मैंने तुम्हारे यहाँ देखा ही क्या है, न कभी खाया, न पीया।'' अपनी अंतरंग सहेलियों से रामप्यारी पति की शिकायत कर अपना मन हलका किया करती थी–''बहिन जी, जितनी दुखी मैं हूँ, इतना भगवान किसी को न बनाए, बहिन मरते-मरते भी मैं उस शख्स की सेवा करती रही, उसने कभी मुझे एक छल्ला तक न चढ़ाया, सिवाय इस स्टील के छल्ले के जो उसने मेरी शनिगृह शांति हेतु कहीं से लाकर पहनाया था, पर मैं कभी अपने फर्ज से पीछे नहीं हटी, आज जब शीशा देखती हूँ तो 75 साल की बुढ़िया सी लगती हूँ, तन की खाल लटक गई है।''

इस तरह की बातें रामप्यारी का तकियाकलाम बन चुकी थी। वह सोचा करती थी, ''ये तीन साँडनियाँ मेरी छाती पर छोड़ गया?'' पर दूसरे ही क्षण वह संतोष भी कर लेती थी कि मेरा बेटा मेरी तरह अपने फर्ज से पीछे नहीं हटेगा, वह सब जिम्मेदारी निभाएगा, ये लड़कियाँ भी उठेंगी ही पर मेरे लाड़ले को इन तीनों चुड़ैलों के लिए कितना कुछ झेलना पड़ेगा, अपनी गृहस्थी पालेगा या इनका बोझ ढोएगा, दो ढाई लाख रुपए महीना उसकी तनख्वाह है, उसके अपने भी तो खर्चे हैं, कहाँ से करेगा वह इतना कुछ, पर चलो परमात्मा सब सहायक होंगे। रामप्यारी इस तरह की बातें सोचती रहती थी। पुत्र-मोह निःसीम था, रामप्यारी हर समय उसके भविष्य के प्रति चिंतित रहती थी।

ऐसा लगता था, घर के कोलाहल और रामप्यारी की स्मृतियों में एक जंग छिड़ी हुई थी, कोलाहल स्मृतियों को भंग करने में असफल था। रामप्यारी की कमर में जोर का दर्द उठा, उसके मुख से अचानक हाय निकल पड़ी और रामप्यारी की स्मृति भंग हो गई, सीन एकदम कट–वह फिर वर्तमान में लौट आई। ''चलो री लड़कियों बहू के नहाने-धोने का प्रबंध करो, चल रे मुन्ना, तू भी निपट, चलो री बहुत हो चुका। रामप्यारी को एक अजीब सी अकुलाहट हो रही थी। ''ओ मुन्ना दो मिनिट, मेरे पास भी तो बैठ जा बेटे!'' ''हाँ माँ, बोल क्या बात है।'' रामप्यारी उसे एक दूसरे कमरे

में ले गई जहाँ और कोई नहीं था। रामप्यारी एक चारपाई पर बैठ गई, हाथ से इशारा करते हुए बोली, "बैठ जा बेटे, मेरे पास।" बेटा माँ के पास बैठ गया। "मेरी बात ध्यान से सुन मुन्ना, आज से तेरी नई जिंदगी शुरू हो रही है, मेरी एक सीख पल्ले बाँध ले बेटा, लाखों रुपए कमा रहा है, बड़ा हो गया है पर तू अभी भी भोला है, बच्चा है तुझे दीन-दुनिया का कुछ पता नहीं, मैंने दुनिया देखी है बेटा। मेरी बात याद रखेगा तो सुखी रहेगा। मैं तो अब कुछ दिन की मेहमान हूँ, जीवन की गाड़ी खींचने की ताकत इन सूखी हड्डियों में अब नहीं रह गई बेटा, पता नहीं किस दिन परमात्मा का बुलावा आ जाए, तू दुखी रहेगा तो मेरी आत्मा, कभी चैन न पा सकेगी, भटकती रहेगी, तू सुखी रहेगा तो मैं मुक्त हो जाऊँगी।" बेटे की आँखों में आँसू छलछला आए, वह माँ से लिपट गया, "ऐसा क्यूँ सोचती है माँ तुझे कोई कष्ट नहीं होने दूँगा, चिंता न कर।" कहकर उसने जेब से रूमाल निकाला और आँसू पोंछ लिए।

रामप्यारी भी भावुक हो उठी, पुत्र के सिर पर हाथ फेरती हुई उसने स्वयं को नियंत्रित किया और बोली, "बेटा, अभी से तूने अगर बहू की लल्लो-चप्पो शुरू कर दी, तो यह तेरे सिर पर चढ़ बैठेगी और तेरी लगाम इसके हाथ में आ जाएगी, फिर तेरी लाख कोशिशों के बाद भी तू इसे काबू न कर पाएगा। नई बहू तो बेटा, चंचल घोड़ी होती है, इसे काबू में रखना है तो कसकर इसकी लगाम पकड़े रहना, लगाम ढीली पड़ी नहीं कि यह काबू से बाहर, फिर तुझे धड़ाम से धरती पर पटक, अगले दोनों पैर उठा हिनहिनाती सी तेरी छाती पर सवार हो जाएगी और तेरे पास भगवान से त्राहिमाम कहने के अलावा कोई चारा नहीं बचेगा। तूने मेरा सारा जीवन देखा है, मैं सदा दुखी रही हूँ, तेरे बाप ने मुझे कभी सुख नहीं दिया, तुझे मैं कभी भी दुखी नहीं देख सकती। आजकल की लड़कियों को देख-देखकर मेरा कलेजा धक्-धक् करता रहता है, कैसा नचाती है वे अपनी अँगुलियों पर अपने खसमों को, कैसे वे बूढ़े सास-ससुर को दूध में गिरी मक्खी की भाँति निकाल बाहर फेंक देती हैं, तेरे साथ भी कुछ ऐसा वैसा न हो, बस डरती रहती हूँ। और आखिरी बात, भूलकर भी कोई ज़मीन-जायदाद बहू के नाम मत कर देना, सब मेरे जैसी नहीं होती कि सबकुछ मेरे नाम होने पर भी मैंने कभी सुख नहीं देखा, अब तेरे राज में कुछ सुख भोग लूँगी तो भोग लूँगी।" कहते-कहते रामप्यारी सुबक उठी,

बेटे के सिर पर हाथ फेरा, मन भारी मत कर बेटा, अब जब तू है तो मुझे दुख कैसा, मैं बहुत सुखी हूँ अब, देख, कैसा पीला पड़ गया है तेरा मुँह, जा बेटा, नहा-धो, खाना-वाना खा, भगवान करे तू सुखी रहे, मेरी उमर भी तुझे लग जाए।'' बस.....

(आगे परदे पर देखिए)

कलाई का दाग़

"बस, बस, यहीं रोक दो।" नसीम ने ऑटो वाले से कहा। नसीम ऑटो से नीचे उतरी, पर्स खोला, "कितने बने?" ऑटो वाले ने पीछे मुड़कर मीटर देखा—"बाईस रुपए।' और मीटर ज़ीरो पर ले आया। नसीम ने उसे बाईस रुपए दिए और दाईं ओर बने दस मंजिले हिमालयन हाइट्स के छोटे गेट से भीतर प्रवेश किया, आँखों से गॉगल्स उतारा और पर्स में रख लिया।

नसीम एक निहायत खूबसूरत लगभग 28 वर्षीया युवती है, उसके विवाह को ज्यादा दिन नहीं हुए, केन्द्रीय विद्यालय में इतिहास की पी.जी. टी. है। लिफ्ट के पास पहुँचकर उसने बाहर का बटन दबाया, दरवाजा खुला और भीतर प्रवेश कर, आठ नम्बर का बटन दबा दिया। ऊपर पहुँच उसने पर्स से चाबी निकाली और दरवाजा खोल भीतर चली गई।

नसीम के पति मिस्टर ज़ैदी आई.ए.एस. अफसर, उद्योग मन्त्रालय में कार्यरत, बल्लीमारान में रहते थे। नसीम को बल्लीमारान कभी पसन्द नहीं आया, उसने ज़िद करके पटपड़गंज स्थित हिमालयन हाइट्स में एक अपार्टमेंट खरीद लिया था। अफसरों को लोन में कोई परेशानी नहीं होती, उनकी अपनी टेबुल पर, बैठे-बैठे उन्हें लोन मिल जाता है। आजकल लोन लेने में किसी को भी खास परेशानी नहीं उठानी पड़ती, बस काग़ज़ का पेट भरना चाहिए। नसीम ने हाल ही में यहाँ शिफ्ट किया है। उसने पंखा खोला, साड़ी उतारी और गाउन पहन लिया, फ्रिज से ठंडे पानी की बोतल निकाली, एक गिलास पानी पिया और धम्म से पलंग पर लेट गई। गर्मी बहुत थी, पंखे से काम नहीं चला तो उठी, दरवाजा बन्द कर, दरवाजे पर पर्दे डाले और ए.सी. ऑन कर लिया। उसे भूख लगी थी, पर मौसम और थकान दोनों उसे पलंग की ओर खींच रहे थे। थोड़ी देर लेटी, पर भूख

ने उसे उठा दिया और वह किचन में पहुँच गई। फ्रिंज से फुलके, सब्जी, निकाली, माइक्रोवेव में गर्म किए और खाने बैठ गई। जल्दी-जल्दी खाना खाया, बल्कि यूँ कहें कि भूख से पीछा छुड़ाया, और फिर पलंग पर जा पड़ी। जब वह अपने अपार्टमेंट में प्रवेश कर रही थी तो उसके सामने वाले फ्लैट के गेट पर एक नेम प्लेट देखी—"तत्पर त्रिवेदी, आई.ए.एस।" खाना खाकर जैसे ही वह पलंग पर लेटी, उसका ध्यान तत्पर त्रिवेदी की नेम प्लेट पर गया। वह सोचने लगी कि उसने तत्पर नाम, बस एक बार बचपन में सुना था, उसके बाद आज तक उसे, तत्पर नाम का दूसरा व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ा और लेटे-लेटे अपने बचपन में पहुँच गई।

मेरठ का सेंट टॉमस स्कूल, कक्षा 5 की क्लास में, टीचर के आने की प्रतीक्षा में, स्वभाव के विपरीत बच्चे, लगभग शान्त बैठे थे। उनकी इस शान्ति पर, कदाचित् कठोर अनुशासन का पहरा था। फिर भी कुछ बच्चे इतने ऊधमी, साहसी, चंचल होते हैं कि मौका मिलते ही वे अनुशासन की जकड़न को अपनी कसमसाहट से ढीली कर देते हैं। उस पूरी क्लास में एक लड़की बड़ी तेज-तर्रार थी, जो मौका मिलते ही हुड़दंग मचाने से बाज नहीं आती थी। वह अपनी सीट से उठी, टीचर की कुर्सी के पास पहुँची और कुर्सी के पीछे दीवार पर तारकोल से पुते ब्लैक बोर्ड पर, रोमन लिपि में लिखा, 'तत्पर त्रिवेदी'। फिर टीचर के अन्दाज में बोली, "सुनो बच्चों, बताओ, ये क्या लिखा है?" बच्चे बोले 'तत्पर त्रिवेदी'। वह बोली, "नहीं, यह है 'टाटपर ट्रिवेडी'। देखो ये टाट पर बैठने वाला लड़का, बेंच पर बैठा है।" सुनकर सारी क्लास हँस पड़ी। तत्पर त्रिवेदी को ताव आ गया, था तो वह लड़की से कम उम्र का और शरीर में भी दुबला-पतला, लेकिन कम साहसी न था। वह अपनी सीट से उठा था, और ब्लैक बोर्ड पर देवनागरी में लिखा 'मसीन'। उसी अन्दाज में बोला, "बोलो बच्चों, यह क्या लिखा है?" बच्चे बोले, "मसीन।" "गुड, अब इसे उल्टी तरफ से पढ़ो।" तत्पर ने कहा। बच्चे बोले, "नसीम", "हाँ ठीक है वेरी गुड, यह नसीम, उल्टी मसीन है, जो हर वक्त बक् बक् बक् बक् करती रहती है, मोटी कहीं की, भैंस जैसी। नसीम तत्पर पर झपटी, "मुझे भैंस कहता है।" दोनों गुत्थम गुत्था। इतने में टीचर आ गई, चिल्लाई, "साइलैंस।" सबको जैसे साँप सूँघ गया हो।

नसीम और तत्पर त्रिवेदी दोनों पास-पास बैठते थे। टीचर ने पढ़ाना

शुरू किया, नसीम ने डेस्क के नीचे से धीरे से तत्पर के पैर में पैर मारा, तत्पर चौंककर उसकी ओर देखने लगा, नसीम बोली, ''सॉरी'', तत्पर ने कहा, ''इट्स ऑलराइट।'' दोनों फिर घुल-मिल गए, यह अक्सर होता रहता था—लड़ाई, दोस्ती, फिर लड़ाई, फिर दोस्ती। दोनों एक-दूसरे को नाम बिगाड़कर बोलते थे।

एक दिन नसीम ने देखा कि तत्पर बाहर लॉन में बैठा, कोहनियों को घुटनों पर टिकाए, हथेलियों में मुँह रखे उदास बैठा है। नसीम उसके पास गई, बोली, ''क्या बात है टाटपर, यूँ मुँह लटकाए क्यों बैठा है?'' ''नसीम, तुझे पता है आज राखी है, सब लड़कियाँ सजधजकर अपने भाइयों को राखी बाँधती हैं, उन्हें मिठाई खिलाती हैं, लड़के लोग भी चटकीले-भड़कीले कपड़े पहनते हैं, यहाँ तो रोज एक-सी ही ड्रेस पहननी होती है, लड़कियाँ अपने भैयाओं के माथे पर टीका लगाती हैं...पर मेरे तो कोई बहन ही नहीं है, मेरा हाथ तो सूना है।'' सुनकर नसीम द्रवित हो उठी, ''ला रे, मैं बाँधूँगी तुझे राखी,...मेरे भी कोई भाई नहीं है, मुझे भी बहुत अच्छा लगता है यह सब, लड़कियाँ कितनी सुन्दर-सुन्दर ड्रेसें पहने फिरती हैं, अपने भाइयों को राखी बाँधती हैं, टीका लगाती हैं। पर मेरे पास तो राखी ही नहीं। कुछ सोचकर वह फिर बोली, ''अच्छा सुन, मैं शाम को आऊँगी तेरे घर राखी बाँधने।''

एक बज गया, स्कूल की छुट्टी की घंटी बजी, स्कूल के बाहर रिक्शाओं, मोटरकारों की भीड़ लगी थी, कुछ बसें भी खड़ी थीं। सब बच्चे अपनी-अपनी सवारी में बैठ घर की ओर रवाना हो गए। तत्पर और नसीम के घर पास-पास ही थे, दोनों के पिता सरकारी अफसर थे, दोनों ही सरकारी बंगलों में रहते थे।

दोपहर को नसीम अपनी माँ से बोली, ''अम्मी, मैं तत्पर को राखी बाधूँगी, मुझे कुछ रुपए दो, राखी और मिठाई लाऊँगी।'' ''नहीं यह सब नहीं होता हमारे यहाँ।'' कहकर उसकी माँ दूसरे कमरे में चली गई। नसीम पीछे-पीछे गई, ''अम्मी दो ना पैसे, प्लीज़।'' ''मना कर दिया कि नहीं, हमारे यहाँ नहीं होता यह सब कुछ।'' ''हमारे यहाँ क्यों नहीं होता अम्मी, जब सबके यहाँ होता है?'' ''बताया ना, मुसलमानों के यहाँ नहीं होता।'' ''क्यों नहीं होता मुसलमानों के यहाँ?'' ''बस नहीं होता।'' ''पर क्यों नहीं होता? अम्मी बताओ न?'' ''अरी कह तो दिया कि मुसलमानों

के यहाँ यह त्यौहार नहीं होता, हमारे यहाँ तो ईद होती है, बकरीद होती है, शब्बेरात होती है, सब अपने-अपने त्यौहार मनाते हैं, यह हिन्दुओं का त्यौहार है, वे मनाते हैं, जैसे हिन्दू लोग, मुसलमानों के त्यौहार ईद, बकरीद वगैरह नहीं मनाते ऐसे ही मुसलमान, हिन्दुओं के त्यौहार नहीं मनाते, मुसलमान नहीं बँधवाते राखी।'' ''पर मेरी किताब में तो लिखा है कि हुमायूँ ने राखी बँधवाई थी, हुमायूँ क्या मुसलमान नहीं था?'' ''अरी कह दिया, हम नहीं मनाते हिन्दुओं के त्यौहारों को।'' ''नहीं, अम्मी, मैं बाँधूँगी तत्पर को राखी, मेरा सबसे अच्छा दोस्त है वह, आज बेचारा उदास बैठा था, मैंने उसे प्रॉमिस किया है कि आज मैं तुझे राखी बाँधूँगी।'' ''चल दफा हो यहाँ से, बैड़बैड़ किए जा रही है।'' कहते हुए नसीम की अम्मी ने उसे हाथ पकड़कर एक ओर धक्का दिया, ''बार बार समझा रही हूँ, समझ में ही नहीं आ रहा है।'' कहते हुए उसके मुँह पर एक चाँटा जड़ दिया। रोती हुई नसीम अपने कमरे में पलंग पर जा पड़ी। सुबकती हुई पड़ी रही और उसकी आँख लग गई।

संध्या के 5 बज चुके थे। वह उठी, उसे अपनी अम्मी पर बहुत गुस्सा आ रहा था। उसने मेज की दराज़ खोली, बीस रुपए का एक नोट निकाला और चुपचाप घर से बाहर निकल गई। नसीम सोचती जा रही थी कि क्यों नहीं मनाते हम यह त्यौहार? क्यों अम्मी मना करती हैं? इसमें क्या बुराई है? उसे अपने सवालों के जवाब नहीं मिल रहे थे। कदाचित् इसीलिए बच्चों को भगवान का रूप मानते हैं—कोई भेदभाव नहीं, सब बराबर, सारा जहाँ उनका अपना है, किसी की गोद में चले जाते हैं, जो उसे प्यार से बुलाए, उसी को अपना समझ लेते हैं, वे नहीं जानते कि हिन्दू क्या होता है, मुसलमान किसे कहते हैं, सिख, पारसी क्या होते हैं, उनका रूप तो समद्रष्टा का होता है, सच्ची एकता, सच्चा सर्वधर्म समभाव देखना हो तो बच्चों में देखो।

तरह-तरह के प्रश्नों में उलझी नसीम एक दुकान पर पहुँची, उसने दो रुपए की एक राखी ली, हलवाई की दुकान से दस रुपए की बर्फी ली और पहुँच गई त्रिवेदी के बँगले पर। कॉलबैल का बटन दबाया, नौकर आया और उसने दरवाजा खोल दिया। नसीम भीतर गई, सामने ही त्रिवेदी जी बैठे थे। ''नमस्ते अंकल।'' नसीम ने हाथ जोड़कर कहा, ''अरी नसीम बिटिया जीती रहो, खुश रहो, तत्पर अपने कमरे में बैठा है,

जाओ, शायद पढ़ रहा है।'' नसीम बोली, ''अंकल मैं तत्पर को राखी बाँध दूँ, आज राखी का त्यौहार है ना?'' त्रिवेदी जी चौंक गए यह सुन देखकर। प्रसन्न मुख उन्होंने कहा, ''हाँ, हाँ क्यों नहीं, जाओ बाँध दो।''

नसीम तत्पर के कमरे में गई, ''ए तत्पर! मैं तुझे राखी बाँधूँगी।'' तत्पर चौंक गया, हर बार टाटपर कहने वाली नसीम ने, उसे तत्पर कहकर बुलाया। उसे बहुत अच्छा लगा, बोला, ''नसीम, आजा, आ बैठ जा।'' नसीम ने लिफाफे से राखी निकाली, ''ला हाथ आगे बढ़ा।'' तत्पर ने बायाँ हाथ आगे किया, ''बुद्धू, बायाँ नहीं, दायाँ हाथ आगे बढ़ा, इतना भी नहीं जानता।'' नसीम ने राखी बाँध दी और लिफाफे से बर्फी का एक टुकड़ा निकाला और बोली, ''मुँह खोल।'' तत्पर ने मुँह खोला और नसीम ने उसके मुँह में बर्फी का एक पूरा टुकड़ा ठूँस दिया और खिलखिलाकर हँस पड़ी। नसीम को लगा कि अभी कुछ कमी रह गई है। ''तत्पर ठहर, मैं अभी आई'', कहकर नसीम भीतर के कमरे में गई, वहाँ मिसेज़ त्रिवेदी लेटी हुई थीं, उसे देखकर वे बोलीं, ''अरे नसीम बिटिया, आओ।'' ''आंटी नमस्ते, मैंने तत्पर को राखी बाँधी है पर टीका तो हुआ ही नहीं, आप मुझे प्लीज़ टीके का सामान दे दीजिए, मैं तो लाई नहीं।'' मिसेज त्रिवेदी आनन्दमग्न हो उठी, इस नन्हें फ़रिश्ते को देखकर, वे भावविह्वल हो उठी, झटपट एक प्लेट उठाई, उस पर जरा-सी रोली, चावल के दाने, दो एक रसगुल्ले रखे। ''आंटी राखी और मिठाई तो मैं ले आई, राखी मैंने तत्पर को बाँध दी है, मिठाई भी खिला दी है, बस टीका रह गया था, मैंने देखा है कि भाइयों के माथे पर टीका भी लगा होता है।'' नसीम ने प्लेट पकड़ी और चल दी तत्पर के कमरे की ओर। ''अरी ठहर बेटी, टीका ऐसे थोड़े ही हो जाएगा, रोली तो सूखी है।'' कहकर मिसेज त्रिवेदी ने पानी की दो-चार बूँदें रोली पर टपका दीं और उसके साथ तत्पर के पास पहुँची, बोली, ''बेटी, रोली को गीली कर ले,'' और नसीम की अनामिका अँगुली पकड़ी और रोली में पानी मिलवा दिया। ''ले अब रोली गीली हो गई है, कर दे टीका।'' नसीम ने तत्पर के माथे पर टीका लगा दिया। ''अब बेटी, दो चार दाने, चावल के उठा और तत्पर के माथे पर, रोली के ऊपर लगा दे।'' नसीम ने वैसा ही किया। मिसेज त्रिवेदी ने टीका होने से पहले ही तत्पर के सिर पर रुमाल रख दिया था, ''नंगे सिर टीका नहीं करवाते।'' वे बोली थी। नसीम बहुत खुश हुई, मिसेज त्रिवेदी बोली,

''नसीम अब तत्पर तेरा पक्का भैया हो गया और तत्पर, नसीम तेरी बहन हो गई, अब कभी नहीं लड़ना-झगड़ना, प्यार से रहना।'' पता नहीं क्यों मिसेज त्रिवेदी की आँखें छलछला आईं। त्रिवेदी जी एक ओर खड़े परमात्मा की यह लघु नाटिका देख रहे थे, मानो कृष्ण कन्हैया कोई रास रचा रहे थे। आनन्दोल्लसित त्रिवेदी ने अपने पर्स से इक्कीस रुपए निकाले और तत्पर को देते हुए बोले, ''लो बेटा, राखी बँधवाई है, बहन को कुछ तो देना चाहिए।'' तत्पर ने नसीम के हाथ पर इक्कीस रुपए रख दिए। मिसेज त्रिवेदी बोली, ''अब दोनों गले मिलो।'' दोनों एक-दूसरे से लिपट गए। नसीम बोली, ''अब चलूँगी अंकल, बहुत देर हो गई है, मम्मी से कहकर भी नहीं आई थी, वे इन्तजार कर रही होंगी, अच्छा बाय अंकल, आंटी बाय और तत्पर बाय, कल स्कूल में मिलेंगे।'' हाथ उठाकर बाय करती हुई नसीम चली गई। नसीम आनन्दमग्न हो झूमती अपने घर की ओर बढ़ गई और दरवाजा खोलकर अन्दर पहुँची।

नसीम की अम्मी को, नौकर से पता चल चुका था कि बेबी बाहर गई हैं और राखी मिठाई लेकर त्रिवेदी साहब के बँगले में गई हैं। नसीम की अम्मी आगबबूला हो उठी थी। नसीम को देखते ही वे उस पर झपटी, उसके बाल पकड़े और मुँह पर एक जोर का तमाचा जड़ते हुए चीख़ी, ''कहाँ गई थी चुड़ैल?'' नसीम सुबक उठी और बोली, ''तत्पर को राखी बाँधने गई थी।'' उसकी अम्मी ने एक चाँटा और मारा, ''मना किया था कि नहीं!'' कहते हुए उसने नसीम की पीठ पर जोर से दो धौल जमाए, ''बोल, फिर जाएगी, फिर बाँधेगी राखी?'' नसीम में विद्रोह की आग भड़क उठी, वह रोते-रोते बोली, ''हाँ जाऊँगी, जाऊँगी, जाऊँगी, बाँधूँगी राखी, एक बार नहीं, सौ बार बाँधूँगी।'' जितने जोर-जोर से वह उसे पीट रही थी, उतने ही जोर से वह चीख़-चीख़कर कहे जा रही थी, ''जाऊँगी, जाऊँगी।'' उसकी अम्मी का क्रोध अपनी सारी सीमाएँ तोड़ चुका था, वे बदहवास हो उठी थी, ''मैं बँधवाऊँगी तुझसे राखी, चुड़ैल, रांड, देखती हूँ कैसे जाती है? तेरी भी जान न निकाली तो मेरा भी नाम नहीं।'' नसीम को घसीटते हुए वे उसे रसोई में ले गई, और गैस पर चिमटा गर्म किया और उसकी कलाई पर दाग दिया, ''जाएगी? अब जा के दिखा, तेरी गर्दन न काट दूँगी, तुझे यहीं दफन कर दूँगी। करमजली।'' नसीम की चीख इतने जोर से निकली कि कुरैशी साहब भागे आए, ''अरे क्या हुआ?

क्यों चीख़ी नसीम?'' ''पूछो अपनी लाड़ली से, इस हरामजादी चुड़ैल से! देखिए इसकी ज़िद, त्रिवेदी के लौंडे को, लाख मना करने पर भी राखी बाँध आई है।'' कुरैशी साहब ने अपनी पत्नी के हाथ से नसीम का हाथ छुड़ाया, ''इस तरह मारते हैं बच्ची को? कौन-सा कुफ्र टूट पड़ा जो इसने एक लड़के को एक धागा बाँध दिया? क्या जुर्म कर दिया इसने जो एक लड़के को भाई कह दिया?''

''पर वह तो हिन्दू है।''

''हिन्दू क्या भाई नहीं हो सकता?'' वे जोर से चीखे जब उन्होंने देखा कि नसीम की कलाई जला दी, ''हद्द होती है जहालत की भी, तुम इंसान हो या हैवान? हैवान भी अपने बच्चों से ऐसा बर्ताव नहीं करते, एक मासूम लड़की को इस तरह सज़ा देते हैं, फिर वह तो तुम्हारी अपनी बेटी है, जरा भी दर्द नहीं हुआ तुम्हें उस पर कहर बरपाते, जंगली कहीं की।''

मिसेज कुरैशी का क्रोध लगभग ढल गया, जब उन्होंने लड़की का जला हुआ हाथ देखा तो एक टीस-सी उनके कलेजे में उठी, वे बोली, ''इस्लाम में कहाँ लिखा है राखी बाँधना?''

''और कहाँ लिखा है धागा न बाँधना? मुसलमानों में क्या काला लाल धागा नहीं बाँधते कलाई में? इस नन्हीं-सी जान ने अगर किसी की कलाई पर एक धागा बाँध ही दिया तो कौन-सा पहाड़ टूट पड़ा? अरे धागे तो बँधते रहते हैं, लोग दरगाहों पर जाते हैं, मन्नतें माँगते हैं, धागे बाँधते हैं। कहाँ रह गया फर्क? उसमें किसी पीर पैग़म्बर या भगवान की पूजा तो नहीं की जाती, जिसका इस्लाम में विरोध हो। बस फर्क इतना है कि हिन्दुओं ने साल में एक दिन मुकर्रर किया हुआ है, और इसे धूमधाम से मनाते हैं। इसमें तो भाई-बहन का एक प्यार है, भाई को बहन के लिए उसकी जिम्मेदारी का अहसास दिलाते रहने का एक तरीका है, समझ नहीं आता इस्लाम को कौन-सा खतरा पैदा हो गया, जो लड़की की कलाई गर्म लोहे से दाग दी? बड़ी आई इस्लाम की झंडाबरदार, जाहिल कहीं की।'' कहकर वे नसीम को लेकर अपने कमरे में पहुँच गए और उसकी कलाई पर बरनौल लगाया।

अगले दिन नसीम स्कूल गई। तत्पर ने देखा कि नसीम की कलाई पर पट्टी बँधी है। तत्पर ने उसका हाथ पकड़ा, 'नसीम, पट्टी क्यों बाँध

रखी है?'' नसीम ने रोनी सूरत बनाकर कहा, ''मम्मी ने मारा।'' ''क्यों?'' ''मैंने तुझे राखी जो बाँधी थी, हमारे यहाँ नहीं होता यह सब।'' तत्पर को बड़ा आघात-सा लगा, वह ऐसे बोला जैसे कोई बड़ा समझदार बोल रहा हो, ''तूने मार खाई, राखी बाँधने के लिए, अरी ना बाँधती राखी, तेरी पिटाई तो न होती, मुझे बहुत बुरा लग रहा है, मैं आज ही आंटी से जाकर लड़ूँगा क्यों आपने नसीम को मारा?'' मानो बहन के दुख-दर्द के प्रति उसने अभी से जिम्मेदारी निभानी शुरू कर दी है। नसीम बोली, ''ना रे, क्या करेगा आकर, वे बहुत गुस्से में हैं, उन्होंने गुस्से में मेरा हाथ भी जला डाला।'' और दूसरे हाथ से पट्टी हटाकर जले का निशान तत्पर को दिखाया। तत्पर गुमसुम हो गया, वह ऐसे भावुक हो उठा मानो कोई बड़ा-बूढ़ा हो, तत्पर का हृदय नसीम की इस वेदना को सहन नहीं कर सका और उसके नेत्र छलछला आए, वह गुमसुम हो गया। बड़ों की तुलना में बच्चे अधिक संवेदनशील होते हैं।

नसीम की कलाई पर एक बदनुमा दाग़ पड़ गया, लाख कोशिश की पर वह मिटा नहीं, उससे कई बार कहा गया कि बेटी, चलो तुम्हारी प्लास्टिक सर्जरी करा दें, पर वह नहीं मानी और ज़िद पर अड़ी रही कि प्लास्टिक सर्जरी नहीं करानी और उसे ढकने के लिए उसने कलाई पर रुमाल बाँधना शुरू कर दिया। तत्पर के प्रति उसके हृदय में स्नेह उत्तरोत्तर बढ़ता गया। राखी के दिन वह बहुत भावुक हो उठती थी। उसे रह-रहकर तत्पर की याद सताती रहती थी। इस घटना के एक साल के भीतर ही भीतर त्रिवेदी का लखनऊ ट्रांसफर हो गया था और तब से आज तक तत्पर का कोई समाचार उसे नहीं मिला था।

नसीम के अपार्टमेंट की काल बैल बजी, नसीम की तन्द्रा भंग हो गई, वह बचपन से वर्तमान में लौट आई, उदासी की-सी मुद्रा में वह उठी और दरवाजा खोज दिया। मिस्टर जैदी दफ्तर से आ चुके थे। उन्होंने नसीम के चेहरे की उदासी देखी, बोले, ''क्या बात है, तबियत तो ठीक है?''

''नहीं, यूँ ही जरा आँख लग गई थी, सोकर उठी हूँ।'' ज़ैदी फ्रैश होने चले गए। नसीम का अन्तःमन कह रहा था कि हो न हो ये तत्पर त्रिवेदी, वही मेरा बचपन का भैया तत्पर है, राखी वाला, सेंट टॉमस वाला भैया।

जैदी यह कहते घर में घुसे थे कि आज बहुत गर्मी है। नसीम ने पूछा, "शर्बत लेंगे?" "नहीं बस एक गिलास पानी दे दो, फिर चाय पिएँगे।" ठंडे पानी का गिलास जैदी को देकर वे रसोई में चली गई और थोड़ी देर में ही वह चाय की ट्रे लेकर आई। दोनों बैठकर चाय पीने लगे। नसीम अपनी उत्सुकता दबा नहीं पा रही थी, वह बोली, "ज़ैदी साहब, ये सामने वाले फ्लैट में कौन रहता है?" "किन्हीं तत्पर त्रिवेदी की नेम प्लेट लगी है, हम यहाँ अभी हाल ही आए हैं तो किसी से खास जान-पहचान हुई नहीं।"

"तो जाइए न, उनसे परिचय बढ़ाइए, पड़ौसियों से तो जान-पहचान होनी ही चाहिए, वरना अकेले पड़े-पड़े बोर होते रहेंगे।" "अच्छा अभी जाता हूँ।"

"हाँ जाइए और पूरा परिचय लीजिएगा, कहाँ के हो, यहाँ कब से हो, माता-पिता क्या करते हैं, कहाँ-कहाँ से पढ़ाई पूरी की, कितने भाई-बहन हैं, वगैरह-वगैरह।"

ज़ैदी सामने वाले फ्लैट में गए, फ्लैट की घंटी का बटन दबाया। एक भद्र, अति शालीन युवती साड़ी पहने, बिन्दी लगाए, माइल्ड सी पर्फ्यूम लगाए हुए दरवाजा खोलकर जैदी साहब की ओर प्रश्नसूचक दृष्टि से देखने लगी, "जी?"

"जी, नमस्ते, मैं ज़ैदी, आपके सामने वाला पड़ौसी, त्रिवेदी जी हैं?"

"जी, नमस्कार, अन्दर आइए।" हाथ जोड़कर कहते हुए बोली। जैदी साहब को भीतर ड्राइंग रूम में बैठने का इशारा करते हुए मिसेज त्रिवेदी बोली, "बैठिए अभी आते ही हैं त्रिवेदी जी।" और थोड़ी ही देर में पानी का एक गिलास ट्रे में रखकर ले आई और जैदी से बोली, "लीजिए पानी लीजिए, बताइए ठंडा लेंगे या कुछ गर्म?" जैदी ने कहा, "बहन जी, मैं कोई मेहमान थोड़े ही ना हूँ, पड़ौसी हूँ आपका।" "तभी तो पूछ रही हूँ, मेहमान होते तो क्या आपसे पूछती? चाय, ठंडा, मिठाई, नमकीन सब लाकर रख देती—नाती दूर पड़ौसी नेड़े, पड़ौसी तो परिवार का ही एक अंग होता है, इसलिए बिना तकल्लुफ पूछ रही हूँ कि ठंडा लेंगे या गर्म?" "बड़ा धर्म-संकट पैदा कर दिया आपने। प्यास न होते हुए भी पानी मैंने पी लिया, चाय अभी पीकर आ रहा हूँ।"

"तब ठंडा चलेगा।" कहकर मिसेज त्रिवेदी चली गई। इतने में ही,

कुर्ता-पायजामा पहने 25-26 वर्षीय नवयुवक त्रिवेदी आ पहुँचे। ''नमस्कार'' हाथ जोड़ते हुए त्रिवेदी बोले और उन्होंने दायाँ हाथ जैदी की ओर बढ़ाया, बोले, ''मैं तत्पर त्रिवेदी, यहाँ कृषि मन्त्रालय में हूँ।'' ''मैं एच. ज़ैदी आपके सामने वाले फ्लैट में, उद्योग मन्त्रालय में हूँ।'' जैदी ने खड़े होकर हाथ मिलाते हुए कहा। ''बैठिए, प्लीज़।'' त्रिवेदी ने एक कुर्सी की ओर इशारा किया और स्वयं उसके सामने वाली कुर्सी पर बैठ गए। तभी मिसेज त्रिवेदी, शर्बत की ट्रे लेकर पहुँच गई, ''लीजिए शर्बत प्लीज़, मैं अभी आती हूँ।'' कहकर चली गई, दोनों ने शर्बत पिया और काफी देर तक दोनों में गुफ्तगू होती रही। त्रिवेदी ने अपने बाल्यकाल से लेकर, अब तक का सारा विवरण संक्षेप में सुना दिया—''मेरे पिता सरकारी अफसर थे, बचपन मेरठ में बीता, फिर लखनऊ, इलाहाबाद से आर्टस में डिग्री ली और जे.एन.यू. से राज विज्ञान में पी.जी. तथा वहीं हॉस्टेल में रहकर आई.ए.एस. किया।'' जैदी ने बताया कि, ''मेरी तो सारी एजूकेशन दिल्ली से हुई, जाकिर हुसैन कॉलेज से ग्रेजुएशन और प्राइवेट कोचिंग कर दिल्ली से ही आई.ए.एस. किया। बल्लीमारान में हमारा पुश्तैनी मकान है जिसे छोड़ अब यहाँ रहने लगा हूँ।''

अपने फ्लैट पर लौटकर ज़ैदी ने सारा किस्सा नसीम को सुनाया। वर्षों बाद कुम्भ के मेले में जुदा हुए पुत्र के अचानक मिल जाने पर जो आह्लाद एक माँ को होता है, कुछ वैसी ही अनुभूति नसीम को हुई। वह मन ही मन उल्लसित हो उठी, मन-भ्रमर गुन-गुन करने लगे, उसे अचानक ही करोड़ों रुपए की लाटरी लग जाने जैसी अनिर्वचनीय प्रसन्नता महसूस हो रही थी, उसमें गजब की स्फूर्ति आ गई थी। इस सुख ने उस रात उसे ठीक से सोने ही नहीं दिया। दो दिन बाद रक्षा बन्धन था। अगले दिन स्कूल से वह लौटी तो अपने साथ एक राखी, रसगुल्लों का एक छोटा-सा डिब्बा, अपने पर्स में डालकर ले आई थी। इससे अगली प्रातः रक्षा बन्धन के दिन वह रोजाना की तरह नहा धोकर तैयार हो गई और बैठकर अखबार पढ़ने लगी। जैदी साहब उठकर आए बोले, ''आज स्कूल नहीं जाना, सात बजने को आए?'' 'नहीं आज छुट्टी ले ली है।'' ''क्यों तबियत तो ठीक है आपकी?'' ''जी, बिलकुल ठीक है।'' आठ बजे तक ज़ैदी भी नहा-धोकर तैयार हो गए।

''चलो जरा त्रिवेदी साहब के यहाँ मिल आएँ।'' नसीम ने कहा।

"अरे भाई, आज उनका त्यौहार है, वे लोग बिज़ी होंगे, उनकी बहन आती होगी, या वे बहन के यहाँ जाते होंगे।" नसीम के मुँह से निकल गया, 'मैं समझती हूँ, उनकी कोई बहन नहीं है।" "अच्छा आपको कैसे मालूम?" पैर फिसलकर गिर पड़ने से जैसे व्यक्ति अपने आपको झट से सँभाल लेता है, नसीम ने भी कुछ वैसा ही प्रयास किया और बोली, "यूँ ही अन्दाजा था, हिन्दू लोग परिवार नियोजन में काफी यकीन करते हैं ना, लड़का हो गया तो फिर लड़की की इच्छा नहीं रखते।" इस पर जैदी ने कहा, 'बहन बड़ी भी तो हो सकती है?" "अरे होती होगी, चलो मिल आएँ, फिर उन्हें, आपको दफ्तर भी तो जाना है। चलिए उठिए ना", "वे पड़ोसी हैं, हम उनके त्यौहार में शेयर करेंगे तो वे भी हमारे यहाँ ईद बकरीद पर आएँगे, इस तरह मेल-मिलाप बढ़ता है, अच्छा लगता है, इस तरह दोस्ती बढ़ाना।" कहकर नसीम ने उन्हें बाजू पकड़कर उठाने का प्रयास किया। "अरे चलते हैं भाई।" जैदी उठ खड़े हुए, बोले, "पहले नाश्ता कर लें", "अरे दस मिनिट की ही तो बात है, आकर फिर आराम से करेंगे।" दोनों त्रिवेदी के फ्लैट पर पहुँचे, काल बैल का बटन दबाया। मिसेज त्रिवेदी ने दरवाजा खोला, हाथ जोड़कर बोली, "जी, नमस्कार, आइए।" नसीम और जैदी दोनों ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। ज़ैदी बोले, "ये मेरी मिसेज़ नसीम बानो, केन्द्रीय विद्यालय में पढ़ाती हैं।" मिसेज त्रिवेदी बोली, "बड़ी खुशी हुई आपसे मिलकर, आइए प्लीज़ अन्दर आइए।" दोनों ड्राइंग रूम में पहुँचे, त्रिवेदी बैठे हुए अखबार पढ़ रहे थे, दुआ-सलाम हुई, त्रिवेदी से जैदी ने नसीम का परिचय कराया, "ये मेरी मिसेज नसीम बानो।" "और ये मेरी मिसेज प्राची हाउस वाइफ हैं, और मैं तत्पर त्रिवेदी। बैठिए प्लीज।" प्राची खड़ी रही, नसीम बोली, "आप भी बैठिए ना मिसेज त्रिवेदी, हम सुबह-सुबह ही आ धमके आपको डिस्टर्ब करने के लिए, आज रक्षा बन्धन है ना सोचा, आप लोगों को रक्षा बन्धन की मुबारकबाद दे आएँ।" "अरे कैसी बात करती हैं आप, हमें तो वाकई, बहुत खुशी हुई आपसे मिलकर, चलो कोई बोलने-चालने वाला तो मिला, इससे तो मेल-मिलाप बढ़ता है, और सुनाइए जैदी साहब, कैसे हैं?" "सब दुआ है ऊपर वाले क़ी।"

त्रिवेदी ने नसीम की कलाई पर रुमाल बँधा देखा, उनके अवचेतन मानस की घंटी-सी बजी, उसी तरह का सीधी कलाई पर रुमाल का बँधा

होना, नाम नसीम, कहीं ये कुरैशी साहब की साहबजादी वही नसीम तो नहीं। त्रिवेदी के नेत्रों के समक्ष अपने बचपन की फिल्म का सीन घूम गया, सब कुछ वैसा ही स्पष्ट, मन में उत्सुकता हुई, जानने की, पर वे उसे दबा गए। गपशप शुरू हुई, नसीम बचपन से ही बहुत वाचाल रही है, बातों-बातों में बोली, ''त्रिवेदी साहब, हम हाथ देखना जानते हैं, भूत-भविष्य सब बता देते हैं।'' तुरन्त ही त्रिवेदी बोले, ''अरे वाह, वेरीगुड, हमें भी कुछ बताइए, हमारे प्रोमोशन वगैरह के बारे में।'' ''जरूर, लाइए हाथ बढ़ाइए।'' त्रिवेदी ने अपनी हथेली आगे कर दी। नसीम ने त्रिवेदी की कलाई पकड़ी, उनकी हथेलियों को पूरी तरह खोलने के लिए अपनी हथेली उस पर फिराई और बोली, ''आपने प्रोमोशन के बारे में पूछा, प्रोमोशन तो आपका ड्यू है, दो साल के भीतर-भीतर आप एक बेटे के बाप बनेंगे।'' सुनकर मिसेज त्रिवेदी झेंप गई। नसीम आगे बोली, ''यह तो हुई भविष्य की बात, अब भूत की बात सुनिए, आपका बचपन मेरठ में बीता, जहाँ आप सेंट टॉमस स्कूल में पढ़ते थे, आपके पिता सरकारी अफसर थे।'' इस पर त्रिवेदी बोले, ''यह तो मैं सब जैदी साहब को बता चुका हूँ, कोई नई बात बताइए।'' ''आपकी कोई बहन नहीं है, आपके एक पड़ौसी हुआ करते थे, वे भी सरकारी अफसर थे, उनसे आप लोगों का मेल-मिलाप था, बोलिए ठीक है ना?'' ''ठीक है,'' त्रिवेदी ने कहा। उसके रंगरूप, उसकी वाचालता को देखकर त्रिवेदी ने समझ लिया कि यह वही नसीम है। उन्होंने एक अजीब-सा मुँह बनाया और कहा, ''ये तो कोई खास बात नहीं, मामूली बातें हैं, छोटे-मोटे नजूमी तो हम भी हैं, इस तरह का भूत-भविष्य तो हम भी बता सकते हैं।'' ''तो बताइए ना।'' नसीम ने उत्सुकता से अपना हाथ आगे बढ़ाया, उसी तरह से त्रिवेदी ने नसीम की हथेली खोली और बोले, ''दो एक साल में जैदी साहब भी एक गोल-मटोल गोरा-चिट्टा बेटा गोद खिलाएँगे।'' तुरन्त नसीम बोली, ''जैदी साहब का हाथ देख रहे हैं या हमारा?'' और मुस्करा दी। त्रिवेदी ने कहा, ''बात एक ही है।'' ''ये तो कोई खास बात नहीं।'' ''तो आपके भूत के विषय में तो हम ऐसी बात बता सकते हैं कि जिसे शायद जैदी साहब भी न जानते हों! कहिए तो बता दूँ?'' इस वार्तालाप को सुनकर जैदी और प्राची दोनों अचम्भे में थे कि क्या अनाम-शनाप बोले जा रहे हैं ये दोनों। त्रिवेदी बोले, ''आपने जो ये कलाई पर रुमाल बाँध रखा है,

इस पर एक बदनुमा दाग़ है जिसे आपने रुमाल से ढका हुआ है। दोनों मन ही मन आनन्द सागर में गोते लगा रहे थे। नसीम भावुक होकर अपने उसी अन्दाज में बोली, "इसे बदनुमा दाग़ मत कह रे टाटपर, ट्रिवेड़ी, खड़ा हो जा।" नसीम ने अँगुली से त्रिवेदी की ओर इशारा किया। जैदी को जैसे करंट लगा हो, "क्या बदतमीजी है नसीम! होश में तो हो।" "आप चुप रहिए, ज़ैदी साहब इस पर मेरा बहुत पुराना उधार है मय ब्याज वसूल करके रहूँगी।" मिसेज त्रिवेदी भी हतप्रभ। त्रिवेदी खड़े हो गए, और नसीम ने उनकी कोली भर ली, "कहाँ चला गया था रे तू, आज तक तेरे इन्तजार में बैठी हूँ, कहाँ रहा इतने दिन? हर राखी पर तेरा इन्तजार करती रहती थी, कि भूले-भटके तू आ ही जाए..." और नसीम के नेत्रों से अश्रुधार फूट पड़ी, सुबकते हुए वह बोली, "अल्लाह मेहरबान है, उसने मेरी सुन ली, मुझे मेरे बिछड़े हुए भाई से मिला दिया।" दोनों सहज हो गए। मिसेज त्रिवेदी टुकुर-टुकुर देख रही थी, जैदी भौंचक्के थे, उन्हें लग रहा था जैसे नसीम को पागलपन का दौरा पड़ा है तभी तो ऐसा बेहूदा व्यवहार कर रही है और वह भी एक अफसर के साथ, क्या सोचती होंगी मिसेज त्रिवेदी इस बेशर्मी भरे व्यवहार के बारे में?

नसीम ने पर्स से राखी निकाली, रसगुल्लों का डिब्बा निकाला और बोली, "भाभी जान, जरा एक प्लेट में रोली चावल तो रख लाइए।" और ज़ैदी साहब आप आँखें फाड़-फाड़कर क्या देख रहे हैं, ये मेरा छोटा भैया है, तकदीर ने इसे मुझसे जुदा कर दिया था, और आज उसी तकदीर ने इसे मुझसे मिलवा भी दिया है। आप से ज़ैदी साहब, अभी जुम्मा-जुम्मा आठ दिन का रिश्ता है, इससे तो मेरा बचपन का नाता है, बताऊँगी सब कुछ, बरसों बाद आज अल्लाह ने मेरी सुनी है।"

प्राची प्लेट में रोली चावल ले आई, नसीम ने रोली पर पानी की दो-चार बूँदें टपकाईं, अनामिका से उसे मिलाया, और टीका करने के लिए हाथ ऊपर उठाया, "अरे सिर तो ढक ले बुद्धू, सब भूल गया?" "कहाँ से याद रखता दीदी? न जाने आज कितने सालों बाद मौका मिला है, मैं तो इस चमत्कार से ऐसा अभिभूत हुआ कि कुछ भी सुध न रही।" त्रिवेदी ने जेब से रुमाल निकाला, सिर पर रखा, नसीम ने टीका किया, राखी बाँधी एक रसगुल्ला खिलाया और आशीर्वाद दिया, "जुग जुग जिए मेरा भैया, मेरी उमर भी इसे लग जाए।" नेत्र छलछला आए। उसी अन्दाज

में बोली, ''निकालिए मेरी दक्षिणा,'' त्रिवेदी ने पर्स निकाला, ''ये लो सब तुम्हारे।'' नसीम ने उसमें से एक रुपया निकाला और बोली, ''ऐसी बहन नहीं हूँ जो भैया का पर्स खाली कर दे, अल्लाह करे इसके घर में सदा बरकत रहे। और भाभी आपको तो अब चलेगा पता कि ननदों की आवभगत कैसे की जाती है।'' और जैदी साहब की ओर मुखातिब होते हुए बोली, ''जैदी साहब, हमारा शुक्रिया अदा कीजिए कि हमने आपको एक आई.ए.एस. का जीजू बना दिया।''

●

दिल्ली टु वृन्दावन

रामकृपालु हनुमान मन्दिर पहुँचा, भगवान जी के सामने हाथ जोड़कर बोला, "हे प्रभु, मेरे लड़के ने दसवीं का इम्तिहान दिया है, अगर तू उसे प्रथम श्रेणी में पास करा दे तो मैं पाँच रुपए का प्रसाद चढ़ाऊँगा।" उसका लड़का प्रथम श्रेणी में पास हो गया। उसने ईमानदारी का परिचय देते हुए पाँच रुपए का प्रसाद चढ़ा दिया। दो साल बाद, बारहवीं का परीक्षा-परिणाम आने से पूर्व रामकृपालु को फिर भगवान की याद आई, वह मन्दिर में गया और इक्कीस रुपए का प्रसाद बोल आया। लड़का प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हो गया, अपने वायदे के अनुसार रामकृपालु इक्कीस रुपए का प्रसाद चढ़ा आया। घर पहुँचकर उसने पत्नी को आवाज लगाई, 'अजी सुनती हो, मैं प्रसाद चढ़ा आया हूँ, यह लो, प्रसाद खाओ।" उसने दो बताशे पत्नी के हाथ पर रख दिए। पत्नी ने दोनों हाथों में प्रसाद लेकर, सिर झुकाया, "तू महान् है परमात्मा, तूने हमारी सुन ली।"

गर्जेकि उसकी प्रसाद की राशि उत्तरोत्तर बढ़ती गई, लड़का फर्स्ट क्लास में पास होता गया और वह बी.ए., एम.ए. कर गया। रामकृपालु ने पनवाड़ी की दुकान पर टँगा हुआ सुमुद्रित एक गत्ता देखा था जिस पर कई एक सूक्तियाँ छपी हुई थीं—"आज नकद कल उधार", "उधार प्रेम की कैंची है", "उधार माँगकर शर्मिन्दा न हों" आदि। इन सूक्तियों का उस पर बड़ा असर हुआ। उसने सोचा कि किसी का उधार नहीं रखना चाहिए और भगवान का तो बिलकुल नहीं। फलतः रामकृपालु समय पर भगवान का उधार चुकता करता गया—परीक्षा-परिणाम आते ही वह दस काम छोड़ मन्दिर में प्रसाद चढ़ा आता था। देश की बेरोजगारी की समस्या देखकर, उसका दिल उदास हो उठता था।

वहीं पास में ही, पुरुषोत्तम नाम का, उसका एक मित्र रहता था।

रामकृपालु, पुरुषोत्तम के घर गया और उससे बोला, "यार, पुरुषोत्तम भगवान की मेहरबानी से लड़के ने फर्स्ट क्लास में एम.ए. पास कर लिया है, थ्रु आउट फर्स्ट क्लास होने पर भी लड़के को कोई अच्छी नौकरी नहीं मिल रही है, क्या करूँ? छोटी-मोटी नौकरी के लिए ही क्या मैंने भगवान से इसके बढ़िया करियर की मन्नतें माँगी थीं? और देख, परमात्मा भी कितना दयालु है, उसने मेरी सारी मन्नतें पूरी कीं। अब परमात्मा को भी क्या दोष दूँ, वह तो कृपानिधान है। बता अब क्या करूँ?" मित्र ने उसे सलाह दी, "तू उसे किसी अच्छे संस्थान से एम.बी.ए. करा दे। फिर मेरी गारंटी है, इसे बढ़िया नौकरी मिलेगी कि एक साल में ही तेरी सारी लागत मय ब्याज लौट आएगी। अथवा भगवान् से प्रार्थना कर कि इसे किसी अच्छी पार्टी का नेता बना दे और कुछ जुगाड़ फिट कर, कुछ दिनों के लिए ही सही इसे मन्त्री बना दे, सारे धोने धुल जाएँगे।"

रामकृपालु को अपने कृपा-निधान पर विश्वास था, वह एक नया उत्साह लिए मन्दिर में पहुँचा, हाथ जोड़, नेत्र बन्दकर भगवान के सामने खड़ा हो गया—"दुर्गम काज जगत् के जेते, सुगम अनुग्रह तुम्हरे तेते"— गुन गुनाने लगा। भगवान उसके बन्द नेत्रों के समक्ष प्रकट हुए, "क्या बात है भक्त?" "कुछ नहीं प्रभु, बस एक आखिरी इच्छा है, उसे और पूरी कर दो।" प्रभु थोड़ा बनावटी क्रोध में बोले, "बड़ा बेशर्म है तू रामकृपालु, हर बार यही कहता है, मेरी आखिरी इच्छा है और फिर आ धमकता है, अच्छा बोल, क्या चाहता है?" उसने कहा, "मेरे पुत्र को नेता बना, मन्त्री बना दे या फिर एम.बी.ए. करा दे, मैं इस बार सोने का छतर चढ़ाऊँगा।" थोड़ा मुस्कराकर परमात्मा बोले, "भक्त! इन दोनों कामों की ठेकेदारी, अब मैंने छोड़ दी है। लोकतन्त्र की स्थापना कर दी है। अपने सारे अधिकार मैंने जनता-जनार्दन को सौंप दिए हैं उन्हें ही 'पंच परमेश्वर' बना दिया है मैंने। मजबूरन मुझे यह सब करना पड़ा। मैंने देखा कि आदमी ने मेरा कहना मानना छोड़ दिया है, मनमानी करने लगा हैं, हर व्यक्ति जायज़, नाजायज़ अपना हिस्सा माँगने लगता है, अब अपने लड़कों को कंट्रोल नहीं कर सका तो मैंने झुंझलाकर कह दिया, "लो दुष्टों, यह रहा तुम लोगों का राजपाट, बाँट लो इसे आपस में, करो, अपनी-अपनी ढपली, अपना-अपना राग, अब मैं चिन्ता नहीं करता, ये आपस में कटे, मरें, जो मन आए, करें। मैं विरक्त हो गया हूँ ऐसी औलाद से। "सब कुछ राम भरोसे", अब "सब कुछ जनता

भरोसे' हो गया है। मेरे सब अधिकार अब जनता जनार्दन के सुपुर्द हैं।'' भक्त ने गिड़गिड़ाते हुए कहा, 'ऐसा अनर्थ न करो प्रभु, कुछ कृपा करो, मेरा तो सब कुछ दाव पर लगा हुआ है, चलो मन्त्री-वन्त्री नहीं तो इसे एम.बी.ए. ही करा दो।'' इस पर भगवान बोले, ''वह भी अब मेरे हाथ में नहीं रहा। किसी अच्छे संस्थान में जा और डोनेशन देकर उसे दाखिला दिला दे, बाद में अच्छी नौकरी दिलाने में मैं तेरी मदद कर सकता हूँ।'' कहकर भगवान अन्तर्धान हो गए।

निराश-सा रामकृपालु घर की ओर चल दिया। रास्ते में पुरुषोत्तम का मकान पड़ता था। वह मित्र के कमरे में पहुँचा, बोला, ''यार, मन्त्री-पद की बात तो मैं सोच भी नहीं सकता, बड़ा लम्बा प्रोसेस है, एम. बी.ए. ही ठीक है। सुना है कि यहीं पास में ही एक संस्थान, गाज़ियाबाद में है, उसकी बड़ी मान्यता है, लेकिन वहाँ एडमिशन के लिए तो कम-से-कम पाँच लाख रुपए चाहिए, इतना रुपया कहाँ से जुटाऊँगा?'' मित्र बोला, ''अरे पाँच लाख के क्या माइने हैं वहाँ की डिग्री के सामने, लड़का तेरी सारी दरिद्रता एक साल में ही धो डालेगा, फिर तू इस टूटी हुई साइकिल पर नहीं चलेगा, चमचमाती कार में घूमेगा, जितना कुल मिलाकर तूने आज तक इसकी पढ़ाई पर खर्च किया है, उससे कहीं अधिक तो तुझे इसके दहेज में मिल जाएगा। कैसे भी हो, इसके एडमीशन का प्रबन्ध कर।''

रामकृपालु घर लौट आया। पत्नी से सलाह-मशविरा किया, गहनों आदि का मूल्यांकन किया, कुल मिलाकर पचास हजार भी नहीं हुए। पति बोला, ''क्यों ना मकान गिरवी रख दिया जाए?'' पत्नी ने विरोध किया, ''गिरवी रखी चीज आसानी से छुड़ाई नहीं जाती।'' ''अरे लड़का सब छुड़ा लेगा, और अगर नहीं भी छुड़ा पाएगा तो हमारा क्या है, हम छाती पर धरकर तो ले नहीं जाएँगे इसे, आज भी इसका है, कल भी इसका, जो मरजी आए करे, फिर तू यह क्यों नहीं समझती कि लड़का फिर क्या इस टूटे-फूटे मकान में रहेगा? जो होगा देखा जाएगा।'' कहकर रामकृपालु ने एक सन्तोष की साँस ली। आशा का सूर्य उदय हुआ, निराशा का अन्धकार छँट गया।

रामकृपालु के लड़के को एम.बी.ए. में प्रवेश मिल गया, सुखद सपने बुनते-बुनते, दो साल यूँ ही फटाफट बीत गए। इसी बीच लड़के ने एक

विधर्मी कन्या से कोर्ट मैरिज कर ली। रामकृपालु को दहेज तो क्या मिलता, उल्टा जेल जाते-जाते बचा। एम.बी.ए. का रिजल्ट आया, लड़का उत्तम अंकों से पास हुआ, रामकृपालु मन्दिर गया, धूप, दीप, आरती की और नेत्र बन्द कर, हाथ जोड़ भगवान के समक्ष खड़ा हो गया, "दुर्गम काज जगत के जेते"...गुनगुनाने लगा। भगवान प्रकट हुए, "क्या हाल है भक्त?" उसने गद्गद हो कहा, 'सब कुछ बहुत अच्छा है, लड़का एम.बी.ए. हो गया है, तेरा प्रसाद मुझे याद है प्रभु, पर सोने का छतर चढ़ाने के लिए तो मेरे पास पैसे नहीं हैं, बस उसकी नौकरी लगते ही, पहली तनख्वाह से ही सोने का छतर चढ़ाऊँगा, मैं तेरी महानता से परिचित हूँ प्रभु, तूने मुझ पर यकीन किया, मुझे उधार देता गया भले ही मैं उधार चुकाता रहा पर मैंने तो तेरा इस मामले में यकीन नहीं किया कि प्रसाद पहले चढ़ा देता और तू बाद में मेरी मन्नत पूरी कर देता, मेरे मन में कहीं-न-कहीं यह भय जरूर रहा कि एक परसेंट भी मेरी मन्नत पूरी न हुई तो प्रसाद व्यर्थ न चला जाए, इसलिए झूठ नहीं बोलूँगा तेरे सामने भगवन्, मुनीम जी की शिक्षा मैंने पल्ले बाँध ली—पहले ले, पीछे दे—तू देता गया, मैं चुकाता गया। बस भगवान अब तू उसे एक अच्छी-सी नौकरी दे दे, उसने अपनी मर्जी से शादी कर ली है, मुझे कोई रंज नहीं, उसकी माँ को जरूर एक कसक है कि लड़के के ब्याह की मेरे मन की मन में रह गई।" "अरे अपने बुढ़ापे के लिए भी कुछ बचा रखा है कि नहीं?" भगवान ने पूछा। "प्रभु तू तो अन्तर्यामी है, मेरा तो घर-बार, जोड़ा जखाड़ा, सब खर्च हो गया, कुछ होता तो तेरा छतर न चढ़ाता, लेकिन अब मुझे चिन्ता नहीं, मेरा लाल, हीरा बन गया है, तेरी कृपा से प्रभु मेरे सब संकट कट जाएँगे बस तू उसे दो-चार लाख रुपए महीना की एक अच्छी-सी नौकरी दिलवा दें। वह कहता रहा और प्रभु अन्तर्धान हो गए।

लड़के को पचास लाख रुपए सालाना के पैकेज की एक नौकरी मिल गई...और एक साल बाद रामकृपालु पाँच रुपए का प्रसाद लेकर मन्दिर पहुँचा, नेत्र बन्द किए, हाथ जोड़े—"दुर्गम काज जगत् के जेते"—गुन गुनाने लगा, भगवान प्रकट हुए, "अब क्या चाहिए तुझे, एक अच्छी-सी नौकरी तो दिलवा दी तेरे पुत्र को? तू अब भी सन्तुष्ट नहीं?" "नहीं प्रभु! असली सन्तोष के दर्शन तो अभी हुए हैं, इसीलिए तो अपनी

साइकिल पर अपनी सामर्थ्यानुसार पाँच रुपए का प्रसाद लेकर आया हूँ, सारी जिन्दगी तेरे साथ ईमानदारी निभाता रहा अब आखिर में बेईमान सिद्ध हो गया, तेरा छतर नहीं ला सका मैं लाचार था, तू सब कुछ जानता है, फिर भी मेरी ओर देखकर मुस्करा रहा है, मेरी खिल्ली उड़ा रहा है।'' रामकृपालु ने अश्रुपूरित नेत्रों से भगवान की ओर दृष्टिपात किया। प्रभु ने रोष में कहा, ''क्या अभी भी तू साइकिल पर चलता है?'' ''हाँ प्रभु! बहू कहती है कि पिता जी को आराम तलब मत करो, यूँ तो ये जड़ हो जाएँगे, चलते-फिरते रहेंगे, घर के काम-काज करने में व्यस्त रहेंगे तो स्वस्थ रहेंगे, फिर साइकिल पर चलना तो सबसे अच्छा व्यायाम है।'' मैंने बेटे से कहा, ''मुझे मन्दिर जाना है, सोने का छतर चढ़ाना है, बेटे ने चैकबुक निकाली, ''कितने का चैक काटूँ पिताजी?'' पर बहू ने डाँट दिया और बोली, ''क्या बकवास है? भगवान जी कहाँ आ टपके बीच में? कापियों में उत्तर क्या भगवान ने लिखे थे? इंटरव्यू में वाहवाही क्या भगवान ने लूटी थी? एब्सर्ड! देखो मिस्टर, हमारी गृहस्थी अभी शुरू हुई है, कुछ दिनों बाद हमारे आँगन में किलकारियाँ गूँजेंगी, आने वाले बच्चे की शिक्षा का भी प्रबन्ध करना है, इन सब फिजूल की बातों में मैं नहीं पड़ती, कहाँ है हमारे पास इतने पैसे, भगवान को खुश ही करना है तो दे दो इक्यावन रुपए।'' और बेटे के हाथ से चैक बुक छीन ली। अब बताइए प्रभु, बेटा ऐसे में क्या करता? वह तो कसाई के सामने गाय बना खड़ा रहा, अब तू ही बता भगवन् कि क्या बेटे को अपनी हाल ही में शुरू हुई जिन्दगी, कब्र में पैर लटकाए बूढ़े माँ-बाप के लिए कुर्बान कर देनी चाहिए थी? मैं बेटे का कसूर नहीं मानता, मैं तो कहता हूँ बेटा, तू हमारी फिकर न कर, तेरी गृहस्थी में दरार पड़े, ऐसा कोई काम न करना।'' भगवान को थोड़ा क्रोध आया, ''अच्छा अभी मज़े चखाता हूँ उस दुष्ट को, देखता हूँ वह कैसे करता है नौकरी?'' ''ना, प्रभु ना, उसे कुछ मत कहना, वह बेकसूर है, मैं तेरे पैर पकड़ता हूँ, भगवन्, उसका कुछ बुरा मत करना, उसने तो अभी जिन्दगी शुरू की है, नए-नए सपने सँजोए हैं, उसमें विघ्न मत डालना, तू मेरी फिकर मत कर, मेरे लिए तो तेरा आसरा ही काफी है, और फिर मुझे चाहिए भी कुछ नहीं सिवाय तेरे चरणों की धूल के।'' वह यूँ ही बड़बड़ाता रहा और भगवान् अन्तर्धान हो गए। मुँह लटकाए, रामकृपालु घर पहुँचा। कोठी के बाहर वाले कमरे में, रामकृपालु

और उसकी पत्नी की चारपाइयाँ डाल दी गई थीं, कमरे में चारपाई पर बैठी पत्नी के पास पहुँचा, उदास मुख उसके बराबर चारपाई पर बैठ गया। पत्नी बोली, "चढ़ा आए प्रसाद?" "हाँ चढ़ा तो आया हूँ, पर मुझे दुख है, भगवान क्या कहते होंगे, रामकृपालु बेईमान है, मुझसे भी धोखा किया उसने। मैंने कभी भगवान के साथ बेईमानी नहीं की, इस बार तकदीर पलटी मार गई, मुझे बेईमान सिद्ध कर गई।" पत्नी बोली, "गम नहीं करते किसना के बापू, भगवान अन्तर्यामी है, वे जानते हैं कि उनका रामकृपालु बेईमान नहीं, लाचार है, एक बाप है।" थोड़ा रुककर वह फिर बोली, "देखो जी, तुमने मेरी कभी नहीं सुनी, आज मेरी एक इच्छा पूरी कर दो, बोलो करोगे ना?" "हाँ करूँगा, जरूर करूँगा। अब तेरी ही इच्छा पूरी करूँगा, बेटे की जिम्मेदारी निभा चुका हूँ, अब तेरी ही जिम्मेदारी निभाऊँगा। बोल क्या कहती है?"

भर्राई आवाज में उसकी पत्नी बोली, "बहू की यह गुलामी, अपमान, हर वक्त की चिक्-चिक्, तानाकशी, अब मुझसे नहीं सही जाती, चलो कहीं हरिद्वार, मथुरा, वृन्दावन चलकर रहते हैं, ये भी सुखी, हम भी सुखी, भगवान का भजन करेंगे। आपकी पेंशन में जैसे-तैसे काम चल ही जाया करेगा, हमारा खर्चा ही क्या है।" कहते-कहते रामकृपालु की पत्नी सुबक उठी। रामकृपालु का भी गला भर आया, रुँधे गले से बोला, "ठीक है, ठीक कहती है तू, लड़का बिचारा बहुत परेशान है, बहुत दुखी रहता है, उसका अन्तर्द्वन्द्व अब मुझसे नहीं देखा जाता, ठीक है, बाँधों अपना सामान।...और

दो साल बाद रामकृपालु मन्दिर में पहुँचा, हाथ में सवा रुपए का प्रसाद थामे वह भगवान के सामने पहुँचा, बताशों का लिफाफा भगवान जी के चरणों में रख दिया, हाथ जोड़े, नेत्र बन्द किए, "दुर्गम काज जगत् के जेते" गुनगुनाने लगा, भगवान प्रकट हुए, "भक्त! बड़े दिनों बाद मेरी याद आई, सुना क्या हाल है? सन्तुष्ट तो है ना, या कुछ और इच्छा है?" "बस प्रभु अब पूर्ण सन्तुष्ट हूँ, असली सन्तुष्ट तो अब हुआ हूँ, तेरी याद के अलावा प्रभु अब मुझे और काम ही क्या है, हर वक्त तेरी याद आती रहती है, वृन्दावन में रहने लगा हूँ, वहीं आपके चरणों में आनन्दपूर्वक जीवन के दिन गुजार रहा हूँ।" "यहाँ कैसे आना हुआ?" "लड़के ने तो मुझे बताया नहीं, पुरुषोत्तम की चिट्ठी गई थी कि मेरे पोता हुआ है, मैं दादा बन गया

हूँ प्रभु, तेरी महिमा अपरम्पार है, तूने मेरी यह भी सुन ली, बिन माँगे ही, मेरी मनोकामना पूरी कर दी, मेरी वंशबेल को सींच दिया, उस पर एक हरा-भरा सुन्दर फूल खिला दिया, जो देखेगा वह यही तो कहेगा, कि यह है रामकृपालु का पोता, मैं धन्य हुआ प्रभु, तेरा धन्यवाद कैसे करूँ, प्रभु, अब बस तेरी कसम खाता हूँ कि मेरी एक अन्तिम इच्छा पूरी कर दें, इस बार बेटे पोते की कसम खाता हूँ। फिर कभी जीते जी तुमसे कुछ माँगने नहीं आऊँगा।'' कहकर रामकृपालु फफक उठा। प्रभु ने उसे ढाढस बँधाते हुए कहा, ''अच्छा बोल, मैं तेरी यह इच्छा भी पूरी करूँगा, बोल क्या चाहता है?'' आँसुओं को पोंछते हुए रामकृपालु बोला, ''मेरे बेटे के दिल में, हम दोनों के प्रति एक नफरत पैदा कर दे, फिर वह हमें याद कर-करके दुखी नहीं हुआ करेगा, वरना हमारे गम में यूँ ही घुटता रहेगा, सारे जीवन उसे प्रायश्चित रहेगा। मैं उसे दुखी नहीं देख सकता। बस और कोई तरीका मुझे नहीं सूझता जिससे वह प्रसन्न रहे, हमारी तरफ से उसका मन फिर जाएगा तो वह सुखी रहेगा।'' भगवान ने कहा, ''तू कितना भोला है रे रामकृपालु, तू आज तक यह समझता रहा कि प्रसाद ले-लेकर मैं तेरी इच्छाएँ पूरी करता रहा, एक बार भी तूने यह नहीं सोचा कि जो सबको देता है, उसे तू खरीदने चला है। मैं तो तेरे भोलेपन पर, तेरी निष्कपटता पर, तेरी ईमानदारी से प्रभावित था कि तूने अपने लिए कभी कुछ नहीं माँगा, जिस पुत्र के कारण तू गृह त्यागने को लाचार हो गया, अपनी कोठी के बाहर वाले कमरे में डाल दिया गया उसे ही तू दंडित नहीं देखता चाहता, कैसा सन्तोषी है तू रामकृपालु, कैसा दयालु, कैसा महान्। तेरे गुण देख-देखकर तो कभी मैं भी ईर्ष्यालु हो उठता हूँ, मन करता है तुझे अपने बराबर बिठा लूँ, पर तुझे कौन बर्दाश्त करेगा, इसलिए तू जा और मैं तुझे आशीर्वाद देता हूँ कि तू सदा सन्तुष्ट रहे'' प्रसन्न मुख रामकृपालु ने दिल्ली से वृन्दावन की बस पकड़ ली।

•

डायरी का आखिरी पन्ना

दिनांक 22-9-1997—रात्रि 2 बजे

शरीर में अब थोड़ा-सा मांस और हड्डियाँ बची हैं...शिवि और दधीचिकी भाँति क्या इनका भी त्याग नहीं कर सकता? इतना सब कुछ दे दिया, निःशेष को देने के प्रति इतनी ममता क्यों? महायज्ञ की पूर्णाहुति होने को है, पूर्णाहुति से पीछा छुड़ाना चाहता है? सारे 'स्वाहों' पर पानी फेर देना चाहता है क्या? कुछ समझ नहीं पाता, कोई सटीक उत्तर नहीं मिल पाता। प्रश्नों के कटीले जंगल में भटक रहा हूँ, क्या चाहता हूँ, यह भी तो स्पष्ट नहीं...अपना चतुर्दिक वायुमंडल असहाय होता जा रहा है, झुँझलाहट होती है। झुँझलाहट क्यूँ होती है, अपेक्षाओं की हत्या इसका कारण है या कुछ और? निरपेक्ष क्या रह नहीं सकता? क्या कभी कुछ निरपेक्ष रहा है? सभी कुछ तो सापेक्ष है, समग्र सृष्टि का वर्तमान रूप अपेक्षाओं की परिपूर्णता के कारण ही तो प्राप्त हुआ है, लेकिन इस सबसे लाभ क्या? क्यूँ ये शब्द, मैं कागज पर टाँके जा रहा हूँ?

पीछे गर्दन मोड़कर अपने लंबे अतीत से पूछता हूँ कि पूरे जीवन क्या किया? परमात्मा के मंदिर में जाकर कभी चढ़ावा चढ़ाया? किसी असहाय को सहारा दिया? जो कुछ किया, स्वांतः सुखाय ही तो किया। जीवन के पहले 25 वर्षों तक नवाब बना रहा, पता ही नहीं चला कि दुख क्या होता है, अगले 25 वर्षों तक, मैं जुआ कंधे पर रखे, गाड़ी खींचता रहा, एक जोश था, एक उन्माद सा था भीतर, एक सुंदर इंद्रधनुषी क्षितिज था सामने, उसी की ओर लपकता गया...आगे, आगे, और आगे बढ़ता गया—सोचा था, बस सोच सोचकर ही समय को पीछे धकेलता रहा—लोग कहते हैं समय हाथ से फिसल गय, मुझे लगता है, समय मेरे हाथ से फिसला नहीं, जिस दिन मेरे निरुपम का जन्म हुआ, उस दिन से ही समय

को मैंने टुकड़ों-टुकड़ों में, काट-काटकर पीछे धकेला है, निरुपम के करियर को देख-देखकर खुश हुआ करता था, जब भी उसका परीक्षा-परिणाम आया करता, उस दिन लगता था, आज दीवाली है, वरना तो सब मुहर्रम ...एक आशा थी कि जो सुख मैंने अपने जीवन के पहले 25 वर्षों में उठाया है, वही सुख, 25 वर्षों बाद, निरुपम के सैटिल हो जाने के बाद, पुनरुज्जीवित हो, मेरे सामने लहलहा उठेगा।

उसके दो वर्ष बाद चारू आई, लगा जैसे आँगन में बहुत दिनों बाद चंपा चमेली महक उठी हों...तब मेरी 30वीं वर्ष गाँठ थी, 33 वर्ष का हुआ तो प्रत्यूष आया...लगा अब बस, गाड़ी बहुत बोझिल हो उठी है, इससे अधिक भार न खींच सकूँगा...मन में एक लौ जलती रही, आशा की, अपेक्षा की। गुणा भाग करता रहा...निरुपम ज्यादा-से-ज्यादा 22 वर्ष की अवस्था तक सैटिल हो जाएगा, उसका करियर ही ऐसा है कि शिखर छू लेने में उसे ज्यादा समय नहीं लगेगा, मन में एक अहंकार-सा खुदबुदाया—"मैंने शिक्षा ही ऐसी दी है, संस्कार ही ऐसे दिए हैं कि वह सैटिल होते ही मुझे कहेगा, "बस पापा, बस, आप अकेले नहीं हैं"...और जुए का दूसरा सिरा अपने कंधे पर रखेगा, "गाड़ी खींचने को सारा जोर मैं लगाऊँगा, आप थोड़ा सहारा दिए रहना, बैलेंस बनाए रखना"...तब तक मेरी आयु 52, 53 की हो चुकी होगी, या जमाने के चलन से, मेरे जीवन की 53 मोमबत्तियाँ बुझ चुकी होंगी, कैसे मान लूँ? क्या निरुपम की उज्ज्वलता में मेरी मोमबत्ती की प्रदीप्ति नहीं? क्या प्रत्यूष की उन्नति में, मुझे अपनी झलक नहीं मारती? चारू ने भी तो मुझे गरिमा प्रदान की है, स्टाफ रूम में बैठे, प्रो. अग्रवाल ने उस दिन कहा था, "शर्मा जी, भगवान करे, आपको नजर न लगे, ऐसे बच्चे सबके हों और बिटिया? बिटिया हो तो बस चारुलता जैसी—बुरा न मानिए, मैं प्रभु से अक्सर शिकायत करता हूँ कि तूने तीन तीन बेटे दे दिए, तीनों के तीनों—एक के बाद एक—मेरी आशाओं के वट वृक्ष को बोनसाई बनाते गए, देखने में सुंदर, ड्राइंगरूम की शोभा, छाँह क्या देते, उल्टे कीकर के पेड़ सिद्ध हुए, मैं सच कहता हूँ शर्माजी, तीनों के बदले मुझे चारू जैसी एक बेटी ही मिल जाती तो मैं धन्य हो उठता, कैसी विदुषी है, आप तो न जाने कैसे-कैसे घिसटते-घिसटते यहाँ तक पहुँचे, और चारू? इधर उसका एम.ए. का परिणाम आया नहीं, उधर वह प्रो. बन गई, प्रभु करे वह उत्तरोत्तर उन्नति करती जाए।"

सोचा था निरुपम और प्रत्यूष दोनों मिलकर चारु का भार उठाएँगे, चलो खैर, चारू तो कभी भार बनी ही नहीं, फिर भी ब्याह शादी तो करनी ही होती है—माना कि उसे मुँह से माँगकर ले गए थे—एक से बढ़कर एक, अच्छे रिश्ते आए उसके, चारु की तो इच्छा नहीं थी कि उसे अभी से विवाह के बंधन में बाँध दिया जाए, पर मेरी इच्छा के सामने उसने चूँ तक नहीं की, मेरे चेहरे पर छपी इच्छा को वह पढ़ लेती थी, और उसका सम्मान करती थी, मैंने घर देखा न बार—बस लड़के का रंग-ढंग, करियर देखा, थ्रू आउट फर्स्ट क्लास स्वस्थ, सुंदर। इस बात की चिंता बिल्कुल नहीं की कि परिवार वाले रिश्तेदार क्या कहेंगे कि कैसे गरीब घर में दे दिया चारु को, कहीं अच्छे घर गई होती तो राज करती—क्या वह आज किसी साम्राज्ञी से कम है, उसे आज किस बात की कमी है, सो कॉल्ड बड़े घर की सारी खूबियाँ तो हैं उसके पास—कोठी है, कार है, प्यारे प्यारे होनहार दो बच्चे हैं, और क्या होता है बड़े घर में? क्या जरूरी है बड़े घर के लड़के ही होनहार निकलें, निरुपम और प्रत्यूष भी बड़े होनहार निकले, दोनों मेरा नाम रोशन कर रहे हैं, मेरा...पर...लेकिन? ये 'पर' और 'लेकिन' क्यूँ लेकर बैठ गया मैं? छोड़ कर्मवाद का चक्कर, भाग्यवाद पर भरोसा कर ले, तुझे शांति मिलेगी, सब कुछ प्रभु हवाले कर दे, जो कुछ है उसे विधि का विधान मान ले...किसी का कोई कसूर नहीं, पता नहीं कहाँ चूक हो गई मेरे हिसाब किताब में? प्लानिंग तो ठीक ही की थी ...प्लानिंग का क्या है, बड़ी-बड़ी फैक्टरियाँ लगती हैं और करोड़ों स्वाहा हो जाते हैं, जबकि टूटी-सी छैनी हथौड़े से शुरुआत करने वाला, बिना किसी प्लानिंग के बड़ी-से-बड़ी फैक्टरियाँ खड़ी कर लेता है...ऐसा ही मंथन हर वक्त भीतर चलता रहता है—क्या इसे ही सही मान लूँ? सब कुछ भगवान भरोसे छोड़ दूँ? अजीब सोच है मेरी, इसे कोसता हूँ—क्यूँ सोचा मैंने कि निरुपम, प्रत्यूष दोनों मिलकर...खैर छोड़ो, पर इस प्रश्न का समाधान मुझे चाहिए ही कि मेरे गणित में, कहाँ गलती रह गई? एक संतोष की साँस लेने के लिए मैं 25, 30 वर्षों तक प्रतीक्षा कर सकता हूँ और ये दोनों पूर्ण सुखी होने के लिए, दो चार वर्ष भी मुझे और नहीं झेल सकते? इनका पूर्ण सुख मेरे इस लोक से विदा लेने के समय तक ही तो प्रतीक्षा कर रहा है, क्या इतना सब्र और नहीं हो सकता उनसे? अब जीवन बचा ही कितना है, दो-चार वर्ष, हाथ पैर जवाब दे गए हैं,

कैसी-कैसी बीमारियों ने स्थायी निवास बना लिया है मेरे शरीर को? एक कहती है प्रो. हम तुझे जीने नहीं देंगे, दूसरी कहती है हम तुझे नोच-नोचकर खाएँगे पर मरने नहीं देंगे, दवाइयाँ भी उसी बीमारी के सुर में सुर मिलाती हुई कहती हैं, यहाँ से जान छुड़ाना मुश्किल है–मरना जीना भी मेरे हाथ में नहीं–एक अजीब रस्साकशी है–एक श्मशान की ओर टाँग खींच रही है, दूसरी घर में पड़े-पड़े सड़ने की ओर, कैसी विडंबना है–मैं, मैं न हुआ, कठपुतली हो गया। 'होइ है वही जो राम रचि राखा'–के सिवाय आसरा भी क्या है? फिर अंतर से आवाज आती है–फिर अपनी गलतियों को राम के मत्थे मढ़ देना चाहता है, अब क्यूँ आस लगाए बैठा है कि तेरे बच्चे तुझसे ऊबने नहीं चाहिए?...बस यही सोचता हूँ कि जब ये मेरे दुख-दर्द को प्यार नहीं करते, उसे आत्मा से नहीं दुलारते पुचकारते तो मैं इनके दुख-दर्द से क्यूँ तड़प उठता हूँ?...वाह! यह भी कोई ज्योमेट्री है कि 'क' बराबर 'ख' के और 'ख' बराबर 'ग' के तो 'क' बराबर 'ग' के। यहाँ यह फार्मूला लागू नहीं होता, कोई और ही कैमिस्ट्री है...क्या कैमिस्ट्री है?...यही ना, कि ये मेरी आत्मा के अंश हैं, मैं इनकी का नहीं, किसी और की आत्मा का अंश हूँ, तभी तो सोचता हूं कि अच्छा हुआ मेरी जननी, जनक मुक्त हो गए इन झंझटों से। कैसी तुला लेकर बैठ गया हूँ? सारे जीवन इस बनियागीरी के दर्शन नहीं हुए, अब अंत समय में, क्रेडिट, डेबिट का वह खाता लेकर बैठ गया हूँ, क्या यह स्वार्थपरता नहीं?''

उलझन...स्वार्थपरता और स्वार्थहीनता का द्वंद्व, मैं नहीं मानता स्वार्थहीनता भी कुछ होती है, सब कुछ स्वार्थ-पोषित है, सृष्टि के कण-कण में स्वार्थ ही स्वार्थ है, तभी तो मैं बार-बार सोचता हूं कि कहाँ अंतर्धान हो गया बाप का वह चित्र, जिसे व्यास ने युधिष्ठिर के मुख से यक्ष के समक्ष प्रस्तुत किया था, क्यूँ उठता है मेरे मन में बार-बार यह प्रश्न?

कैसी विडंबना है? कैसा न्याय है? मैं 25, 30 वर्षों तक तापस बना, अपने अंतिम दो चार वर्षों के सुख के लिए सपने संजोता रहूँ और ये दोनों अपने स्थायी सुख के लिए दो, चार वर्ष भी सब्र नहीं कर सकते? लोग-बाग मुर्दे को भी घर से यूँ ही नहीं निकाल फेंकते...पर मेरी तो अभी साँसें चल रही हैं, क्यूँ मची है इनके दिलों में एक उतावली, बेसबरे कहीं

के। अरे बहुओं को क्या दोष दूँ? वे तो गैर थी, गैर को अपना बनाकर लाया था, वे अगर अपनी नहीं निकली, गैर ही बनी रही, तो उन्हें क्या दोष दूँ? ये तो मेरे अपने अंश थे, उन्हें तो मैंने वे संस्कार नहीं दिए थे, उनके सामने तो मेरी मिसाल थी कि मैंने अपने पिता को कैसी भावना से निभाया था, अरे अनचाहे मेहमान को भी निभा लेते हैं लोग। कहाँ ये और कहाँ चारु। वह आई थी–

"कैसे हो पापा?" "ठीक ही हूँ बेटी! पता नहीं कितने दिनों के भोग और रह गए हैं, अब मैं बेटों पर भार नहीं बनना चाहता–ये चारों बहू बेटे मिलकर मेरा भार नहीं उठा पा रहे हैं, ज्यूँ-ज्यूँ मेरा शरीर हल्का होता जा रहा है, इनके कंधे पर मेरा भार त्यूँ-त्यूँ बढ़ता जा रहा है।

मुझे अपनी मानसिकता पर क्षोभ होता है, मेरी क्या, यह तो सभी की मानसिकता है, बेटे शब्द के प्रति इतना मोह, बेटी को भी 'बेटा' कहकर संबोधित करते हैं, मानो बेटे से अधिक श्रेष्ठ कोई शब्द नहीं, अत्यधिक लाड़वश हम 'बेटी' को 'बेटा' कहकर संबोधित करते हैं, मैं भी तो तुझे 'चारु बेटे' ही कहता हूँ, कभी अपवाद रूप में भी किसी के मुख से लड़के के लिए 'बेटी' संबोधन निकला है? पुत्र-प्रेम की जड़ें अंतस्तल में कितने गहरे तक फैली हुई है–लगता है ये यूकिलिप्टस की जड़ें हैं जो भीतर ही भीतर अदृष्ट रूप में फैलती जाती है और अपने पास के किसी भी पौधे को पनपने नहीं देती, सारा रस स्वयं चूस जाती हैं, किसी के लिए कुछ नहीं छोड़ती। इंसान जानता है, पहचानता है, फिर भी अंधा बना रहता है पुत्र-प्रेम में। अजीब प्रकृति है।" इतने में चारु बोल उठी है, "पापा यह अंध-मोह नहीं, यह अपेक्षा है, पुत्र से अपेक्षा, वह सोचता है, बेटी तो पराया धन है, पुत्र अपना है, इसीलिए वह सोचता है कि बेटी भी, बेटे के समान पिता की अपेक्षाओं पर खरी उतरे, इसीलिए वह बेटी को भी बेटे के रूप को देखता है।"

मैंने कहा था, "वह जानता है, फिर भी अपेक्षा करता है, यही तो अंधत्व है।" और ताज्जुब है कि पुरुष मानसिकता के विरोधी, नारी-मुक्ति के झंडा बरदार भी बेटी को लाड़ प्यार में 'बेटा' ही संबोधित करते हैं, क्यूँ नहीं विरोध करते इस मानसिकता का, क्यूँ नहीं बेटी को लाड़ का इतना ऊँचा दर्जा देते कि बेटे को 'बेटी' संबोधन से अलंकृत किया जाए, क्या कहीं ढूँढ़े भी कोई ऐसा उदाहरण मिलेगा कि बाप भूखा है तो बेटी

के गले से निवाला उतर जाए? कौन से अणु हैं जो बेटी को अपनी मृत्यु पर्यंत माँ बाप से चिपकाए रहते हैं?''

चारु ने, मेरे मुख पर हाथ रख दिया था, ''बस करो पापा, किस दर्शन में उलझ पड़े। कहकर वह बिलख पड़ी थी, मुँह फेरकर उसने साड़ी के पल्लू से अपनी आँखें पोंछ ली थीं, पर क्या वह मुझसे अपने अंतर की पीड़ा छिपा सकी थी?''

''हट पगली, मन भारी क्यूँ करती है? मेरी तो यूँ ही उल्टी-सीधी सोचने की आदत सदा की रही है, ये सब बेकार की बातें लेकर बैठ गया हूँ, देख, यह तक पूछना मैं भूल गया कि बेटी तू कैसी है, मानव कैसा है, बच्चे कैसे हैं?'' और मैंने उसे गले से लगा लिया था, फिर तो उसका बाँध टूट गया था, आँसू छिपाने की चोरी, उसकी सिसकियों से पकड़ी गई थीं। मैंने उसे सच या झूठ कहा, ''चिंता न कर बेटी, मैं ठीक हूँ, उल्टी-सुल्टी बातें बिल्कुल नहीं सोचूँगा मेरा वायदा है।''

उसने मुझे मेरी माँ की तरह आदेश दे डाला, ''उठो पापा, अपने दो चार कपड़े ले लो और चलो मेरे साथ, मैं तुम्हारा श्रवण कुमार बनूँगी, तुम्हारी आखिरी साँस तक मैं तुम्हें कंधों पर उठाए रखूँगी, इतनी कमजोर मत समझना मुझे, उठिए, एकदम।''

''पर बेटी?'' ''नो इफ्स एंड बट्स, तुरंत खड़े हो जाइए।'' उसने मेरी ओर अँगुली उठाते हुए कहा। मैंने प्रतिवाद किया, ''नहीं बेटी, यह संभव नहीं, डरता हूँ, कहीं तुझे भी न खो दूँ? कहीं तेरी छवि को भी दाग न लग जाए मेरे कारण?''

''सुनो पापा, मैं सौगंध खाकर वचन देती हूँ, इससे पहले कि तुम मेरा उकताया चेहरा देखो, मैं स्वयं आपके बोझ को, यदि वह बोझ है, तो स्वयं उतार फेंकूँगी और अपने भाइयों की पंक्ति में जा बैठूँगी, मेरा विश्वास करो पापा...कंधे पर लदे बोझ की उकताहट जिह्वा से नहीं, चेहरे से बोल जाती है, जिस दिन मेरे चेहरे पर मेरी उकताहट पढ़ लो, उसी दिन मुझे आदेश दे देना कि बेटी अब तू हाँफ गई है, मुझे वापस छोड़ आ।''

मेरे ना, ना करने पर भी चारु मुझे अपने घर लेकर चली आई, उसने निरुपम और प्रत्यूष से भी पूछने की आवश्यकता नहीं समझी।

घर पहुँचने पर चारु ने मानव से कहा, ''सॉरी मानव, तुमसे पूछे बिना, पापा को यहाँ ले आई हूँ।'' उस पर मानव ने कहा था, ''और

मुझसे पूछती तो मैं तुम्हें कभी माफ नहीं करता, यह मेरे लिए एक अत्यंत बेहूदा प्रश्न होता, जिसमें मुझे लगता कि तुम मुझे इतना कमीना समझ रही हो, कि कहीं मुझे बुरा न लगे, अरी क्या ये मेरे पापा नहीं हैं! पगली कहीं की, इनकी सेवा को अपना सौभाग्य मानूँगा। लगता है, अब इतना थक गया हूँ कि और आगे नहीं लिखा जाता। बस अंतिम इच्छा लिखकर समाप्त करता हूँ।

चारु बेटी।

मेरी मृत्यु का समाचार, निरुपम और प्रत्यूष को मत देना, नहीं तो वे बाप को मुखाग्नि देने के अपने अधिकार को तुझसे छीन लेंगे, परंपरा का निर्वाह वे जरूर करना चाहेंगे, ये परंपराएँ—ठोकर मारता हूँ मैं ऐसी परंपराओं को, मैं चाहता हूँ कि अपने बेटे के साथ तू मुझे मुखाग्नि दे, वह अभी छोटा है, मुझे मुखाग्नि कैसे दे पाएगा? तू उसके हाथ को सहारा देकर, नई परंपरा की नींव डालना। बस--अब पूर्ण विराम।

डॉ. विद्याभूषण भारद्वाज

जन्म– 19 जनवरी, 1928, ग्राम डालमपुर (मेरठ) उ. प्र.

शिक्षा– पी-एच. डी. मेरठ कॉलेज, मेरठ।

1947 में प्रायबेटली प्रभाकर, 1949 में साहित्य रत्न।

अध्यापनानुभव– 1974 से स्थायी रूप से महामना मालवीय महाविद्यालय खेकड़ा (मेरठ) में हिन्दी प्रवक्ता के पद पर कार्य करते हुए 1992 में असोसिएट प्रफेसर पद से सेवा निवृत्त।

पुरस्कार– छुट-पुट पुरस्कारों के अतिरिक्त, कोई उल्लेखनीय पुरस्कार नहीं झटक सका।

सर्वप्रिय पुरस्कार–जीवन में प्राप्त पुरस्कारों में, मेरा सर्वप्रिय पुरस्कार चवन्नी का वह पुरस्कार है जो दौरे पर आए एस. डी. आई. ने मुझ सात वर्ष के बालक को अपनी गोदी में उठाकर दिया था, वह मेरे मानस पटल पर आज तक एज़ इट इज़ उत्कीर्णित है।

प्रकाशित रचनाएँ–कहानी संग्रह– उतरन

उपन्यास– सनकी शास्त्री (सद्यः प्रकाशित)

हास्य-व्यंग्य– ततैया

स्मृति शिलालेख–क्यूँ भूलूँ– मेरे बचपन के संस्मरण

शोध ग्रंथ– आचार्य चतुरसेन शास्त्री के उपन्यासों में इतिहास का चित्रण।

अनुवाद– अंग्रेजी से हिन्दी– मार्शल गोविंदन सच्चिदानन्द द्वारा लिखित

1. Kriya Yoga Sutras of Patanjali and the Siddhas का ''पतंजलि के योग सूत्र व अन्य महर्षि'',
2. Babaji and the 18 Siddh KriyaYoga Tradition का ''बाबाजी व 18 महर्षियों की क्रिया योग परंपरा'',
3. How I become the disciple of Babaji 'में बाबाजी का भक्त कैसे बना''

₹ 300/-$30

नमन प्रकाशन

4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली - 110002
दूरभाष : 23247003, 23254306
Fax No. 011-23254306

ISBN 81-8129-439-4